Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

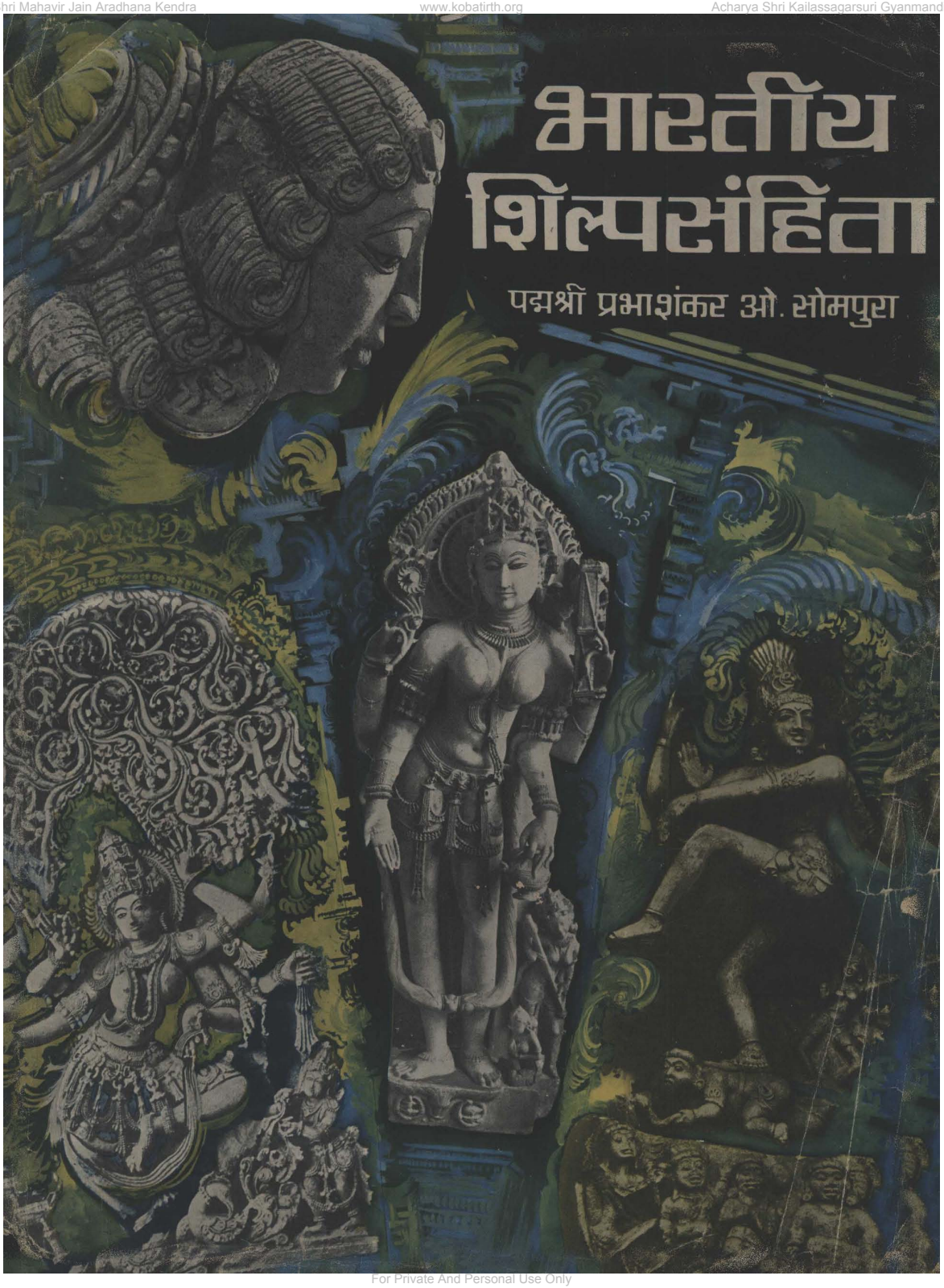

भारतीय शिल्पसंहिता

पद्मश्री प्रभाशंकर ओ. सोमपुरा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिद्धि श्रीविनायक सिद्धि

आलेखक बलवंतराय प्रभाशंकर सोमपुरा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भारतीय शिल्पसंहिता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भारतीय शिल्पसंहिता

पद्मश्री प्रभाशंकर ओ. सोमपुरा
शिल्पविशारद, अहमदाबाद १३

सोमैया पब्लिकेशन्स प्रा. लि.
बम्बई • नई दिल्ली

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

© १९७५ पद्मश्री प्रभाशंकर ओ. सोमपुरा

मुखपृष्ठ : **जयवंत माईणकर**

मुद्रक : श्री. र. देसाई, दि बुक सेंटर प्रा. लि., १०३, छटा रास्ता, शीव (पूर्व), बम्बई–४०० ०२२

प्रकाशक : गं. श्री. कोशे, सोमैया पब्लिकेशन्स प्रा. लि., १७२, मुंबई मराठी ग्रंथसंग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई–४०० ०१४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्व. पुत्र बलवंतराय को

जिसने यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा मुझे दी

हमारे भारद्वाज गोत्र के दो कुलदीपक, तेजस्वी रत्नोंको समर्पित

स्व. बलवंतराय प्र. सोमपुरा

शिल्पशास्त्र विशारद

जन्म ता. १३–१–१९१९। स्व. ता. १६–९–१९६९

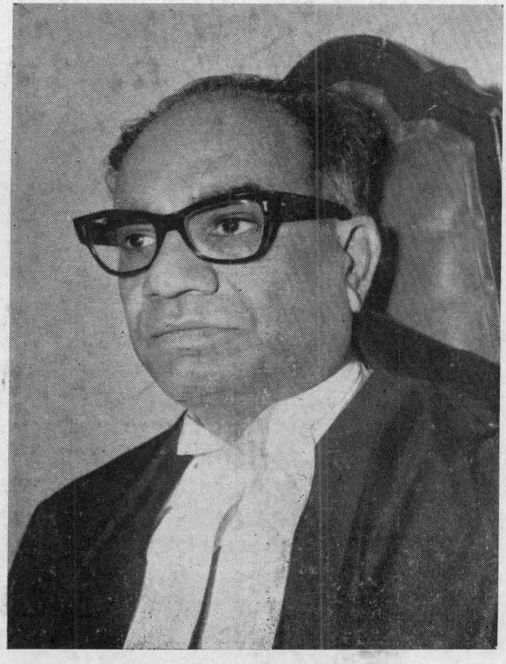

स्व. भानुभाई आर. सोमपुरा

गुजरात राज्य हायकोर्ट के न्यायाधीश

जन्म ता. १९–८–१९१८। स्व. ता. २३–१२–१९६९

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री सोमनाथ महाप्रासाद का प्रवेशद्वार — मध्य में महाप्रासाद के निर्माता पद्मश्री प्रभाशंकर ओ. सोमपुरा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रस्तावना

किसी भी देश की संस्कृति का मूल्य उसके प्राचीन शिल्पस्थापत्य और साहित्य पर से आँका जाता है। विद्या और कला देश का अनमोल धन है। शिल्पस्थापत्य मानव जीवन का अत्यन्त मार्मिक अंग है। कला, हृदय और चक्षु दोनों को आकर्षित करती है, शिल्पसौन्दर्य हृदय को सभर बनाता है। सारी दुनिया में भारतीय शिल्पस्थापत्य उत्तम कोटि का है, देश के लिये गौरवरूप है।

शिल्पस्थापत्य धर्म के साथ संलग्न है, उसका देवोपासना से बहुत गहरा सम्बन्ध है। प्राचीन ऋषिमुनियों ने बुद्धिपूर्वक इसकी रचना की है। धर्मप्रवृत्ति से प्रेरणा पाकर देश में जगह जगह पर मन्दिरों का निर्माण हुआ है, उसीके द्वारा शिल्पीवर्ग को अच्छा उत्तेजन–प्रोत्साहन मिला है। प्राचीन युग में शिल्पी, ब्रह्मा के पुत्र माने जाते थे और उसी भावना से उनका सम्मान भी होता था।

विद्या और कला के विषय में शुक्राचार्य ने बहुत ही स्पष्ट लिखा है कि विद्या अनन्त हैं, कलाओं की तो गिनती ही नहीं हो सकती; फिर भी सामान्य रूप से यह कहा जाता है कि विद्याएँ बत्तीस हैं और कलाएँ चौसठ प्रकार की हैं। आगे चलकर विद्या और कला की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि वाणी के द्वारा जो व्यक्त होती है वह विद्या और गूँगा भी जिसे व्यक्त कर सकता है वह कला। शिल्प, नृत्य, चित्र आदि कलाएँ हैं, क्योंकि ये बिना वाणी के माध्यम के केवल मूकभाव से भी व्यक्त की जा सकती है।

प्रभुप्राप्ति अथवा मोक्षप्राप्ति के लिये उपासक लोग देवमूर्ति की पूजा करते हैं। भारत के प्रत्येक संप्रदाय में प्रायः मूर्तिपूजा प्रधान है। प्रासाद देवमूर्ति–प्रतिमा के लिये आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। मूर्तिपूजा के प्रारम्भिक काल के विषय में विद्वानों में मतभेद भले ही हों, वेदों में मूर्तिविषयक उल्लेख मिलते हैं। हिन्दुधर्म में मूर्ति का प्राधान्य है। उपासना–ध्यान के लिये मूर्ति अवलम्बरूप मानी गई है। मूर्तिपूजा का प्रचार जैसे जैसे बढ़ता गया वैसे वैसे प्रतिमाविषयक मान–प्रमाण, अंग–प्रत्यंग, आसन, मुद्राएँ, आभूषण, आयुध, प्रतिमावर्ण आदि के नियम बन गये। इस प्रकार प्रतिमाविधान का विकास होता गया और उस विषय का पूरा साहित्य निर्माण होता गया। वह प्रमाणमान मान्य रखने का शिल्पियों को आदेश दिया गया, बताये गये नियम कानून बन गये। उसमें कहीं कुरूपता आ जाये अथवा किसी नियम का भंग हो जाये तो उसे 'वेधदोष' कहा गया, और उससे यजमान का अकल्याण होगा, ऐसा भय भी शास्त्रकारों ने बताया।

वास्तुशास्त्र अथर्ववेद का उपवेद है। अथर्ववेद के सूक्तों में स्थापत्यकला के बारे में विशेष उल्लेख मिलते हैं। वेद–संहिता, ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों, बौद्धसाहित्य एवं जैन आगम ग्रन्थों में वास्तुविद्याविषयक विधान मिलता है। पुराणों और नीतिशास्त्रों के ग्रन्थों में तो इस विषय के पूरे अध्याय के अध्याय मिलते हैं।

भारतीय शिल्पस्थापत्य के विविध अंग हैं। वास्तुशास्त्रविषयक प्राचीन संस्कृत साहित्य प्रायः मध्ययुग में लिखा गया है। उसके पहले भी कुछ आचार्यों ने इस विषय में अवश्य कुछ ग्रन्थ लिखें होंगे, पर वे आज उपलब्ध नहीं हैं। उनमें से ऋषिमुनियों ने कहीं कहीं कुछ अवतरण उद्धृत किये मिलते हैं। नवीं–दशवीं शताब्दी के बाद और बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी में इस विषय पर लिखे ग्रन्थ ही वर्तमानकाल में विशेष रूप से देखने को मिलते हैं।

वास्तुशास्त्र और मूर्तिकला का क्रमिक विकास हुआ है। वैदिक काल में मूर्तियों के प्रमाण की चर्चा अवश्य हुई है, लेकिन उस समय की मूर्तियों के अवशेष उपलब्ध नहीं है।

शिल्पस्थापत्य भारतीय विद्याओं का विशिष्ट अंग है। उपास्य देव की मूर्ति के विधान सम्बन्धी कुछ अंगउपांगों का यहाँ वर्णन करने का प्रयास किया जा रहा है। शिल्पस्थापत्य के क्रियात्मक ज्ञान का विशेष महत्त्व है, इस दृष्टि से उसके अंगप्रत्यंगों का ब्योरेवार यदि निरूपण किया जाय तो भविष्य में वह उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा सोचकर उसके कुछ विभागों के प्रकरण यहाँ पेश किये हैं। 'प्रतिमाविधान' विचार के पूर्वार्ध में पन्द्रह अंग क्रमबद्ध निम्नानुसार हैं।

१. मूर्तिपूजा
२. प्रतिमा मान–प्रमाण : तालमान
३. प्रतिमा का वर्ण और उसका वास्तुद्रव्य
४. हस्तमुद्रायें
५. पादमुद्रा और आसन
६. पीठिका
७. शरीर मुद्रा
८. वाहन
९. नृत्य
१०. षोडशाभरण (अलंकार)
११. आयुध
१२. परिकर
१३. व्याल स्वरूप
१४. देवानुचर, असुरादि अेकोनविंशती स्वरूप
१५. देवांगना स्वरूप

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिल्पीवर्ग में मूर्तिशास्त्रसम्बन्धी इस विषय की अच्छी तरह से छानबीन नहीं हुई है, उसके शास्त्रीय पाठों एवं आलेखनों के साथ ग्रन्थ का पूर्वार्ध यहाँ पेश किया गया है। ग्रन्थ दो विभागों में है। उत्तरार्ध में देवमूर्तिविषयक विवेचन है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश–त्रिपुरुष, उनके पृथक् पृथक् स्वरूप, शिवलिंग, दैवीशक्ति, सप्तमातृकाएँ, नवदुर्गाएँ, गौरीस्वरूप, द्वादश सूर्य, गणेशस्वरूप, कार्तिकस्कन्द, हनुमत्स्वरूप, दिक्पाल, नवग्रह, अन्तिम जैन प्रकरण में यक्ष, यक्षिणी, षोडश विद्यादेवियाँ, परिकर, अष्ट प्रतिहार्य, मणिभद्र, घण्टाकर्ण, क्षेत्रपाल, पद्मावती, माणेक-स्तम्भ आदि के मूल संस्कृत पाठ, अनुवाद एवं आलेखनों के साथ दिया गया है।

शिल्प के सुन्दर आलेखन और आकृतियाँ वर्गवार पृथक् पृथक् दिये गये हैं। ये सारी बातें शिल्पीवर्ग एवं कलारसिकों को अभ्यास में उपयोगी होंगी ऐसा मैं मानता हूँ।

प्रासाद में प्रतिमामान

प्रासाद के मान के अनुसार आसनस्थ–बैठी एवं ऊर्ध्वस्थ–खड़ी प्रतिमाओं का मान निम्नानुसार है।

प्रतिमामान गज	बैठी अंगुल	खड़ी अंगुल	प्रतिमामान गज	बैठी अंगुल	खड़ी अंगुल
१	६	११	८	३६	४९
२	१२	२२	९	३९	५१
३	१८	३१	१०	४२	५३
४	२४	४१	२०	५२	६७
५	२७	४३	३०	६२	७३
६	३०	४५	४०	७२	८३
७	३३	४७	५०	८२	९३

वैदिक, जैन, बौद्ध आदि सम्प्रदायों में मूर्ति–प्रतिमाओं के प्रकारभेद होने के कारण मूर्तिविधान के स्वरूपों में भी भेद पाया जाता है। प्रत्येक सम्प्रदाय की अपनी मूर्तियाँ प्रायः एक सी होती हैं, फिर भी देशकाल के भेद के अनुसार उनके स्वरूपनिरूपण के बारे में कुछ भेद दिखाई देता है।

प्रादेशिक परंपराओं के अनुसार शिल्पविधान में शैलीभेद का होना स्वाभाविक है।

(१) यानक–वाहन पर बैठी हुई मूर्ति, (२) स्थानक–स्थान पर खड़ी मूर्ति, (३) आसन–बैठी हुई मूर्ति और (४) शयन–जलशायी विष्णु अथवा बुद्धनिर्वाण जैसी सोयी हुई मूर्ति, इस प्रकार सामान्य रूप से मूर्तियों के चार भेद हैं।

मूर्ति–प्रतिमा निर्माण के लिये पुराणों में और अन्य ग्रन्थों में कहीं सात और कहीं नव वास्तुद्रव्यों का उपयोग करना बताया गया है। (१) सोना, (२) चाँदी, (३) ताँबा, (४) काँसा, (५) सीसा, (६) अष्टलोह, ये छः धातुद्रव्य हैं। (१) रत्न, (२) स्फटिक, (३) प्रवाल और (४) पाषाण ये चार रत्नादि द्रव्य हैं। (१) काष्ठ, (२) लेप, (३) बालू, (४) मृत्तिका और (५) कंकरी ये पाँच फुटकर द्रव्य हैं और (१) चित्र–फोटू, इस प्रकार सोलह (१६) मूर्तिनिर्माण द्रव्यों का विधान विभिन्न ग्रन्थों में लिखा मिलता है। प्रतिमा बनाना बिल्कुल ही निषिद्ध है। अष्टलोह में पंचधातु के साथ सोना, चाँदी और ताँबे के रस का मिश्रण किया जाता है। क्षणिक पूजन के लिये मृत्तिका की मूर्ति का विधान है, पूजन हो जाने के बाद उस मूर्ति का जल में विसर्जन कर दिया जाता है, श्रावण मास में इस प्रकार शिवलिंगों की पार्थिव पूजा होती है। मन्दिरों में स्थायी मूर्ति और भोगमूर्ति इस प्रकार देवताओं की दो मूर्तियाँ होती हैं। स्थायी मूर्ति स्थिर रहती है तो भोगमूर्ति चलित रहती है, वह उत्सवों में रथ पर स्थापित की जाती है।

पूजनीय मूर्ति–प्रतिमाओं के चेहरे पर यौवन के सुन्दर भावों का होना जरूरी है। चेहरा हमेशा हँसता–प्रसन्न दिखाई देना चाहिए। काली, महिषासुरमर्दिनी, हिरण्याक्ष आदि की रौद्रमूर्तियों में रौद्रभाव व्यक्त होना जरूरी है। वैसे तो, शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नव भाव कहे गये हैं, परन्तु इनकी अभिव्यक्ति चित्रकर्म और नाट्यकर्म के लिये विशेष उपादेय है। इनमें से कुछ भाव शिल्पकर्म में लिये जा सकते हैं, ऐसा विधान 'समरांगण सूत्रधार' ग्रन्थ में मिलता है।

इस ग्रन्थके पूर्वार्ध के बोदहवें अंगमें उन्नीस देवानुचर असुरादि स्वरूप बताये हैं, उन सब की प्रतिमाएँ बनती थीं। प्रासाद के गर्भगृह के किस विभाग में किस देव की मूर्ति की स्थापना करनी चाहिये यह कहा गया है, उसमें भूतप्रतिमा का स्थान बताया गया है। इससे यह अनुमान होता है कि प्राचीनकाल में ऐसी मूर्तियाँ बनती होंगी। भूतमानव भगवान शंकर को पुराणकारों एवं तंत्रकारों ने भूतेश, भूतनाथ आदि नामों से सम्बोधित किया है। 'प्रमथ' शब्द भूत का पर्यायवाचक होने के कारण संस्कृत के कवियों ने शिवको 'प्रमथनाथ' भी कहा है। भूत का तीसरा अर्थ 'गण' भी होता है। वर्तमान काल में उनके स्वतंत्र मन्दिर नहीं है, लेकिन उनकी मूर्तियाँ अवश्य मिलती हैं। द्रविड़–कर्नाटक ग्रन्थों में प्रासाद के द्वार पर, अधिष्ठान में कपोतिका में, झरोखे के नीचे और शिखर के स्कन्ध पर भूतस्वरूपों का स्थान बताया है। उनके स्वरूप के बारे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में लिखा है कि वह मस्त, जटावाला, अल्पकेशी, बड़े पेटवाला और वामन–ठिंगना होना चाहिये। कुछ के मुहँ बिड़ाल, व्याघ्र, हाथी आदि प्राणियों के समान हों और उनके चेहरे पर हास्य, क्रीडा, विस्मय, बीभत्स आदि के भाव हों। भूतबलि का प्राणवान स्वरूप बनाने को कहा गया है। द्रविड़ मन्दिरों के ऊपर स्कन्ध के कोने में वृषभ स्वरूपों की बदली में कहीं कहीं भूत के स्वरूप भी दिखाई देते हैं, हालाँकि ऐसा प्रायः पुराने मन्दिरों में ही देखा गया है, कर्नाटक शिल्प में भी कहीं इसका संकेत मिलता है। भुवनेश्वर के राजरानी मन्दिर के शिखर के स्कन्ध के चारों हिस्सों में मध्य में भी घुटनों को मोड़कर आधे खड़े हुए और शंख फूंकते भूतस्वरूप दिखाई देते हैं। इस भूत–प्रमथ–गण के बारे में द्रविड़ वास्तुग्रन्थों में विवरण मिलता है। उत्तरीय परंपरा में इस विषय का कोई जिक्र नहीं है। शैवागम–चन्द्रदमन में छः भूतनायक कहे हैं तो वास्तु-शास्त्र विश्वकर्मा में नव भूतनायकों के नाम, स्थान और तत्त्वों का निरूपण मिलता है। वे इस प्रकार हैं: (१) उपामोद–पूर्व में पृथ्वी तत्त्व, (२) प्रमोद–दक्षिण में अग्नितत्त्व, (३) प्रमुख–पश्चिम में जलतत्त्व, (४) दुर्मुख–उत्तर में वायुतत्त्व, (५) अविघ्न–अग्निकोण में आकाश-तत्त्व, (६) सत्त्व–अग्निकोण में, (७) रजस्–नैऋत्य कोण में, (८) तमस्–वायव्य कोण में, (९) विघ्नहर्ता–ईशान कोण में। ये स्वरूप प्रायः शिवमन्दिरों में ही होते होंगे। (१) ऋषि, (२) हनुमान्, (३) क्षेत्रपाल, (४) यक्ष, (५) पितृ, (६) नाग और विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर आदि के स्वरूप देवों के परिकर माने जाते हैं। वे देवमूर्ति के ऊपर के हिस्से में अलंकार के रूप में अंकित होते हैं। किसी देवघर के शिल्प में असुर, दानव, बैताल, राक्षस, प्रेत, पिशाच, शाकिनी के स्वरूप उनकी कथाओं के साथ अंकित किये मिलते हैं। जैनियों में यक्ष, यक्षिणियों के स्वरूप बहुत पूजे जाते हैं। नागरादि शिल्प में देवलोक, स्वर्ग, अप्सराओं के बत्तीस स्वरूप उनके लक्षणों के साथ दिये हैं। पूर्व-भारत के कलिंग, उड़ीसा के शिल्पग्रन्थों में उनके सोलह स्वरूपलक्षण बताये हैं। उसमें अन्त में शिल्पकृति में शिल्पालंकार के रूप में (१) कीर्तिमुख, (२) नाग, (३) ग्रास, (४) मकर, (५) व्याल ये पाँच स्वरूप दिये हैं।

(यह श्री. मधुसूदनभाई ढाकी के 'भूतनायक' लेख पर आधारित है।)

भारत में हजारों वर्षों से मूर्तिपूजा है, उसी प्रकार मीसर, बाबीलोन, एसीरिया, पर्शिया, आरब, ग्रीस, इटली आदि युरोपीय देशों में तथा चीन, जापान, रूस आदि एशियाई देशों में अनेक देव–देवियों को माननेवाले लोग थे, पीछे उस स्थिति में कुछ परिवर्त्तन अवश्य हुआ है।

मनुष्य को स्वाभाविक रूप से एक मुँह और दो हाथ होते हैं, जब कि देवों के बारे में मनुष्य से अधिक अंगों की कल्पना की गई है। कुछ देवों के एक से अधिक मस्तक एवं दो से अधिक हाथ बनाये हैं। हिन्दुशास्त्रों में चार, छः, आठ, दस या बीस भुजाओंवाली देवदेवियों की मूर्तियों का उल्लेख है। मनुष्य के मुँह की जगह सिंह, सूअर, घोड़ा, बैल, बन्दर आदि के मुँह बनाये गये हैं। मीसर, बाबीलोन, एसीरिया और पर्शिया में भी ऐसे प्रकार की आकृतियों के भव्य स्वरूप आज भी मिलते हैं। इजिप्त में 'स्फिक्स' नामक मूर्ति का मुँह मनुष्य का और शरीर सिंह का है, पत्थर की बनी यह मूर्ति तीन सौ फीट लम्बी है। मीसर और पर्शिया में दो–तीन हजार वर्ष पहले की ऐसी प्राचीन मूर्तियाँ हैं, जिनका मुँह तो मनुष्य का है, लेकिन शरीर बैल का है। पहले मीसर के विभिन्न प्रान्तों में देवदेवियों के स्थान पर प्राणियों की पूजा होती थी। देवमूर्तियों की शक्ति और उनका स्वभाव बनाने के लिये विशेष भुजाओं के स्वरूप की कल्पना की गई होगी। आयुधों के बारे में भी ऐसा ही होना चाहिये। कुछ देवदेवियों के आयुध उग्र–भयंकर हैं, कुछ के आयुध सात्त्विक हैं। ये भुजाएँ और आयुध उनके स्वभाव और गुण के प्रदर्शक हैं। उनके विशेष मस्तकों के बारे में ऐसे ही कुछ कथानक पुराणों में मिलते है।

मौर्य राज्यकाल (ईसा से पूर्व ३२५ से १८४) में जो प्रथम चन्द्रगुप्त हुआ, उसके दरबार में ग्रीक राजदूत मेघेस्थिनिस ने उस समय की स्थिति का वर्णन किया है। पाटलीपुत्र में चन्द्रगुप्त का जो भव्य राजमहल था, वह एशियाभर में सर्वश्रेष्ठ था और गुप्तकाल के अन्त तक वह था। चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक (ख्रिस्ताब्द २१३ ते २३२) संसारभर में महापुरुष माना गया। वह स्वयं बौद्धधर्मी होने पर भी अन्य सम्प्रदायों के प्रति पूरा सहिष्णु था। वह हमेशा प्रजा के कल्याण की चिन्ता किया करता था। प्रजा के हित के खातिर उसने पर्वतीय शिलाखण्डों पर ब्रह्मी लिपि में नीतिसूत्र खुदवाये थे। देश के अलग अलग स्थानों पर रौनकदार बड़े बड़े स्तम्भ, राजा की आज्ञा उनमें खुदवाकर खड़े करवाये थे। अनेक बौद्धस्तूप, विहार, चैत्य–स्तम्भ और गुफाओं में नक्शी का काम करवाया था। उसके बाद के राजाओं ने भी देश के विभिन्न भागों में अनेक विशाल गुफाएँ कला से सजाई थीं और अनेक स्तूप बनवाये थे।

शुंगकाल (ख्रि. पू. १८८ से ५०) के बाद कुशाणकाल इसपूर्व ५० से इस३०० में प्रतिमाविधान में मथुराशैली एवं गान्धारशैली का विशेष प्रचार हुआ है। सरहद प्रान्त–उत्तर पंजाब के अगलबगल के प्रदेश–में प्रतिमाविधान में गान्धार शैली और उत्तर भारत में मथुराशैली विशेष रूप से प्रचलित है।

गान्धारशैली, बौद्ध सम्प्रदाय के मूर्तिविधान में स्पष्ट दिखाई देती है। ख्रि. पू. ३०० से ५० तक पत्थर और चूने की मूर्तियाँ बनती थीं। उनमें तादृशता एवं सप्रमाणता विशेष रूप से पायी जाती है। उन मूर्तियों में घुंघराले बाल होते हैं। इस गांधारशैली पर बाहरीयूनानी असर पड़ा है और वह भारतीय मूर्तिविधान के असर से बिलकुल मुक्त है ऐसा कुछ पाश्चात्य विद्वान मानते हैं। जब कि डॉ. हावेल, डॉ. जयस्वाल, डॉ. कुमारस्वामी, डॉ. अग्रवाल जैसे समर्थ पुरातत्त्वज्ञों का मत है कि गान्धारशैली भारतीय मूर्ति कला से ही सम्बद्ध है यह बिलकुल सिद्ध है। उस प्रदेश के उस काल के सभी शिल्पियों की यही शैली थी, ऐसी स्थिति में उसे बाहर की कला कैसे कही जा सकती है?

मथुराशैली: कुशाणकाल की मथुराशैली के मूर्तिविधान का केन्द्र मथुरा था। शुंगकाल की कला ही कुशाणों का राज्याश्रय पाकर मथुरा-शैली बन गई ऐसा कुछ लोग मानते हैं। कुशाणकाल के बाद नागभार वाकाटक का राज्यकाल आता है, इस १८६ से ३२० वही इस शैली का

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकाश–विकास का काल है। उस समय की मूर्तियों पर अशोक के समय का गहरा असर है। नागभार के बाद वाकाटकों का राज्यकाल है, उसके बाद खि.३००से ६०० तक का जो गुप्त राज्यकाल है, उसमें भारतीय कलादृष्टि का सर्वोत्तम विकास हुआ है। गुप्तकालीन शिल्पियों की अद्भुत शिल्पकृतियों में सांगोपांग रमणीयता, मधुरता, सुरूपता आदि जो आकर्षक सद्गुण थे, उनका दर्शन आज भी प्राचीन अवशेषों में होता है इसीलिये गुप्तकाल को सुवर्णकाल कहा जाता है।

विद्वान लोग गुप्तकाल के बाद के खि. ६००से ९०० तक के युग को पूर्व-मध्यकाल कहते हैं। उस समय में कन्नौज का सुप्रसिद्ध राजा हर्ष-वर्धन हो गया। चीनी यात्री ह्युअानस्तॉंग उसी अरसे में भारत आया था। गुप्तकाल का असर उनके अस्तकाल के बाद भी करीब दो तीन सौ साल तक रहा। खि. ९०० से १३०० के उत्तर मध्यकाल में भुवनेश्वर, कोणार्क, खजूराहो, मालवा के परमारप्रासाद, और कुलचुरी राजाओं ने इस मूर्तिकला को अच्छी तरह परिपुष्ट किया है। गुजरात, राजस्थान के चौहाण, राठोड, सोलंकी, परमार आदि राजवंशों ने अपने अपने राज्यकाल में उसको काफी प्रोत्साहन एवं उत्तेजन दिया है।

तामिलनाडु के पाण्डय, चौल, पल्लव राजाओं ने तथा कर्नाटक के होयशाल राजवंशों ने एवं आन्ध्र के राजवंशों ने बड़े बड़े प्रासादों का–महलों का निर्माण करवाया। इतना ही नहीं भारत के प्रत्येक प्रदेश में विशालकाय महाप्रासादों का निर्माण हुआ और अद्भुत मूर्तियों का भी सृजन हुआ। उत्तरमध्यकाल के बाद खि. चौथी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक कला को ठीक ठीक उत्तेजन मिलता रहा।

खि. ९०० से १३०० तक का समय मध्यकाल कहा जाता है। उसके बाद शिल्पियों की कृतियाँ प्रौढावस्था से निकलकर वृद्धावस्था में प्रविष्ट हो गईं। इस काल के आरम्भ के पहले इलोरा में एक पहाड में से भव्य विशाल मन्दिर का निर्माण हुआ, जो कि भारतीय स्थापत्यों में एक आश्चर्यरूप है, भारत की ज्यादातर गुफाएँ उस समय के कुछ पहले या कुछ पीछे देश के भिन्न भिन्न विभागों में बनी हैं।

चौदहवीं शताब्दी के अर्वाचीन काल तक के विधर्मियों के आक्रमण और उनके राज्यशासनकाल के कारण कला का ह्रास होता गया, इसके लिये मूर्तिभंजक विधर्मी लोग जबाबदार हैं। प्राचीन कलामय स्थापत्य का विनाश उत्तरभारत में विशेष हुआ, कला का विकास रुक गया अथवा यों कहिये मन्द पड़ गया।

विधर्मी लोग जहाँ जहाँ स्थायी रूप से रह गये, वहाँ वहाँ हिन्दु स्थापत्यों का विनाश हुआ है। उनके अवशेषों में से विधर्मियों ने अपनी मनपसंद मस्जिदें, मकबरे और दरगाहें आदि स्थान खड़े कर दिये हैं। यह स्थिति विशेष रूप से केवल उत्तरभारत में हुई, दक्षिण भारत में ऐसा प्रायः नहीं हुआ है। परिणामस्वरूप वहाँ कुछ अंश में कला जीवित रह सकी है हालाँ कि कला का विकास तो वहाँ भी रुक गया है।

कला के विनाश को रोकने के लिये पश्चिम भारत के–गुजरात, राजस्थान, मेवाड प्रदेश के–सोमपुरा शिल्पियों, कलिंग, ओरीसा–पूर्व-भारत के महाराणा (महापात्र) शिल्पियों, द्रविड़ प्रदेश के आचार्य शिल्पियों, मध्य प्रदेश के खजूराहो समूहमन्दिरों के शिल्पियों एवं कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश के शिल्पियों ने मृतप्राय बनी भारतीय शिल्पस्थापत्य कला को जीवित रखने का पूरा प्रयास किया है, उसकी सराहना करनी चाहिये।

खजूराहो शिल्पियों के वंशजों का पता नहीं है, न मालूम उन्होंने धर्मान्तिर कर लिया अथवा वे किसी अन्य प्रवृत्तियों में पड़ गये। बाकी के उपर्युक्त शिल्पियों के पास कला के हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह है, कुछ तो उसके आधार पर मन्दिर निर्माण करते हैं।

१४ वीं, १५ वीं शताब्दियों में हिन्दु राजाओं ने अपने अपने प्रदेशों में धर्मस्थान खड़े किये, इससे मूर्तिकला को उत्तेजन मिलता रहा। ईसा के पूर्व के वर्षों से आज तक कालानुसार उसमें कमीबेशी जरूर हुई है, किसी समय भावनिदर्शन में ओजस आया तो किसी समय उसमें सौन्दर्य तत्त्व का ह्रास हुआ; फिर भी धर्म के प्रभाव के कारण कला का आजतक विशेष प्रचार–प्रसार हुआ है, हो रहा है यह सौभाग्य की बात है।

मुस्लीमों के छःसौ वर्ष के राज्यशासनकाल के बाद अंग्रेजी राज्यशासनकाल में कला का ह्रास भले ही रुक गया हो, पर उसका रूप कुछ बदल गया है। वह रूप श्रेष्ठ है या नेष्ट यह एक प्रश्न है। वर्तमान काल में भारतीय कलाकृति के प्रति देशविदेशों में जो अभिरुचि बढ़ती जा रही है यह बड़े हर्ष की बात है।

साथसाथ एक दुःख की बात भी है कि फिलहाल शिल्प, स्थापत्य और चित्र इन तीनों कलाओं में पश्चिम का अनुकरण करनेवाले, पश्चिमी शिक्षादीक्षा से दीक्षित कुछ भारतीय स्थपति और कलाकार भारतीय कलाओं को विकृत रूप दे रहे हैं। वे लोग वास्तव में शिल्प, स्थापत्य और चित्र इन तीनों प्रकार की कलाओं के विकास के नाम पर विनाश कर रहे हैं। अभी अभी कुछ तीसेक वर्षों से कलाविहीन भवनों का ताश के पत्तों के महल की तरह, पक्षियों की घोंसले की तरह निर्माण कर के धनवानों को मूर्ख बना रहे हैं। उसी तरह किसी लकडी के ठूँठ को कल्पनानुसार आकृति देकर अपने शिल्प की वाहवाह करवाते हैं, जिसका कोई अता–पता नहीं होता। टेढामेढा गाढा लेप इधरउधर लगाकर चित्र बनाते हैं, जिसका कोई अर्थ नहीं निकलता, जिसके मुँहमाथे का पता नहीं चलता, उसकी काफी प्रशंसा की जाती है। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह हास्यास्पद बात है। ऐसा वर्ग दूसरों को पागल बना रहा है, जब कि पश्चिम के देश हमारी इस प्राचीन कलाकृतियों का आदर करते हैं। हमारे भारतीय पश्चिम का अन्ध अनुकरण करके देश की कला का सत्यानाश कर रहे हैं, 'मॉडर्न आर्ट' के नाम पर अपने आपको धोखा दे रहे हैं, यह देखकर घृणा पैदा होती है–दुःख होता है।

जिस कला को दूर से देखते ही प्रेक्षक उसका पूरा रहस्य समझकर आनन्दविभोर हो जाये वही असली कला है। घृणाजनक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विकृत मॉडर्न आर्ट को देखकर दुःख हो यह स्वाभाविक है। देश के प्राचीन कलारसिकोंको चाहिये कि वे उसके विरुद्ध में आन्दोलन करें और भारतीय कला का रक्षण करने का फर्ज अदा करें।

कला श्री अथवा सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने का अपूर्व साधन है। प्रत्येक कलात्मक रचना में श्री अथवा सौन्दर्य का निवास है। जिस सृष्टिसर्जन में श्री नहीं है वह रसहीन है। रसहीन में प्राण कभीं नहीं रहता। जहाँ रस, प्राण और श्री ये तीनों एक साथ रहते हैं, वहीं कला रहती है। कहते हैं कि आनन्द के अनुभव के लिये ही विश्वकर्मा ने सृष्टि की रचना की है।

वस्तुतः कला इस जीवन के सूक्ष्म और सुन्दर पट पर एक वितान है, कला का प्रत्येक उदाहरण जगमगाते दीपक की तरह हमारे चारों ओर प्रकाश के किरण फैलाता रहता है।

शिल्पी कलाकार की भाषा, राष्ट्र का गूढ चिन्तन व्यक्त करने योग्य होती है, शिल्पी की भाषा बहुत अर्थवती होती है, यह सृष्टि देवसृष्टि है, उसमें शिल्पी को शब्दों के द्वारा कुछ कहना नहीं पड़ता, वे शिल्पलिपि के अक्षर, सर्व देश और काल की कला में अपना अभिप्राय व्यक्त करने में समर्थ होते हैं। शिल्पी अनगढ़ शिलाखण्ड की धैर्य के साथ आराधना करता है, उसकी इस निष्ठा के कारण पाषाण द्रवित होकर श्री और सौन्दर्य के रूप में परिणत हो जाता है, वहीं कला की भावना प्राण का संचार कर देती है।

भारतीय शिल्पियों की प्रशंसा

शिल्पियों ने जड़ पाषाण को सजीव रूप देकर पुराण के काव्य को प्रत्यक्ष रूप दे दिया है, उसका दर्शन करके गुणज्ञ प्रेक्षकगण शिल्पी की सृजनशक्ति की प्रशंसा करते नहीं अघाते, शिल्पियों ने यहाँ टाँकणों के शिल्प द्वारा और तूलिका के चित्रों द्वारा अमर कृतियों का सर्जन किया है, अखण्ड पहाड़ में कुरेदे हुए इलोरा के काव्यमय मन्दिर की रचना तो शिल्पियों की अद्‌भुत चतुराई की परिचायिका है।

भारत के शिल्पियों ने पुराणों के प्रसंगों को पाषाण में ऐसे कुरेदा है कि वे सजीव जान पड़ते हैं, उनके टाँकणों–औजारों की सर्जनशक्ति प्रशंसा के पात्र है। पाषाणशिल्प से शौर्य और धर्मभाव व्यक्त होता है। जड़ को वाणी देनेवाले शिल्पी कवि ही हैं, वे खूब धन्यवाद के पात्र हैं।

जड़ पाषाण में प्रेम, शौर्य, ह्रास, करुणा आदि भावों को मूर्तिमन्त करना बहुत कठिन है। चित्रकार रंग और रेखाओं के सहारे उन भावों को आसानी से व्यक्त कर सकता है; परन्तु शिल्पी बिना रंग–रेखा की सहायता के पाषाण में भावों का जो सृजन करता है, वह उसकी अपूर्व शक्ति का परिणाम है।

भारतीय शिल्पस्थापत्य आज भी जीती-जागती कला है। उसे अपनी कृति में भाव उतारने होते हैं, जब कि युरोपीय शिल्पी तादृशता का निरूपण करते हैं, उन दोनों के उदाहरण अलग अलग हैं।

भारतीय शिल्पियों ने, भारतीय जीवनदर्शन और भारतीय संस्कृति को अपना सर्वोत्तम लक्ष्य बनाकर, राष्ट्र के पवित्र स्थानों को पसंद कर के, वहाँ अपना जीवन बिताकर विश्व की शिल्पकला के इतिहास में बेजोड़ विशाल भवन–स्थापत्य निर्माण किये हैं। भूख और प्यास की बिना पर्वाह किये दीर्घकाय शिलाओं को कुरेदकर, गढ़कर वहाँ मूर्तियों का सृजन करके अपनी धर्मभावना राष्ट्र के चरणों में अर्पित की है। जनता ने भी प्रसन्नता से अपने शिल्पीगण की अक्षय कीर्ति को दसों दिशाओं में फैलाया है। ऐसे शिल्पियों की अद्‌भुत कला के कारण दुनिया के गुणज्ञों ने भारत को अजर और अमर पद दे दिया है। ऐसे पुण्यशाली शिल्पियों को कोटि कोटि धन्यवाद।

भारत के उत्तम कलाधामों पर तेरहवीं शताब्दी के बाद दुर्भाग्य का चक्र घुम गया। छःसौ साल तक उन पर धर्मान्धता के घनप्रहार होते रहे फिर भी भारतीय कला में संस्कृति जीवित रही, उसकी पक्की नींव को वे न हिला पाये। उसके बचेखुचे अवशेष भी गौरवपूर्ण हैं। आज भी विदेशी कलाविशेषज्ञ लोग इसे देखकर आश्चर्यमुग्ध हो जाते हैं।

भारतीय शिल्पियों ने अपनी कला के द्वारा स्वर्ग-वैकुण्ठ को धरती पर उतार दिया है। राष्ट्रीय जीवन को समृद्ध प्रेरणा दी है। आज राज्यकर्ता सरकार स्थापत्य के प्रति बेदरकार बन गई है, धनीवर्ग उस पर ध्यान न दें ऐसी स्थिति सरकार ने पैदा कर रखी है। आज धर्माध्यक्ष का अस्तित्व ही नहीं है, मतलब कि वर्तमानकाल में कला के प्रोत्साहित करनेवाले धर्माध्यक्ष, धनी और राज्यकर्ता नहीं रहे, यह देश का दुर्भाग्य है। क्षणिक मनोरंजन करनेवाले नृत्य-गीत को फिलहाल राज्याश्रय मिल रहा है, और स्थायी सुन्दर शिल्पकला के प्रति दुर्लक्ष किया जाता है यह बड़े ही अफसोस की बात है।

अश्लील स्वरूप

भारत के, विशेष करके उत्तर, पूर्व और पश्चिम आदि प्रदेशों के वैदिक, बौद्ध और जैन सम्प्रदाय के मन्दिरों में छोटे बड़े अश्लील स्वरूप किसी कोने में अथवा आम स्थानों पर सब लोग देख सकें इस प्रकार कोरे गये हैं।

दीपार्णवशिल्प ग्रन्थ में–

नरस्त्रीयुग्मसंयुक्ता जंघा कार्या प्रकीर्तिता।

देवमन्दिर के गर्भगृह के बाहर की दीवाल, जिसे 'मंडोवर' कहते हैं, उसमें स्त्रीपुरुष के संयुक्त स्वरूप बनाने चाहिये ऐसा विधान

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। इसके अलावा ऐसे भी बीभत्स स्वरूप बहुत से स्थानों पर बनाये गये दिखाई देते हैं। बृहत्संहिता और पुराणग्रन्थों में–

मिथुनं पत्रवल्लीभिः प्रमथश्चोपशोभयेत् ।

द्वार में स्त्रीपुरुषों के युग्मरूप–मिथुन–जोड़े बनाने का निर्देश है। अग्निपुराण में द्वारस्वरूप के वर्णन में लिखा है कि–

अधः शाखाचतुर्थांशे प्रतिहारो निवेशयेत् ।
मिथुनं रथवल्लीभिः शाखाशेषे विभूषयेत् ॥

प्रासाद के द्वारा की ऊँचाई के चौथे भाग पर प्रतिहार–द्वारपाल–का स्वरूप बनाकर उसे विशेष कल्पलता से अलंकृत करना चाहिये।

तीसरी चौथी शताब्दी में गुप्तकाल में देवगढ़ के दशावतार कलामन्दिर के द्वार की शाखाएँ उपर्युक्त पाठ के अनुसार बनी हैं।

मिथुन शब्द का अर्थ है स्त्रीपुरुष का जोड़ा। शिल्पियों ने उसका विपरीत अर्थ–मैथुन समझकर ऐसे अश्लील स्वरूप बनाये हैं, ऐसा मालूम पड़ता है। शिल्प के ऐसे स्वरूपों की रचना के पीछे लौकिक मान्यताएँ इस प्रकार भिन्न भिन्न हैं।

(१) सृष्टिसर्जनशक्ति का निरूपण करने के हेतु देवमन्दिरों में लोकलीला प्रदर्शित की जाती है।

(२) देवमन्दिरों में ऐसे शिल्पों के देखने पर भी दर्शकों के चित्त चलायमान न हों तो समझना चाहिये कि वे सच्चे अधिकारी हैं। दर्शकों की मनोबल की इससे परीक्षा होती है।

(३) वज्रपातारिभीत्यादिवारणार्थं यथोदितम् ।
शिल्पशास्त्रेऽपि मण्डादिविन्यासपौरुषाकृतिः ॥
मन्दिरों में ऐसे बीभत्स स्वरूपों की रचना करने से उन पर बिजली पड़ने का भय नहीं रहता।

(४) सुन्दर मन्दिर की कृति पर किसी की नजर न लग जाय इस हेतु से बीभत्स स्वरूपों की योजना की जाती है। युरोप में भी नये चर्च को किसी की नजर न लग जाय इस हेतु से वहाँ झाड़ू टाँग दिया जाता है।

(५) वैराग्य भावना से दर्शकों को विमुक्त करने के हेतु भी ऐसे शिल्प किये जाते हैं।

(६) शिल्पियों की कुतूहल वृत्ति के कारण ऐसे शिल्पों की योजना होती है।

उड़ीसा के प्राचीन शिल्पग्रन्थ–शिल्प प्रकाश, अध्याय–२ :

मिथुनबन्धः श्रृणु मिथुनबन्धाश्च कस्मिन्यंत्रादिनिर्णयः ।
नानामिथुनबन्धा हि कामशास्त्रानुसारतः ॥
मुख्या हि केवलं केलिः न पातो न च संगमः ।
केलिः बहुविधा शास्त्रे केवलं क्रीड़ा भाषिता ॥

बुन्देलखण्ड के खजूराहो के समूहमन्दिरों में सुन्दर समृद्ध कला है। उसमें ऐसे कई स्वरूप कोरे गये हैं, उसके विषय में एक ऐसी मान्यता अथवा लोकोक्ति है कि 'हेमवती' नामक किसी रूपवती स्त्री ने चन्द्रमा के साथ कुछ दुर्वर्तांव किया, उसके प्रायश्चित्त के रूप में खजूराहो और सारे बुन्देलखण्ड के मन्दिरों में अश्लील मूर्तियों का सर्जन किया गया है।

कलिंग–उड़ीसा के, भुवनेश्वर के समूहमन्दिरों में और जगन्नाथपुरी के विशाल मन्दिरों में तो उनके विस्तार में चार चार फूट ऊँचे बड़े चेष्टास्वरूप खड़े कर दिये हैं जो कि कलियुग के स्त्रीपुरुष व्यवहार की क्रिया बताते हैं। दर्शकों की पहली दृष्टि उस पर पड़े ऐसी जगह वे कोरे गये हैं। लोगों का कहना है कि उस जमाने में वाममार्गियों का प्राबल्य था। इस प्रदेश के प्राचीन शिल्पग्रन्थ 'शिल्पप्रकाश' में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि 'देवमन्दिरों में अश्लील स्वरूप का निर्माण करना ही चाहिये।' उत्तर भारत के किसी भी शिल्पग्रन्थ में ऐसी बात का उल्लेख नहीं मिलता।

श्रृंगारहास्यकरुण–वीर रौद्रभयानकाः ।
बीभत्साद्भुत इत्यष्टौ शान्तश्च नवमो रसः ॥ शिल्परत्न, अ० ३५

श्रृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नवरस विशेष रूप से चित्रकला में होते हैं, उनमें से कुछ रस शिल्प में भी हैं।

देवालय और राजालय में इन रसों का निरूपण कहा गया है; परन्तु युद्ध, स्मशान, करुण मृत्यु, दुःख, कल्पान्त, नग्नतपस्वी आदि असंगल विषयों का आलेखन नहीं करना चाहिये ऐसा द्रविड़ के शिल्परत्नने कहा है, इसीलिये द्रविड़ देश में ऐसे स्वरूपों का आलेखन कम मात्रा में दिखाई देता है। केवल उत्तर भारत के देवमन्दिरों में ही अश्लील स्वरूपों का आलेखन मिलता है।

यद्यपि द्रविड़ में शिव के ग्यारह स्वरूपों में भिक्षाटन समय का शिव का स्वरूप नग्न बताने के बारे में विधान मिलता है। वीतराग दिगम्बर की जैनमूर्तियाँ निर्वस्त्र–नंगी होती हैं, उनके क्षेत्रपाल के स्वरूप के विषय में लिखा है कि–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षेत्रपालविधानाय दिग्वासा घण्टभूषिताः ।

क्षेत्रपाल के पैरों में खड़ाऊँ होने चाहिये, वह नंगा होना चाहिये और वह घंटियों से विभूषित होना चाहिये । साँप की जनेऊ भी उसको रहती है ।

कामशास्त्र के संस्कृत ग्रन्थों में जो निर्दंभ उल्लेख है, उसीका अनुसरण मन्दिरों में मिलता है। कलामय देवप्रासादों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का निरूपण मिलता है । वहाँ किस पुरुषार्थ की अवगणना की जा सकती है ?

कविभूषण कालिदास ने अपने श्रेष्ठ संस्कृत काव्यों में, नाटकों में जो प्रणयवर्णन किया है उनको वाणी द्वारा व्यक्त करने में भले ही संकोच का अनुभव होता हो, लेकिन शिल्पी समाज में उसका बहुत आदर होता है, उन कृतियों को क्या हम अधम कहेंगे ?

भारत के प्रत्येक कविवर ने स्त्री के प्राकृतिक स्वरूप के गुणगान किये हैं। उसके सौन्दर्य का अनुपान करानेवाले कालिदास और भवभूति जैसे महान कविवरों ने स्त्री के रूप और गुण की मधुर गाथा गाई है। इससे प्रसन्न हुए शिल्पियों ने स्त्रीसौन्दर्य को मातृत्व भावना से शिल्प में उतारा है, उसी चीज को युरोपीय कुछ शिल्पियों ने वासना का विषय बनाकर शिल्पस्थ किया है ।

युरोप की निर्वस्त्र नारीस्वरूपों की प्रतिकृतियाँ हमारे शहरों में आम जगहों पर रखी जाती हैं ।

स्थपति

प्राचीन शिल्पस्थापत्यों की कृतियों पर उनके निर्माताओं के नाम शायद ही कहीं खुदे हुए मिलते हैं। दूसरी शताब्दी में आन्ध्र में स्थपति अनामदा, सारनाथ में शिल्पी वामन, धारानगरी में रूपकार सिहाक और उनके पुत्र रामदेव हुए। ख्रिस्ताब्द ७४४ में धातुमूर्तिकार शिवनाग (राजस्थान) और बंगाल में पालवंश के आठवीं सदी के धातुमूर्तिकार धीमन हितभाव हुए हैं ।

नवीं शताब्दी में गुजरात में रुद्रमहालय के निर्माता स्थपति गंगाधर और उनके पुत्र प्राणधर हुए। ख्रि.१०२० में आबू के विश्वप्रसिद्ध विमलमंत्री के मन्दिर के निर्माता गणधर हो गये। ख्रि. १२१० में हीराधर (डभोई) हुए। ख्रि. १२८५ में आबू के वस्तुपालमन्दिर के निर्माता शोभनदेव स्थपति विश्वकर्मा के अवतार माने जाते थे ।

ग्यारहवीं शताब्दी में धारानगरी में प्रमाणमंजरी ग्रन्थ के कर्ता नकुल के पुत्र मल्लदेव हो गये ।

ख्रि. १४९५में राजस्थान–राणकपुर के चतुर्मुखनामक भव्य प्रासाद के निर्माता सोमपुरा देपाक थे ऐसी लोकोक्ति है ।

ख्रि. ११७६में कर्नाटक में होयशाल, बेलूर, सोमनाथपुरम, हलेबीड मन्दिरों का निर्माण डंकनाचार्य ने किया था।

पंद्रहवीं शताब्दी में भारद्वाज गोत्र के सोमपुरा खेता और उनके परिवार के मण्डल को मेवाड के महाराणा कुंभा ने आमंत्रण देकर बुलवाया था और उनके द्वारा चित्तोड और उसके आसपास के मन्दिरों का एवं कीर्तिस्तम्भ का निर्माण करवाया था। मण्डन संस्कृत के भी अच्छे विद्वान थे। उस जमाने में शिल्प के ग्रन्थ अस्तव्यस्त एवं अशुद्ध थे, उनका संकलन करके, उनको शुद्ध करके, प्रासादमण्डन, रूपमण्डन, वास्तुमण्डन, राजवल्लभ, वास्तुसार, रूपावतार, देवतामूर्ति प्रकरण आदि ग्रन्थों का उन्होंने नवसंस्करण किया। उनके भाई नाथजी ने वास्तुमंजरी की और उनके परिवार के गोविन्द तथा सुखानन्द ने कलानिधि, वास्तुउद्धारधोरणी और वास्तुकम्बासूत्र की रचना की।

सत्रहवीं शताब्दी में मेवाड़ में कांकशेली के रामनगर के विशाल सरोवर का संगमरमर का किनारा और हजार फीट लम्बी छतरियाँ बनी हैं। वहाँ सोमपुरा के तीनसौ परिवार रहते थे। मेवाड़ के राणा ने उन स्थपतियों को धन, जमीन, गायें और जायदाद देकर अच्छा सम्मान किया था ।

पन्द्रहवीं शताब्दी में आबू–अचलगढ की धातु की मूर्तियाँ शिल्पी वाच्छापुत्र देवानापुत्र अर्जुन के पुत्र हरदा ने बनाई थीं और दूसरी मूर्तियाँ डुंगरपुर के शिल्पी लुम्बा और लोभा ने बनाई थीं ।

सं. १७९० में शिहोर और भावनगर के महाराजा के स्थपति अर्जुनदेव और अम्बाराम ने वहाँ कुछ स्थापत्य का काम किया है, भावनगर शहरकी स्थापना उनके ही समय में हुई थी । सं. १८२५ में पालीताना–शत्रुंजय पर्वत पर उन्होंने कुछ मन्दिरों का निर्माण किया, औरअगलबगल के कुछ मन्दिर मंगलजी और लाधाराम ने बनाये ।

सं. १८८५ में पालीताना–शत्रुंजय पहाडी की दो चोटियाँ अलग अलग थीं । सेठ मोतीशाह की टुंक के लिये दो चोटियों को मिलाने की योजना रामजी भाने की उन चोटियों को मिला देना चाहते थे; लेकिन बीच में चुनाई की जगह नहीं थी। स्थपति रामजी लाधाराम ने युक्ति से कुछ ऐसी योजना बनाई कि जिसके द्वारा दो चोटियों के बीच की जगह भर दी, परिणामस्वरूप ऊपर विशाल जगह बन गई, उस पर उन्होंने मोतीशाह के नाम की एक टुंक बना दी, तब से पहाड पर के प्रवेशद्वार को 'रामपोल' नाम दिया गया और इस तरह रामजी की स्मृति कायम कर दी गयी ।

स्थपति रामजीभा कुशल स्थपति थे। उन्होंने कई स्थानों पर मन्दिरों का निर्माण किया । शत्रुंजय पहाडी पर की कई टुंक उन्होंने बनाई थी। उस जमाने में उन्होंने शिल्पपद्धति में काफी सुधार किया था। स्थपति रामजीभा के पुत्र रणछोडजी ने वढवाण, जसदण और पालीताना–महाराजाओं के राजमहल बनाये थे। उनके भतीजे भवानभाई और ओघड़भाई ने सौराष्ट्र में अनेक मन्दिरों का निर्माण किया था। नवमी शताब्दी में त्रिनेत्रेश्वर के कलामय भव्य मन्दिर का सर्जन उन्होंने ही किया था। इसके अलावा वे सरकारी भवनों का निर्माणकार्य भी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करते थे। ये सभी भारद्वाजगोत्र के स्थपति थे। उपर्युक्त अर्जुनदेव, अम्बाराम, मंगलजी, लाधाराम, रामजी, रणछोड़, भवानभाई और ओघड़भाई ये सब इस ग्रन्थ के लेखक के उत्तरोत्तर पिता, पितामह, प्रपितामह आदि थे। मेरे बड़े भाई स्वर्गीय भाईशंकरभाई ने सौराष्ट्र और महाराष्ट्र में कई मन्दिरों का निर्माण किया है। मेरे जेष्ठ पुत्र बलवन्तराय ने शिल्पशास्त्र का अच्छा अध्ययन किया है। उसने जैनियों के एवं बम्बई (कल्याण) में बिरलाजी द्वारा आयोजित तथा रेणुकूट के भव्य मन्दिरों का निर्माण किया है।

सं. १९०० में अहमदाबाद के हठीसींग के बावन जिनालयों का निर्माण प्रेमचन्दजी सोमपुरा ने किया था।

अठारहवीं शताब्दी में पालीताना में शामजी गोरा ने शत्रुंजय पहाड़पर 'उन्नत चोमुख' नामक विशाल, भव्य शिखिर थोडासा बनाया था, जो बाद में १८६० में जसकरणजी ने पूरा किया।

जैनपेढी के स्थपति नथुभाई गणेशजी और उनके पुत्र खुशालदास ने शत्रुंजय पहाड पर के एवं पालीताना शहर के कुछ मन्दिरों का निर्माण किया था। उन्हीं के कुल के धरमशी और तुलजाराम मूर्तिविधान करने में मूर्ति का तादृशरूप बनाने में कुशल थे।

अभी अभी करीब पिछले पचहत्तर वर्षों में पालीताना में प्राणजीवन और वीसनगर में प्रल्हादजी तथा नाथुराम अच्छे स्थपति हो गये। उनको शिल्प का शास्त्रीय ज्ञान भी अच्छा था। वढवाण के तुलसीदास और अम्बाराम ने 'प्रासादमन' के प्रथम अध्याय का एवं 'केशराज', ग्रन्थ का प्रकाशन किया था। उनके पुत्र जगन्नाथ ने भी 'बृहत् शिल्पशास्त्र' नामक मौलिक ग्रन्थ तीन विभागों में प्रकाशित किया था। पालीताना में वेलजी अनोपराम और भाईशंकर गौरीशंकर हो गये, जिनको क्रिया का बहुत अच्छा ज्ञान था। उन्होंने भी कई मन्दिरों का निर्माण किया था। मेरे स्वर्गीय मित्र नर्मदाशंकरभाई बहुत कुशल स्थपति थे। उन्होंने कई कलामय मन्दिरों का निर्माण तो किया ही, विशेष में उन्होंने 'शिल्परत्नाकर' नामक एक बड़े शिल्पग्रन्थ का प्रकाशन भी किया। गायकवाड सरकार ने उनको अपने यहाँ स्थान दिया था।

राजस्थान–जावाल के श्री अचलाजी और ताराचंदजी, उनके बाद चांदोर के सरमेलजी और सादड़ी के चम्पालालजी आदि ने जैन मन्दिरों का निर्माण किया है।

करीब साठसत्तर वर्ष पहले डुंगरपुर–वांसवाडा के गुलाबजी और ध्रांगध्रा के हरिशंकरजी कुशल मूर्तिकार थे। वे तादृश्य स्वरूप निर्माण करने की शक्ति–समझ रखते थे। गुलाबजी स्वभाव के मस्त थे, वे करोडपति की भी कभी पर्वाह नहीं करते थे। उन्होंने अहमदाबाद में 'यतासाकी पोल' में आरस का सुन्दर जिनमन्दिर बनाया है। पिछली जिन्दगी में वे इडर की पहाड़ियों की गुफा में रहते थे। प्रसिद्ध शिल्पी जगन्नाथ अम्बाराम उनको अपना गुरू मानते थे। केन्वास पर ऑईल पेइन्ट किया हुआ उनका तैलचित्र आज भी जगन्नाथजी के पास है।

वर्तमान में (फिलहाल) लेखक, जिनका परिचय आगे दिया जायेगा, सोमपुरा नन्दलाल चुनीलाल, सोमपुरा मनसुखलाल लालजीभाई, सोमपुरा अमृतलाल मूलशंकर और सोमपुरा भगवानलाल गिरधरलाल मन्दिरों का निर्माण कार्य कर रहे हैं।

इस समय सोमपुरा मूर्तिकारों में जगन्नाथ देवचंद, बम्बई में हरगोविददास लल्लुभाई अच्छे कुशल माने जाते हैं। वे स्टेच्यु (प्रतिमूर्ति) भी अपने स्टूडियों में बनाते हैं, मन्दिर–निर्माण के उपरांत दूसरे कलाविषयक विशेष काम भी करते हैं। दुर्गाशंकर, बलदेव लक्ष्मीशंकर, प्रभुदास लक्ष्मीशंकर, विनोदराय अमृतलाल, तलवाड़ा के कस्तूरचंदजी, डुंगरपुर के रघुलालजी, वढ़वाण के नन्दलाल जटाशंकर, नवीनचन्द्र नन्दलाल, पालीताना के परशुराम हिमतलाल, ध्रांगध्रा के मगनलाल मणिशंकर तथा अहमदाबाद में सोमपुरा अमृतलाल कानजी ये सब प्रख्यात मूर्तिकार हैं वे तादृश्य स्वरूपनिर्माण करने में सिद्धहस्त हैं।

निजी नोंध

आम तौर पर आत्मश्लाघा के भय से निजी नोंध देते समय संकोच का होना स्वाभाविक है। फिर भी ऐसी नोंध से जिज्ञासु पाठकों को प्रेरणा मिलेगी, मार्गदर्शन मिलेगा ऐसी बुजुर्गों की एवं शुभेच्छकों की भावना और उनके आग्रह को आदेश मानकर वह लिखने जा रहा हूँ।

शिल्पस्थापत्य हमारे परिवार का पारंपरिक व्यवसाय है। अंग्रेजी की पढ़ाई करने की महेच्छा थी, लेकिन विधि का विधान कुछ निराला ही था, संयोगवश शिल्प कर्म के व्यवसाय में जुट जाना पड़ा। धीरे धीरे शिल्पकर्म पर हाथ बैठ गया, अधिकार जम गया। घर के पेटीपिटोरे में पड़े हस्तलिखित शिल्पग्रन्थ, पत्रिका, नोंध के कागजात, पूर्वजों के द्वारा तैयार किये गये नकशे और करीबन दोसो वर्ष पहले का पत्रव्यवहार आदि सबकुछ व्यवस्थित कर दिया और उनका अध्ययन शुरू कर दिया। दिन को मैं शिल्पकर्म करता और रात को काफी देर तक ग्रन्थों को पढ़ता। कुछ समझ लेता, कुछ समझ में नहीं भी आता, फिर भी नियमित उनका अभ्यास करता। कुछ हस्तलिखित शिल्पसाहित्य का अंश लिखकर उसका अनुवाद करने का प्रयत्न करता। कुछ उलझनें जरूर आतीं, लेकिन पिताजी के द्वारा क्रिया के ज्ञान के साथ साथ उलझनें सुलझाता।

पिताजी शिल्प का प्राथमिक गणितग्रन्थ 'आयतत्त्व' कण्ठस्थ कराके गणित का ज्ञान देते थे। उसके बाद केशराज और प्रासाद मण्डन के चार अध्याय क्रमशः मुखपाठ करवाया था। यह सब मैं आसानी से बिना रूके, बिना पुस्तक के बोल लेता था। गणित और अन्य विषयों की सक्रिय समझदारी के साथ साथ मैं शिल्प आलेखन (ड्रोईंग) भी करने लगा था।

चार भाइयों में मैं सबसे छोटा था। परिवार के बुजुर्गों को इस बात का सन्तोष था कि यह छोटा लड़का कुलपरंपरा की विद्या सम्हालेगा। मैं रात को बड़ी देर तक बैठकर शिल्पग्रन्थों का अनुवाद करने का प्रयास करता। सं. १९७३ में आज से करीब ५७ वर्ष पहले 'प्रासाद

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मण्डन' का अनुवाद मैंने शुरू किया था। उसमें बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। लेख और प्रत्यक्ष प्रयोग (क्रिया) का मेल बिठाने में थोड़ी दिक्कत पड़ती थी, ऐसे समय पर पूर्वजों के बनाये नकशे बहुत काम देते। ग्रन्थों के वाचन–मनन के साथ मेरे अध्ययन की गाड़ी आगे बढ़ती रही।

बीच में एक साल के लिये मैं बम्बई गया था। कुदरत शायद मेरी कसौटी करना चाहती थी। सं. १९७९ (ख्रि.१९२३) में मैं शारीरिक अस्वस्थता के कारण स्व. बड़े भाई रेवाशंकरजी के पास रहकर एक साल तक खंभात में व्यवसाय करता था, दरम्यान सौभाग्य से मुझे अम्बाजी-कुंभारिया के प्राचीन मन्दिरों के जीर्णोद्धार का काम मिला अथवा यों कहिये सौंपा गया। वहाँ के प्राचीन मन्दिरों का निर्माण और उनकी कला ये दोनों मेरे अध्ययन–संशोधन में काफी सहायक हुए। वहाँ मुझे अपना ज्ञान बढ़ाने की अच्छी सुभीता मिली। करीब पाँच वर्ष मैं वहाँ टिक गया, उस दरम्यान मैंने 'क्षीरार्णव' और 'दीपार्णव' जैसे कठिन ग्रन्थों का संशोधन किया। मेरे अनुवाद के कार्य को भी अच्छा वेग मिला। रूपमण्डन, प्रासादमंजरी, वास्तुसार का अनुवाद मैंने यहीं किया। अलबत्ता, संस्कृतभाषा का मेरा ज्ञान जो मर्यादित था, इसलिये मैंने यह सारा साहित्य पेन्सिल से ही लिखा था, शिल्प के पारिभाषिक शब्दों का अनुवाद करना तो अच्छे महामहोपाध्याय के लिये भी मुश्किल था। कुंभारिका के निवास दरम्यान मेरी पारिवारिक परिस्थिति भी अच्छी हो गई थी।

बम्बई की रॉयल एशियाटिक लायब्रेरी (पुस्तकालय) से 'वृक्षार्णव' जैसे एक अद्‌भुत ग्रन्थ के कुछ अध्याय मैंने प्राप्त किये। उनमें से सांधार महाप्रासाद के पाठ और देवांगनाओं के स्वरूपलक्षण के अध्याय मिले।

सं. १९८६ से १९९१ (ख्रि. १९३० से १९३५) तक के पाँच वर्ष के कदमगिरि के निवास दरम्यान उपर्युक्त सारे ग्रन्थों का पूरा अनुवाद, संशोधन–परिवर्तन–परिवर्धन के साथ पक्की कापियों में (फैर) लिख लिया था।

सं. १९९१ (ख्रि. १९३५) से मैं अपने जन्मस्थान पालीताना में रहने लगा। उस दरम्यान मैंने बम्बई, वेरावल, जामनगर, राजकोट, गु. पाटण, पालीताना (जलमन्दिर, आगममन्दिर), सुरेन्द्रनगर, प्रभासपाटण, भावनगर, जूनागढ़, अहमदाबाद (साबरमती), आदि शहरों में और उनके अगलबगल के गाँवों में, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बंगाल, केरालां आदि प्रदेशों में करीब सौ से भी अधिक बडेबडे मन्दिरों का निर्माण किया। इनमें से बहुत से प्रासाद बहुत विशाल और भव्य बने हैं। बावन जिनालय आदि मन्दिर एक लाख से लेकर पाँच, दस, बीस लाख रुपयों का खर्च करके सुन्दर कलामय ढंग से बनाये गये हैं। इसके अलावा ग्यारहवीं शताब्दी के कुंभारियाजी के कलापूर्ण मन्दिरों का जीर्णोद्धार और सेठ अरविन्दभाई मफतलाल के द्वारा करवाया गया 'शामलाजी' मन्दिर का जीर्णोद्धार–पुनरुद्धार ये सारे कार्य किये हैं। शामलाजी मन्दिर का काम बारहवीं शताब्दी की एक प्रतिकृति है। उस काम में करीब आठ लाख रुपयों का खर्च किया गया है। साथ में मेरा ज्येष्ठ पुत्र बलवंतराय था।

सं. २००६ (ख्रि. १९४८) में स्वतंत्र भारत के उपप्रधानमंत्री श्री. वल्लभभाई पटेल ने सोमनाथ के प्राचीन मन्दिर के नवनिर्माण के विषय में विचारणा करने के लिये निमंत्रण देकर दिल्ली बुलाया था। सोमनाथ के साधार महाप्रासाद का निर्माण उस विषय के पूर्ण अभ्यासी के सिवा दूसरे के द्वारा करना मुश्किल था। लोग कहते हैं कि हमारे ही भारद्वाजगोत्री पूर्वजों ने इस प्राचीन मन्दिर का निर्माण किया था। मेरे करीब पैंतीस वर्ष के अभ्यास और अनुभव ने इस भगीरथ कार्य में अच्छी सहायता दी, इसको मैं परमात्मा की पूर्ण कृपा मानता हूँ। सोधार महाप्रासाद की रचना करीब सातसौ वर्षों से बन्द है, इसलिये उसका ज्ञान प्रायः विस्मृत सा हो गया है। सतत अभ्यास के कारण मैं यह कार्य कर सका इसलिये मैं अपने आपको ईश्वरकृपासे धन्य मानता हूँ।

सोमनाथ के मन्दिरनिर्माणकार्य के दरम्यान भारत के प्रधानमंत्री, प्रान्तीय मुख्यमंत्रीगण, महान नेतागण, गवर्नर और देशविदेश के विशेष रूप से युरोप–अमरीका के विशिष्ट व्यक्तियों से कभी कभी मिलने का अवसर आता था। वे हम लोगों के प्रति पूर्ण सद्‌भाव रखते थे। सम्मान की दृष्टि से हमें देखते थे। श्री. सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री. जामसाहब, श्री. कनैयालाल मुनशी, श्री. गाड़गीळ, श्री. ढेबरभाई आदि के साथ हमेशा संपर्क बना रहता।

श्री. सोमनाथ का काम चालू था, उसी समय ख्रि. १९५८ के अरसे में श्री. बिरलाजी के प्रतिनिधि श्री. नवेटियाजी से सोमनाथ मन्दिर में मेरी प्रथम भेंट हुई। श्री. बिरलाजी की इच्छा के अनुसार कल्याण–सेन्चुरी में विठोबा, लक्ष्मीनारायण मन्दिर की एवं एक पहाड़ी पर 'पाँचपद' के गूढ मण्डप और नृत्यमण्डपवाले एक भव्य विशाल प्रासाद की रचना हुई। उत्तरप्रदेश में वाराणसी के पास रेणुकूट की एल्युमीनियम फैक्टरी में एक पहाड़ी पर उमामहेश का कलामय मन्दिर बनाया और उड़ीसा के भुवनेश्वर के राजरानी मन्दिर का प्रतिकृतिरूप प्रासाद करीब बीस लाख रुपयों की लागत से बनाया। मध्यप्रदेश में उज्जैन के पास नागदा में–ग्वालियर रेयोन में शेषशायी भगवान का मन्दिर, जो कि ग्वालियर के सहस्रबाहु मन्दिर की प्रतिकृतिरूप है, बारह फीट ऊँचे प्लेटफॉर्म पर करीब पैंतीस लाख रुपयों की लागत पर बन रहा है। यह सर्व स्थापत्यको स्व. बलवंतरायका सहयोग था। उद्योगपति श्री. गोयंकाजी की ओर से फिलहाल कलकत्तेमें भव्य शिवालय का निर्माण हो रहा है। भारत के उद्योगपति श्री. अरविन्दभाई मफतलाल ने उसी तरह महाराष्ट्र के सातारा जिले के चाफल गाँव में करीब पन्द्रह लाख रुपयों की लागत से रामचन्द्रजी का भव्य मन्दिर बनाया है। इस कार्य में मेरा पौत्र चंद्रकान्त साथ में था।

मेरे जेष्ठपुत्र बलवन्तराय बारबार इस ग्रन्थ के प्रकाशन की प्रेरणा और प्रोत्साहन देते रहे। वे शिल्पशास्त्र के अच्छे अभ्यासी थे। उन्होंने बम्बई, कल्याण, रेणुकूट, डाकोर, अहमदाबाद, नागदा, शामलाजी, पालीताना आदि स्थानों पर कलामय मन्दिरों के निर्माण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कार्य में मुझे सहयोग दिया है। अन्त में हिमालय के बद्रीनारायण मन्दिर का पुनरुद्धार का काम करते समय वहाँ बगल से बहनेवाली पवित्र नदी–अलकनन्दा के जलप्रवाह में वे गिर गये, बह गये और इस तरह उनकी मृत्यु हो गई। इस अवसर पर वे इस दुनिया में नहीं है इसका मुझे पारावार दुःख है, लेकिन इस ग्रन्थप्रकाशन से उनकी आत्मा अवश्य प्रसन्न होगी ऐसा मैं मानता हूँ।

चि. भाई बलवन्तराय के पुत्र–मेरे पौत्र चि. चन्दकान्त मेरे साथ शिल्पव्यवसाय में जुड़ गये हैं। मेरे दूसरे पुत्र चि. विनोदराय सपरिवार अमरीका में हैं, वहाँ वे मिचिगन स्टेट में सरकारी उच्च ओहदे पर हैं। तीसरे पुत्र चि. हर्षदराय अहमदाबाद हाईकोर्ट में एडवोकेट वकालत कर रहे हैं। चौथे पुत्र धनवन्तराय बैंक-व्यवसाय में हैं।

एक विद्वान कवि ने कहा है कि कवि की जिव्हा में और शिल्पी के हाथों में सरस्वती रहती है। ग्रन्थ में किसी प्रकार की क्षति मालूम हो तो विद्वान लोग उदारता के साथ हंसवृत्ति प्रदर्शित करेंगे ऐसी नम्र विनति है।

शिल्पस्थापत्य के ग्रन्थों का संशोधन और भाषानुवाद होने पर भी जब तक उनके प्रत्येक अंग की टीका के साथ, अन्य ग्रन्थकार के मतमतांतर की नोंध के साथ, प्रत्येक विषय के क्रियात्मक मर्म के साथ उनके आलेखन देने से ग्रन्थ सम्पूर्ण माने जाते हैं। साथ साथ चित्र, कोष्ठक, फोटू आदि भी देना जरूरी है। बिल्कुल इसी प्रकार से ख्रि. १९६० में पहलेपहल मैंने 'दीपार्णव'(१) जैसे एक महान ग्रन्थ का प्र काशनकिया था, उसके बाद जिनदर्शन शिल्प (२), और प्रासादमंजरी (गुजराती–३) और हिन्दी (४) का प्रकाशन किया। प्रासादमंजरी (अंग्रेजी–५) प्रेस में है। क्षीरार्णव (६), वेधवास्तुप्रभाकर (७), प्रासादतिलक (८), भारतीय दुर्गविधान (९), प्रकाशित हो गये हैं। शिल्पस्थापत्यलेखन (१०) प्रेस में है।

इनके अलावा वास्तुतिलक प्रकाशित हो गया (११), वास्तुविद्या (१२), वृक्षार्णव (१३), वास्तुशास्त्र (१४), इन चार ग्रन्थों का संशोधनकार्य चल रहा है। बुजर्गों के शुभाशीर्वाद की और उनके ऋणस्वीकार की नोंध लेते हुए मुझे हर्ष होता है। जगन्नियन्ता श्रीहरि की सी ही कृपा हमेशा बनी रहे, बस यही एक नम्रतापूर्वक प्रार्थना है।

भारतीय शिल्पसंहिता का अंग्रेजी अनुवाद जल्दी प्रकाशित हो ऐसी कामना है, लेकिन यह काम कोई पुरातत्त्वज्ञ विद्वान का साथ मिल जाय तो ही हो सकता है। ऐसे प्रकाशन से दुनिया के प्रत्येक देश के भारतीय शिल्प पर अभिरुचि रखनेवाले विद्वान लाभ ले सकेंगे।

श्री और सरस्वती का सुभग समन्वय पानेवाले श्री. श्रीगोपालजी नवेटिया ने इस पुस्तक के लिये काफी कष्ट उठाया है उनके अमूल्य सुझाव और मार्गदर्शन के लिये मैं उनका हार्दिक आभारी हूँ।

इस पुस्तक का संस्कृत भाग देखकर और उसमें कार्य की शुध्दिया करके मुझे विद्वद आचार्य श्री. भाईशंकर पुरोहित (प्रधानाचार्य, संस्कृत महाविद्यालय, भारतीय विद्याभवन) ने काफी मदद की है। उनके प्रति भी मैं आभारी हूँ।

श्री. वीरेन्द्रकुमार जैन और श्रीमति हेमलता त्रिवेदी ने हिन्दी अनुवाद देखकर उसमें कुछ शुद्धियां की थी उसके लिये मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

इस ग्रन्थ में समयानुसार आवश्यक हेर–फेर करके, व्यवस्थित करने में भाई हरिप्रसाद हरगोविन्द सोमपुरा ने काफी सहायता की है। वे बम्बई युनिवर्सिटी के एम.ए. हैं, उन्होंने कई नाटक, काव्य और कहानियाँ लिखी हैं। वे बार बार मुझको कहाँ करते हैं कि आपके पास वास्तुशास्त्र का गहरा ज्ञानभण्डार है, तो आपको उस विषय के ग्रन्थों का प्रकाशन करना चाहिये, इतना ही पर्याप्त नहीं है आपको तो शिल्पविद्या की विद्यापीठ शुरू करनी चाहिये। उन्होंने मुझे हिन्दी अनुवाद के काम में बहुत सहयोग दिया है।

इस ग्रन्थ में दिये हुए बहुत से आलेखन स्व. चन्दुलाल भगवानजी सोमपुरा (धांगध्रा) के आलिखित हैं। वे कुशल मूर्तिकार थे। और गुजरात के 'माइकल एन्जेलो' कहे जा सकते हैं। मूर्तिकला की तरह वे प्राचीन शिल्पालेखन में भी प्रवीण थे। उनके साथ मेरे पौत्र चन्द्रकान्त, मेरे भानजे भगवानजी मगनलाल, विनोदराय अमृतलाल और बलदेव लक्ष्मीशंकर ने भी कुछ आलेखनों में मुझे सहायता की है, उन सबका मैं आभारी हूँ।

श्रीमान् सेठ श्री. करमशीभाई सोमैया और सेठ श्री. शान्तिभाई सोमैया ने अपने प्रेस में इस ग्रन्थ को मुद्रित करके प्रकाशित करने की अनुमति देकर मुझे आभारी किया है। 'सोमैया पब्लिकेशन्स' के श्री. गं. श्री. कोशेसाहेब, श्री. पुजार एवं मुरलीभाई ने जो परिश्रम किया है, मुद्रणालय के कर्मचारी उसके लिये आभारी हूँ। मेरे परमप्रिय श्री मधुसुदन ढाकी के लेखों को इस ग्रंथमें आवृत्त किया गया है इस लिये मैं उनका ऋणी हुं।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥
इति शुभं भवतु।

विनयप्रभा
३१, इलोरा पार्क, अहमदाबाद–१३
सं. २०२१, नूतनवर्ष
ता. ६ नवम्बर १९७४

स्थपति
पद्मश्री प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा
शिल्पविशारद

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थपति प्रभाशंकर ओघडभाई 'शिल्पविशारद' का हस्तलिखित ग्रन्थसंग्रह

विश्वकर्माप्रणीत

दीपार्णव
क्षीरार्णव
वृक्षार्णव
अपराजितसूत्र
ज्ञानरत्नकोश
जयपृच्छा
जयपृच्छावृद्धायतन
विश्वकर्माप्रकाश
वास्तुशास्त्रकारिका
वास्तुतिलक
नारदशिल्पशास्त्र
सूत्रपतान
ज्ञानसार अपराजित
वास्त्वध्याय
वैमानिक प्रकरण
समरांगणसूत्रधार
लक्षणसमुच्चय
देव्याधिकार
प्रासादतिलक
रत्नतिलक
वास्तुप्रदीप
परिमाणमंजरी
वास्तुकौतुक

बालबोधांकवृत्ति
त्र्यैलोक्यदीपक
ज्योतिषसारसंग्रह
बालबोध
कुंडसिद्धि
कुंडप्रदीप
कुंडाहुति
जिनप्रसाद
जिनवर्णलांछन
जिनप्रतिमापरिकर
समवसरणस्वरूप
ऋषभादि प्रासाद
अष्टापदस्वरूप
मेरुस्वरूप
नन्दीश्वरद्वीपस्वरूप
पातिहार्य चौदह स्वप्न

सूत्रमंडलप्रणीत

प्रासादमंडन
वास्तुमंडन
रूपमंडन
वास्तुसार
रूपावतार
देवतामूर्तिप्रकरणम्
राजवल्लभ

सू. नाथजीप्रणीत
वास्तुमंजरी
प्रासादमंजरी

सूत्रराजसिंहप्रणीत
वास्तुराज (छोटा)
वास्तुराज (बडा)

ठक्कुरफेरुप्रणीत
वत्थुसार
वास्तुसार

सूत्र गोविन्दप्रणीत
कलानिधि
वास्तुउद्धारधोरणी
वास्तुकम्बासूत्र
चतुव्यापिचतुष्कोण
वापिलक्षण
बाणस्थापन
प्रयोजमंजरी
शिल्पदीपक

उपग्रन्थ
आर्यतत्त्व
गृहप्रकरण
गृहवेधनिर्णय
निर्दोषवास्तु
वेधदोषादिनिरूपण
पुण्यविधि
वास्तुपूजा
सर्वदेवप्रतिष्ठा
दिग्पालपूजन
प्रवेशबलि

प्रकीर्णक वास्तु–१
प्रकीर्णक वास्तु–२
केशराज प्रासाद
वैराज्यादिप्रासाद
मेकविंशतिमेरु प्रासाद
विंशतिमेरु प्रासाद
ललितादि प्रासाद
पुस्तकादि प्रासाद
महाधर प्रासाद
कमलोद्भव प्रासाद
तिलक सागरादि प्रासाद

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिल्पशास्त्रीय मुद्रित ग्रन्थसंग्रह

अपराजितपृच्छा
प्रासादमण्डन
रूपमण्डन
प्रतिमालक्षण
देवतामूर्तिप्रकरणम्
राजवल्लभ
विश्वकर्मप्रकाश
विश्वकर्मविद्याप्रकाश
लघुशिल्पसार
शिल्परत्नाकर
शिल्पदीपक
बृहद्शिल्पसार
वत्थुसार
शुक्रनीति
विवेकविलास
श्रीतत्त्वनिधि
बृहत्संहिता
शारदातिलक
आचारदिनकर
निर्वाणकलिका
सम्यक् सम्बुद्धप्रतिमा
वास्तुरत्नावली
द्रविडशिल्पग्रन्थ
मानसर
मयमत
शिल्परत्न
मनुष्यालयचन्द्रिका
काश्यपशिल्प
ईशान शिव गुरुदेवपद्धति
वैरणनसागम
वास्तुविद्या
वास्तुविद्या (मूल)
वास्तुविद्या (सटीक)
वसिष्ठ संहिता
नारद संहिता
उद्धार धोरणी
अभिलाषतार्थ चिन्तामणि
मानसोल्लास
विष्णुसंहिता
युक्तिकल्पतरु
हयशीर्षपंचरात्र
पुराणग्रन्थ
मत्स्यपुराण
अग्निपुराण
विष्णुधर्मोत्तर
भविष्यपुराण
गरुडपुराण
हेमाद्रिव्रतखण्ड

स्थपति प्रभाशंकर प्रकाशित

मूल संस्कृत भाषा टीका सचित्र ग्रंथो

१ दीपार्णव रु. ५०
२ क्षीरार्णव रु. ३०
३ प्रासादमंजरी–गुजराती रु. ७.५०
४ प्रासादमंजरी–हिन्दी रु. ७.५०
५ प्रासादतिलक रु. १५
६ वेधवास्तुप्रभाकर रु. १०
७ जीवदर्शनशिल्प रु. १०
८ भारतीयदुर्गलक्षण रु. ३५
९ भारतीय शिल्पसंहिता
१० प्रतिभा संहिता
११ शिल्पस्थापत्य संहिता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

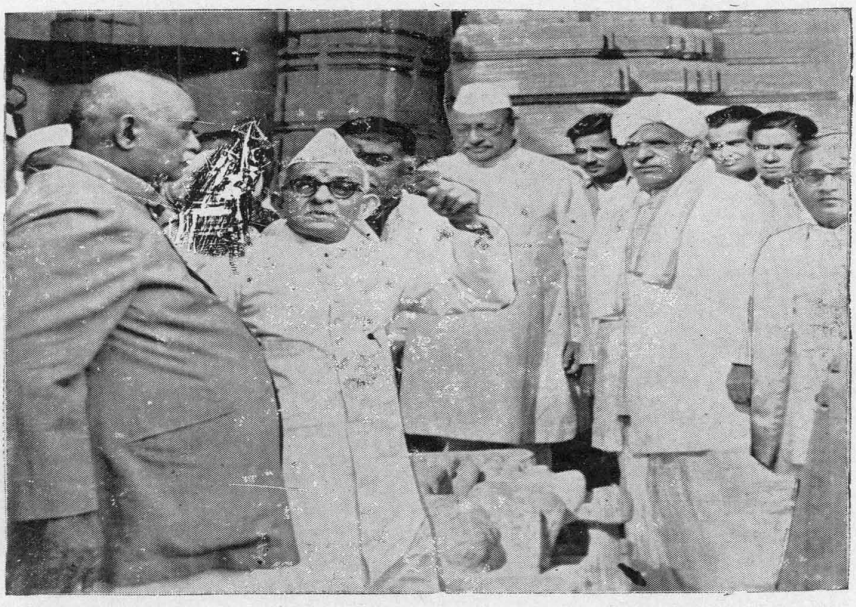

स्व. जामसाहब, मुनशीजी और राज्यपाल श्री प्रकाश — पद्मश्री प्रभाशंकर सोमपुरा

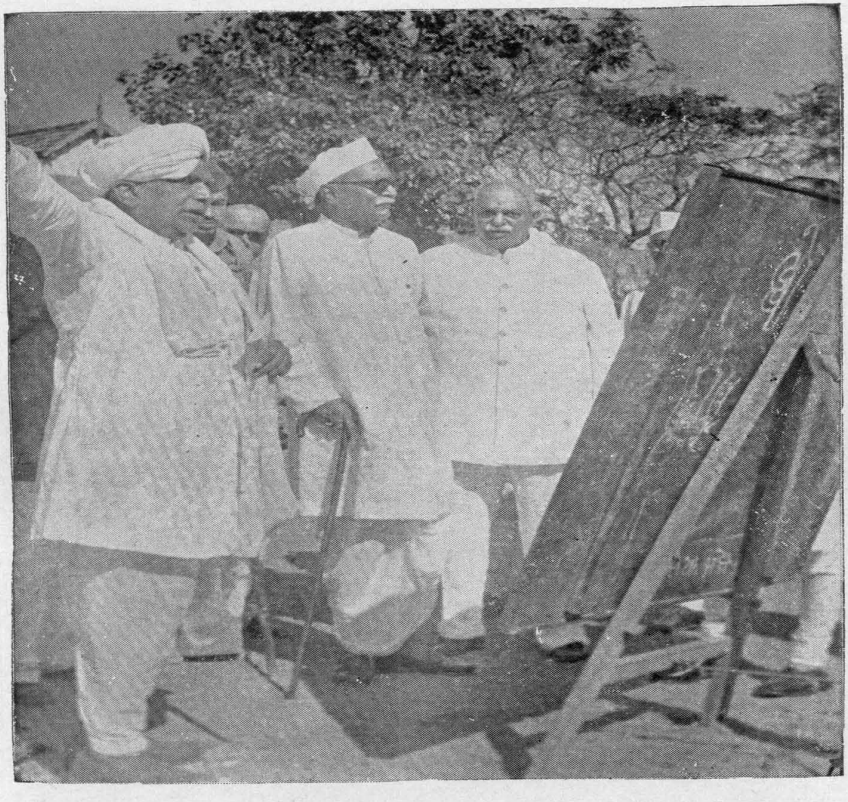

स्व. राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद, पद्मश्री प्रभाशंकर सोमपुरा और स्व. जामसाहब

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

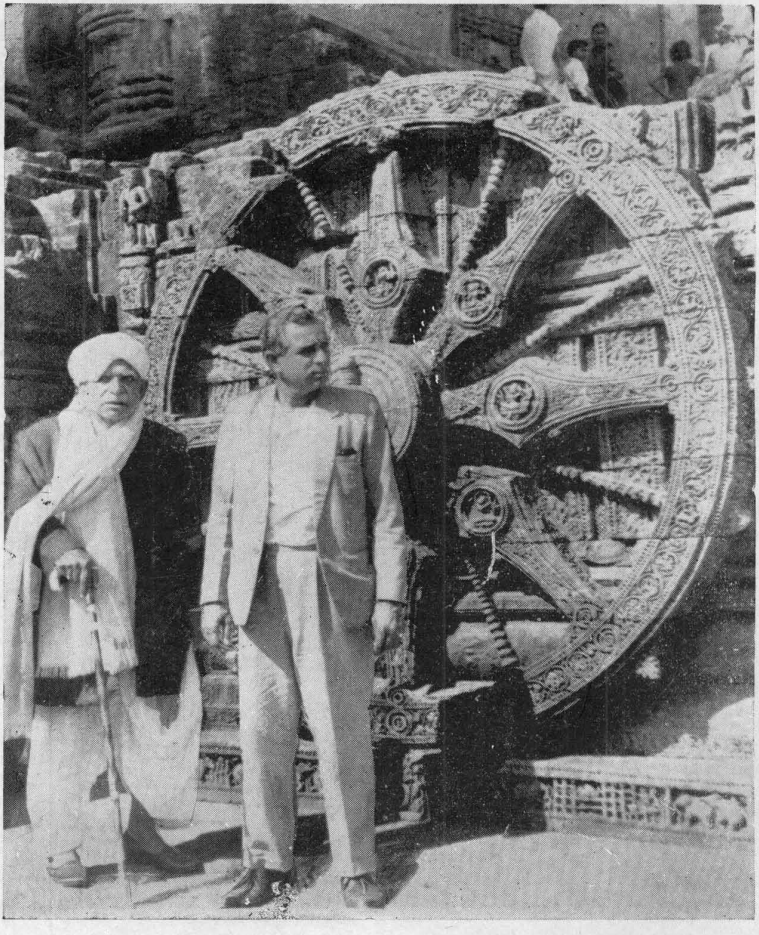

ओड़िसा कोणार्क सूर्य महाप्रासाद में प्रतिष्ठित रथचक्र। मध्य में ग्रंथकर्ता और उनके सुपुत्र बलवंतराय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस पुस्तक के लिखने में निम्न प्राचीन ग्रंथों का ऋण स्विकार है

१. सूत्र संतान, अपराजित सूत्र
२. विश्वकर्म प्रकाश
३. समरांगण सूत्रधार
४. देवतामूर्ति प्रकरण
५. रूपमंडन
६. रूपावतार
७. शिल्परत्नम् (कुमार स्वामी)
८. मानसार
९. काश्यप शिल्प
१०. इशाना शिव गुरु देव पद्धति
११. मत्स्य पुराण
१२. अग्निपुराण
१३. विष्णु धर्मोत्तर
१४. श्रीतत्त्व निधि
१५. मुद्गल पुराण
१६. अंशुयवभेदागम्
१७. वैखावस आगम्
१८. बृहद्संहिता
१९. शुक्र नीति
२०. विवेक विलास
२१. धर्मसिंधु
२२. निर्णय सिंधु
२३. वसिष्ठ. नारद. पराशर संहिता
२४. शारदा तिलक
२५. विश्वकर्म शास्त्र
२६. वास्तु विद्या
२७. द्वीपार्णव
२८. क्षीरार्णव
२९. वृक्षार्णव
३०. मानसोल्लास
३१. लक्षण समुच्चय
३२. वास्तुतिलक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भारतीय शिल्पसंहिता

(पूर्वार्ध)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय क्रम
[उत्तरार्ध]

देवस्वरूप

आमुख	८१
१६. ब्रह्मा स्वरूप	८७
१७. विष्णु स्वरूप	९०
१८. महेश–शिव–रुद्र स्वरूप	११०
१९. देवी–शक्ति–स्वरूप	१२३
२०. दिक्पाल स्वरूप	१४३
२१. ग्रह स्वरूप–आदित्यसूर्य	१५१
२२. प्रकीर्णक देव स्वरूप	१६३
२३. जैन प्रकरणम	१७२
२४. आयतन	२०७

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय क्रम

[पूर्वार्ध]

	प्रस्तावना	vii
१.	मूर्तिपूजा	३
२.	प्रतिमा मान–प्रमाणः तालमान	६
३.	प्रतिमा का वर्ण और उसका वास्तुद्रव्य	१३
४.	हस्तमुद्रायें	१५
५.	पादमुद्रा और आसन	१८
६.	पीठिका	२०
७.	शरीरमुद्रा	२१
८.	वाहन	२४
९.	नृत्य	२६
१०.	षोडशाभरण (अलंकार)	२८
११.	आयुध	४१
१२.	परिकर	४८
१३.	व्याल स्वरूप	५३
१४.	देवानुचर, असुरादि अेकोनविंशती स्वरूप	५७
१५.	देवांगना स्वरूप	६४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्क : प्रथम

मूर्तिपूजा (Idol Worship)

भारतीय शिल्प-स्थापत्य में प्रतिमाओं का विशेष प्राधान्य है। देव प्रासाद, देवमूर्तिओं के कारणभूत माने जाते हैं। कई विद्वान मानते हैं कि वैदिक समय में मूर्तिपूजा नहीं थी। फिर भी उस जमाने में मूर्तिपूजा के कई प्रमाण तो मिलते ही हैं। दूसरे देशों का मूर्तिपूजा का समय और उनके साथ आर्य प्रजा के संबंध देखते हुए यह मानना चाहिए कि भारत में मूर्तिपूजा का अस्तित्व बहुत प्राचीन समय में भी था।

सबसे प्राचीन प्रजा—मध्य एशिया के पर्वतीय प्रदेशों में से आयी हुई—सुमेरियन प्रजा थी। उस समय के मानव देहधारी देवताओं के चित्र और मूर्तिओं के उल्लेख भी मिलते हैं। उससे यह कल्पना की जा सकती है कि वहां मूर्तिपूजा का अस्तित्व रहा होगा। बेबिलोनिया भी असेरिया जितना ही प्राचीन देश है। असेरिया में से प्राप्त ईसा पूर्व चार हजार वर्ष के प्राचीन लेखों में से, मंदिरों में देवताओं का प्रतिष्ठान किये जाने के उल्लेख भी मिलते हैं। धर्म में मूर्तिपूजा शुरू हुई उससे पहले ही, स्वाभाविक क्रम से प्रतिमा बनाने की कला का विकास हुआ होगा। असेरियन प्रजा का धर्म और संस्कृति बेबिलोनियन प्रजा के अनुकरण से जन्मे थे। सो, स्वाभाविक तौर से असेरिया में भी मूर्तिपूजा का अस्तित्व होना चाहिए। ई.स. पूर्व पंद्रहवी शताब्दी में मेसोपोटेमिया से मिस्र में उनके इष्टदेव की मूर्ति भव्य समारंभ के साथ विधिपूर्वक लायी गई थी। यह घटना भी, मूर्तिकला का अस्तित्व उस समय में, उस देश में होने के प्रमाण देती है।

'प्राचीन व्यवस्थान' (ओल्ड टेस्टामेंट : बाइबिल) में उल्लेख है कि पेलेस्टाइन में इजरायली लोग जावेद की प्रतिमा का ई. स. पूर्व आठवीं शताब्दी तक पूजन करते थे। चीन में भी ई.स. पूर्व १२ वीं शताब्दी में मूर्तिपूजा थी। अब वहां बौद्धधर्म प्रचलित है। ग्रीस के एजियन लोग भी मूर्तिपूजक थे।

उसी तरह भारत में भी ई.स. पूर्व की बहुत प्राचीन काल से ही मूर्तिपूजा का अस्तित्व था। लेकिन उसके प्रारंभ के बारे में कई विद्वानों में मतभेद है। सिंध के मोहन-जो-दरो और हरप्पा के अवशेष से इसका काल निश्चित करने में सहायता मिलती है। सिंधु संस्कृति का अभ्यास करने से पता चलता है कि वे अवशेष ई.स. पूर्व २५०० वर्ष से भी प्राचीन होने चाहिए। परंतु, वैदिक संस्कृति के अवशेष ई.स. पूर्व पांचवीं शताब्दी के पूर्व के नहीं मिले हैं। जब कि द्रविड संस्कृति का समय तो उससे भी प्राचीन माना जाता है।

मूर्तिपूजा के प्रमाणरूप सिंधु संस्कृति के काल में माता, शिवलिंग, शिवमूर्ति, योनि, वृक्ष आदि को पवित्र माना जाता था। उस काल में भी पत्थर, माटी और धातु की प्रतिमाएं तैयार की जाती थीं। ई.स. पूर्व ३५०-४०० की मौर्यकाल की एक जैन खंडित मूर्ति मिली है।

पतंजलि भाष्य (ई.स. पूर्व १५०) में देवताओं की मूर्तिओं का उल्लेख है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि देवताओं के मंदिरों को निर्माण तो करना ही चाहिए। पाणिनी कहते हैं कि देव प्रतिमाएं बेचनी नहीं चाहिए, क्योंकि उससे कलाकृतियों का लोप होता है। महाभारत (ई.स. पूर्व २५०) के वनपर्व में भी मूर्तियों का उल्लेख है। अश्वलायन गृह्य सूत्र में गृहदेवता और गृह-निर्माण पदार्थ (Building Materials) के उल्लेख हैं। अथर्ववेद के कौशिकारण्य में, शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ में, तैत्तिरीय ब्राह्मण में और आरण्यक उपनिषद जैसे प्राचीन ग्रंथों में उसके उल्लेख प्राप्त ह।

प्राचीन काल की प्रतिमाएं बहुत ही सुंदर, सौष्ठवयुक्त होती थीं। उस समय के भारतीय शिल्पकार प्रत्यक्ष मानव या प्राणी जैसी नैसर्गिक कलाकृति का सृजन करने का प्रयत्न करते थे। प्रतिमा निर्माण के लिये जरूरी धीरज और एकाग्रता से वे चलित नहीं होते थे। शिल्पग्रंथों और आगमग्रंथों में मूर्तिशास्त्र के अंग उपांगों के नियम भी दिये हुए हैं। कई कला-विवेचक मानते हैं कि शिल्पकार

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पर लदे जड़ नियमों के बंधनों के कारण ही वे पिछले काल में मूर्ति का सौंदर्य विधान गवाँ बैठे। अलबत्ता, गुप्तकाल में मूर्तिकला का अधिक विकास हुआ था।

भारत के लगभग सभी संप्रदायों में मूर्तिपूजा का प्राधान्य स्वीकृत किया गया है।

भारत के सिवा, भारत के पूर्व में आये ब्रह्मदेश, जावा-सुमात्रा, कंबोडिया, सिंहलद्वीप और स्याम तथा उत्तर के अफगानिस्तान आदि, मध्य एशिया के प्रदेशों में भी जहां-जहां भारतीय संस्कृति फैली हुई है, वहां भारतीय शिल्पकृतियां और उनके अवशेष दिखाई देते हैं।

भारत में मूर्तिपूजा हजारों वर्षों से होती चली आयी है, इसी तरह मिस्र, बेबिलोनिया, असेरिया, पर्शिया अरब देश, चीन और यूरोप में भी हजारों वर्षों से देव-देवियों की पूजा होती रही थी। लगभग दो हजार वर्ष से नये संप्रदायों का उद्‌भव होते ही कई देशों में मूर्तिपूजा का निषेध होने लगा।

मूर्तियों के प्रकारों में साम्प्रदायिक दृष्टि से वैदिक (हिन्दुधर्म), जैन और बौद्ध प्रतिमाएं दिखाई देती हैं। अफगानिस्तान के एक जंगल के पहाड़ में २०० फुट ऊंचाई की बौद्ध प्रतिमा उत्कीर्ण की गई है। वहां से भैरव की भी एक मूर्ति प्राप्त हुई है।

मनुष्य के एक मुख और दो भुजाएँ होती हैं, लेकिन पुराणों में देवों के अनेक मुख और भुजाएँ होने की कल्पना पायी जाती है। चार से लेकर बीस-बत्तीस भुजा देव-देवियों के धारण करने का हिन्दूशास्त्र में विधान है। देवों के मुख के स्थान पर सिंहमुख, अश्वमुख, वराहमुख, वृषभमुख, पशुमुख आदि भी देवता धारण करते दिखायी पड़ते हैं।

अर्वाचीन समय में अनेक मुख या भुजाओं की कल्पना अस्वाभाविक मानी जाती है। लेकिन उसमें भी रहस्य है। अनेक मुख और भुजाएँ विविध देवी-देवताओं के बल और स्वभाव के (उस प्रासंगिक समय के) प्रतीक हैं। मिस्र, बेबिलोनिया और असीरिया में भी इस तरह प्रासंगिक प्रकार की आकृतियों के भव्य स्वरूप होते थे, उनके अवशेष अब भी मिलते हैं। शायद यूरोप में ऐसे स्वरूपों का अभाव रहा होगा। मीस्र में स्फींक्स करके मूर्ति होती है उसका मुख मनुष्य का और शरीर होता है सिंह का। इरान में भी वृषभ का शरीर और मुख मनुष्य का होता है।

देवी-देवताओं की शक्ति या स्वभाव का दर्शक रूप यह प्रतीक सामान्य आदमी को भी ज्ञात हो सके, इसीलिए देवता को विशेष भुजा या मुख देकर विशेष रूप में प्रकट किया जाता था।

प्रमुख पूजनीय मूर्ति का मुखभाव यौवनयुक्त, सुंदर हास्य प्रकट करनेवाला होना चाहिए।

लेकिन काली मां, महिषासुर मर्दिनी, हिरण्यकश्यप, आदि की मूर्तियों का भाव उनके मुख्य स्वभावानुसार रौद्र होना चाहिए।

'समरांगण सूत्रधार' में जो दस भाव कहे गये हैं, उनका विशेषतः नाटक या चित्र में उपयोग होता है। अच्छा शिल्पी शिल्प में भी भाव व्यक्त कर सकता है।

विद्या और कला की शुक्राचार्य ने बहुत स्पष्ट व्याख्या की है। विद्या अनन्त और कलाएँ अनगिनंत हैं। फिर भी सामान्यतः ३२ प्रकार की विद्या और ६४ प्रकार की कलाएँ कही गयी हैं।

जो कार्य वाणी से हो सके वह विद्या, और कुछ आदमी मिलकर जो कार्य कर सकें वह कला, ऐसी भी एक व्याख्या की गयी है।

चित्र, शिल्प, नृत्य आदि मूक भाव से किये जाते हैं। वह कला के स्वरूप माने जाते हैं।

मूर्ति की शैलियाँ

वैसे तो मूर्ति विधान के स्वरूप सभी जगह एक से होते हैं, लेकिन देश-काल के भेदानुसार उसके स्वरूप निरूपण में भिन्नता भी दिखाई देती है। प्रादेशिक परंपराओं के अनुसार स्वाभाविक रूप से शिल्प विधान में शैली-भेद देखने को मिलते हैं।

मौर्यकाल के बाद शुंगकाल का उदय हुआ। शुंगकाल में सांची के स्तूप के कटहरे, दरवाजे, तोरण आदि बने। उस काल में अन्य प्रदेशों में पकाई हुई मिट्टी (मृन्मय) की सुंदर मूर्तियां भी होती थीं।

शुंगकाल के बाद कुशान और सप्तवाहनकाल में प्रतिमा विधान की दो प्रकार की शैलियाँ प्रचार में आयीं। सरहद प्रान्त यानी उत्तर पंजाब के आसपास के प्रदेशों में प्रवर्तित गांधार शैली और दूसरी मथुरा शैली।

१. गांधार शैली

बौद्ध संप्रदाय के मूर्ति विधान में यह शैली दिखाई देती है। ऐसी मूर्तियां ईसा पूर्व ३०० से ई.स. ५० तक पत्थर या चूने में से बनायी जातीं थीं। उसमें तादृश्यता और सप्रमाणता विशेष दिखाई देती है। मूर्ति के मस्तक के बाल घुंघराले होते हैं। गांधार शैली पर यूनानी प्रभाव है और उस पर भारतीय शैली का प्रभाव नहीं होने की बात कई पाश्चात्य विद्वान करते हैं। पाश्चात्यों में डा० हावेल और हमारे पुरातत्त्वज्ञों में डा० अग्रवाल और डा० कुमारस्वामी जैसे समर्थ पुरातत्त्वज्ञों का मंतव्य है कि गांधार शैली भारतीय ही है। उस प्रदेश के और उस काल के शिल्पियों की इसी प्रकार की शैली थी, उसे बाहर से अपनाई हुई शैली क्यों कर कहा जा सकता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२. मथुरा शैली

कुशान काल मथुरा शैली की मूर्ति विधान का कला केन्द्र था। शुंग काल की कला और कुशानों के राज्याश्रय से इस मथुरा शैली का उद्‌भव हुआ था, ऐसा कई विद्वान मानते हैं।

कुशान काल के पश्चात नागभार शैली का काल आया। उस समय की मूर्तियों पर अशोक काल का प्रभाव है। नागभार शैली के बाद वाकाटको का राज्यकाल आया। गुप्तकालीन समय भारतीय कला में सर्वोत्तम माना जाता है। गुप्तकालीन शिल्पियों की अद्‌भुत शिल्पकृतियों में सर्वांग सुंदर रमणीयता, भावमाधुर्य, और सुरूपता अब भी उस काल के अवशेषों में देखने को मिलती हैं। गुप्तकाल की शैली सभी संप्रदायों में एक सी दिखाई देती है।

गुप्त काल के राजा कलारसिक और कला-कोविद होने से उनके राज्यकाल में ललित कला का बहुत अधिक विकास हुआ। गुप्तकाल को सुवर्णयुग भी इसी कारण कहा जाता है।

गुप्तकाल के बाद ई.स. ६०० से ९०० तक के युग को पूर्व-मध्यकाल कहा जाता है। उस काल में कन्नौज में सुप्रसिद्ध राजा हर्षवर्धन राज्य करते थे। चीनी यात्री हुचु-एन-स्याँग भी उसी समय भारत की यात्रा पर आया था। गुप्तकाल की कला का प्रभाव गुप्त राजाओं के अस्त के बाद २००-३०० वर्ष तक उतना ही प्रबल बना रहा। भुवनेश्वर, कोणार्कक, खजुराहो, मालवा के परमार प्रासाद तथा कलर्णाक राजाओं ने मूर्तिकला कों जबरदस्त प्रोत्साहन दिया था। गुजरात, राजस्थान के चौहान, राठौड़, सोलंकी, पांडय आदि राजाओं ने अपने राज्यकाल में शिल्पकला को बहुत प्रोत्साहन दिया था। तामिलनाडु, चौल और होयसल राजवंशों ने भी बड़े प्रासादों के अति भव्य निर्माण करवाये थे।

उत्तर-मध्यकाल के बाद ईसा की चौथी सदी के आरंभ से अर्वाचीन काल तक मूर्तिकला राज्य और श्रीमंतों के प्रोत्साहन पर ही टिकी रही और विधर्मियों के आक्रमण के कारण शिल्पकला का विकास स्थगित हो गया। विधर्मी इसके लिए बहुत जिम्मेदार हैं। प्राचीन काल के स्थापत्यों का विनाश उत्तर भारत में ही विशेष रूप से हुआ।

भारत के प्रत्येक प्रदेश में विशाल महाप्रासादों का जो स्थापत्य निर्माण हुआ, और अद्‌भुत मूर्तियों का जो सर्जन हुआ, वह विधर्मियों की धर्मांधता से १२वीं शताब्दी के बाद नष्ट हो गया और भव्य स्थापत्य कला का विकास मंद हो गया। खास करके विधर्मी जहां-जहां रहे, वहां हिन्दू स्थापत्यों का विनाश हुआ। विशेषत: उत्तर भारत में। उनके पत्थरों या अवशेषों में से उन्होंने मस्जिदें, मकबरे, दरगाहें आदि तैयार करवाईं।

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में हमारी कला का नाश अपेक्षाकृत कम हुआ, लेकिन उसका विकास तो रुक ही गया।

देवमूर्तियाँ योग की भिन्न-भिन्न मुद्राओं में होती हैं। उनके वर्ण, वाहन, आयुध, आभूषण, आसन, आदि भिन्न-भिन्न शिल्प ग्रंथो में वर्णित है। इस तरह प्रतिमा के लांछन (चिन्ह्–प्रतीक) से या उसके परिकर से या आभरण से या उनके लक्षण स्वरूप से वह कौन से देव की प्रतिमा है, यह पहचाना जाता है। इसके अलावा हस्तमुद्रा, पादमुद्रा, शरीर मुद्रा और नृत्य भाव भी मूर्तिशास्त्र के ही अंग हैं। यहाँ हम क्रम से वह सभी अंगो की चर्चा करेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्क : द्वितीय

प्रतिमा मान-प्रमाण : तालमान (Iconometry or Measurement of Idol : Talman)

भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की लंबाई-चौड़ाई, ऊंचाई आदि के तालमान और प्रमाण विविध प्रकार के हैं। शिल्प-ग्रंथ के अलावा पुराण और नीतिशास्त्र के ग्रंथों में भी इस विषय की सविस्तर चर्चा की गयी है। महर्षि शुक्राचार्य और 'विवेक विलासकार' आचार्य जिनदत्त सूरि का शास्त्रीय मत इस कठिन विषय को बहुत सरलता से स्पष्ट करता है।

यूका, यव, आदि पर से आंगुल का, और उस पर से गज-हस्त का प्रमाण निश्चित हुआ है। इस नाप का उपयोग स्थापत्य निर्माण में भी होता है। मूर्ति निर्माण के कार्य में यवांगुल (या मात्रांगुल) का नाप गिना जाता है। उसके अलावा शिल्पीगण देहलब्धांगुल के अनुसार नाप लेते हैं।

शिल्पीगण मुखमान से संपूर्ण अवयव की कल्पना करते हैं। मूर्ति-विधान में मूर्ति की रचना के लिए 'तालमान' का नाप दिया है। तालमान: 'तालस्य द्वादशांगुल' अर्थात बारह आंगुल या बारह भाग को ताल समझना चाहिये। प्रतिमा के ललाट से दाढ़ी तक के चेहरे को एक तालमान नाप कहते हैं। इससे हम तालमान के प्रमाण की कल्पना कर सकते हैं।

'मत्स्यपुराण' में इस प्रकार स्पष्ट वर्णन है कि :

मुखामानेन कर्तव्या सर्वावयव कल्पयेत् (अ. २५७।१)

'विवेक विलास' में भी स्पष्ट कहा है कि :

"नवत्ताल भवेद्वयं तांलस्य द्वादशांगुलम्
आंगुलानीन कंबाया किन्तु रूपस्य तस्यहि !!" १३५ सर्ग–१.

प्रतिमा की ऊंचाई नवताल की रखनी चाहिए। बारह अंगुल का एक ताल होता है। लेकिन यहां, कंबासूत्र के अनुसार, गज के अंगुल न लेते हुए, प्रतिमा के ही लेने चाहिये। अर्थात् अंगुल का अर्थ इंच नहीं, लेकिन विभाग समझना चाहिए।

महर्षि शुक्राचार्यजी कहते हैं कि :

"स्वस्वमुष्टेश्चतुर्थांशो ह्यंगुलं परिकीर्तितम्
तदंगुलैर्द्वादशांगुलाभिर्भवेत्तालस्य दीर्घता ॥६–८२॥

अपनी ही मुट्ठी के चतुर्थांश को एक अंगुल मानना चाहिये। ऐसे बारह अंगुल का एक ताल जानना चाहिये।

पुराण, संहिता, नीतिशास्त्र और दोनों महर्षियों के कथनानुसार ताल का अर्थ (मेजरमेंट) दो फुट के गज के २४ अंगुल नहीं, लेकिन प्रतिमा के ही प्रमाण से ८–९–१० तालमान–उसके विभाग से आनेवाले अनुक्रम से ९६"–१०८"–१२०" को अंगुल के भाग कहना उचित होगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रमशः एक से पाँच तालमान प्रमाण के ग्रास, हंस, गज, अश्व और बालक

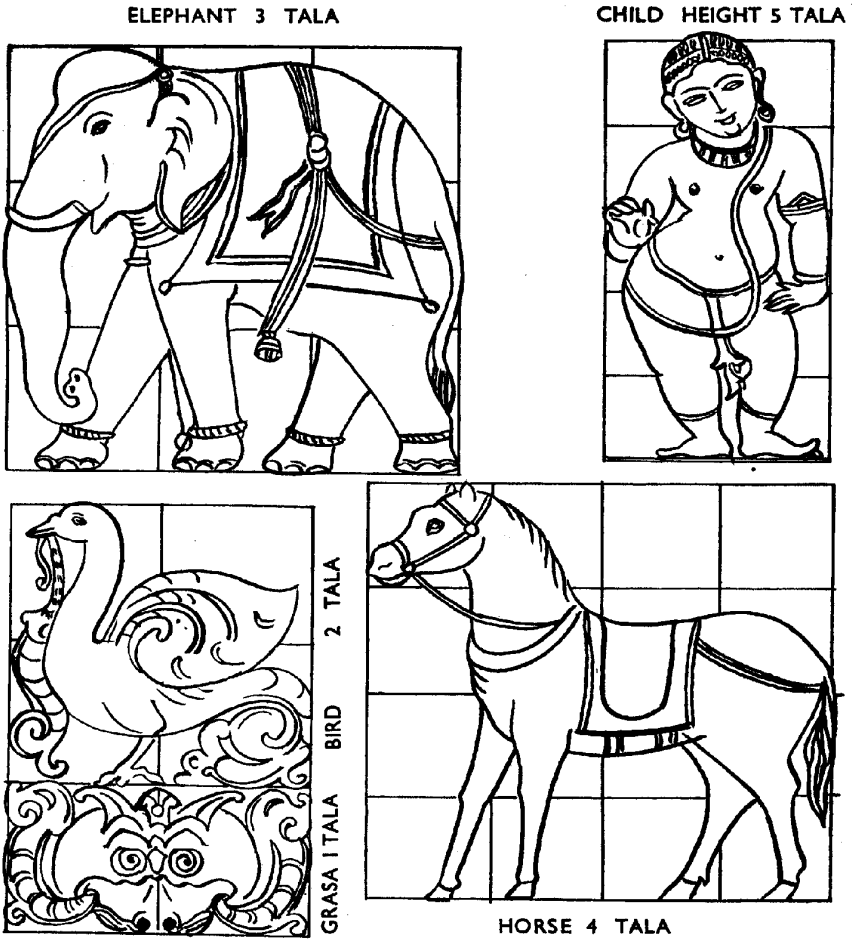

देव-देवी, वाहन, वैताल-दानव, दैत्यादि की प्रतिमाओं की ऊँचाई के शास्त्रोक्त ताल इस प्रकार हैं :–

१ ताल. ग्रास
२ ,, पक्षी
३ ,, हाथी
४ ,, किन्नर, अश्व
५ ,, वृषभ, शूकर, वामन, बालक
६ ,, गणेश, वाराह, कुमार
७ ,, मानव
८ ,, सर्व देवियाँ
९ ,, सर्व देवता
१० ,, राम, बलराम, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, सिद्ध, जिन
११ ,, स्कंध, हनुमंत, भूत, चंडी
१२ ,, वैताल, भैरव, नरसिंह, हयग्रीव
१३ ,, राक्षस
१४ ,, दैत्य, दानव
१५ ,, राहु, भृगु, चामुण्डा
१६ ,, क्रूर देवताओं की मूर्ति, हिरण्यकश्यप, हिरणाक्ष, रावण, कुंभकरण, नमुंचि, निशुंभ, शुंभ, महिषासुर, पिशाच, असुर, क्रूर दैवता, जयमुकुल, इत्यादि.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पाँच तालमान प्रमाण के वृषभ और शूकर

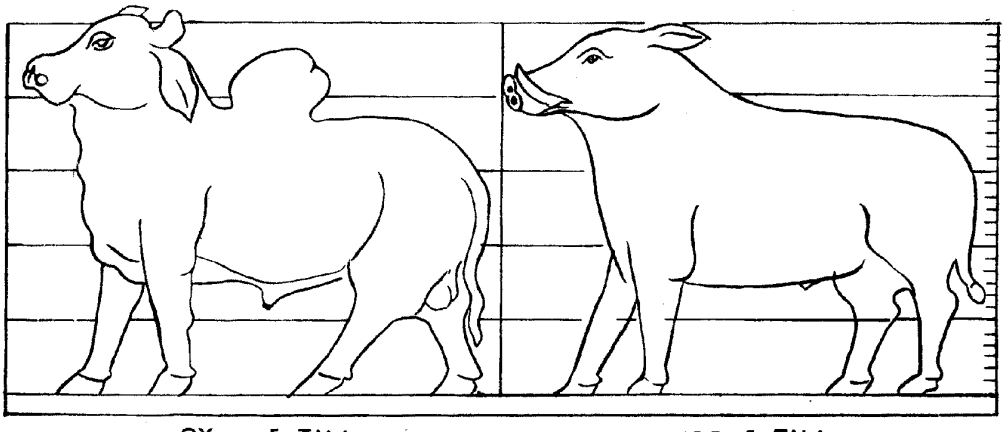

OX 5 TALA HOG 5 TALA

अपराजित पृच्छाकार ने स्वच्छन्द भैरव की महाकाय मूर्ति २१ ताल की कही है। इस ताल के विषय में भिन्न-भिन्न ग्रंथों में मत-मतांतर हैं। देव-देवी इत्यादि के अंगप्रमाण के मान सामान्य कहे हैं। परंतु इतने बड़े तालमान की मूर्तियाँ आधुनिक काल के भारत में बहुत कम मिलती हैं। प्राचीन काल में ऐसी भव्य विशाल मान की मूर्तियां बनती थीं। उदाहरणार्थ बाहुबली (मैसूर), निद्रास्थ बुद्ध (अजंता) आदि की मूर्तियाँ।

छह तालमान के वराह, वामन और गणेश

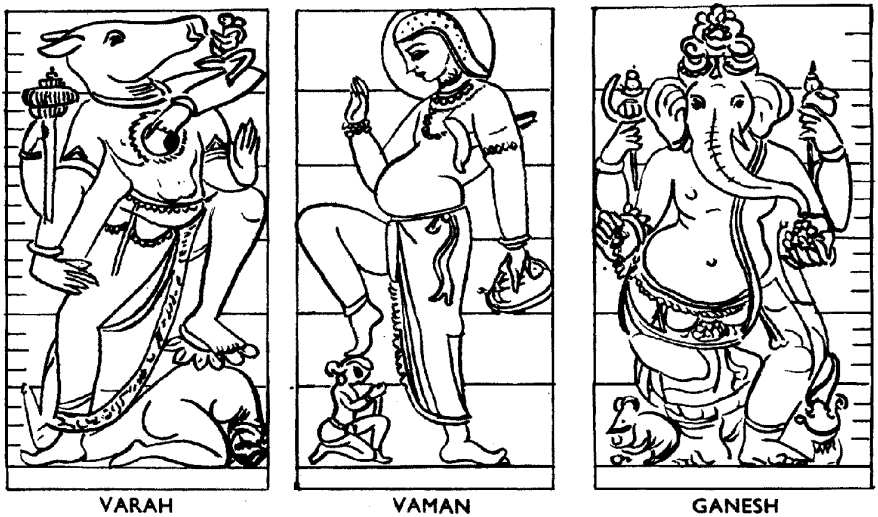

VARAH
वराह

VAMAN
वामन

GANESH
गणेश

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नवताल की प्रतिमा के विभाग इस तरह हैं :

मुख –	– १ ताल	
	मुख	४″ कपाल
		४″ नासिका
		४″ ठुड्डी
कंठ –	– ४ अंगुल	४″ गला
कंठ से हृदय	– १ ताल	१२″ हृदय
हृदय से नाभि	– १ ताल	१२″ नाभि
नाभि से गुह्यभाग	– १ ताल	१२″ गुह्य
गुह्यभाग से जंघा	– २ ताल	२४″ साथम
घुटना (घूंटण)	– ४ अँगुल	४″ घुटना
जांघ–पैर	– २ ताल	२४″ जंघा से पैर
पैर की घुटनी से नीचे	– ४ अंगुल	४″ पैर
	९ तालमान	१०८ अंगुल

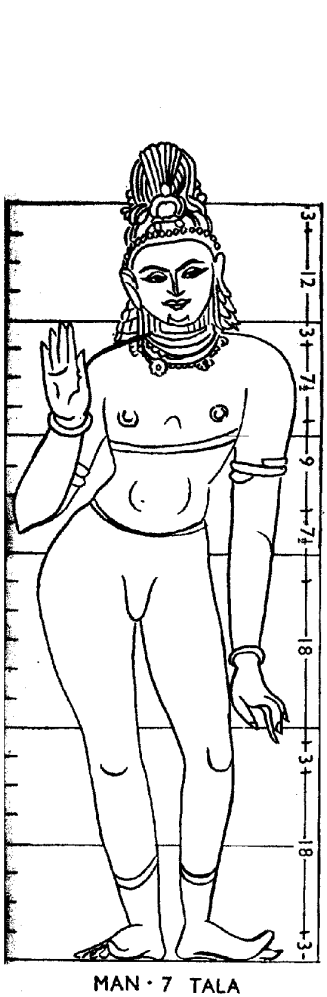

MAN · 7 TALA

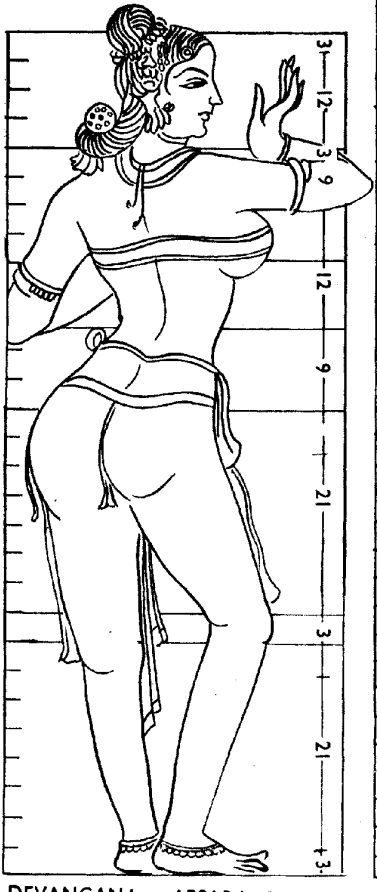

DEVANGANA — APSARA 8 TALA

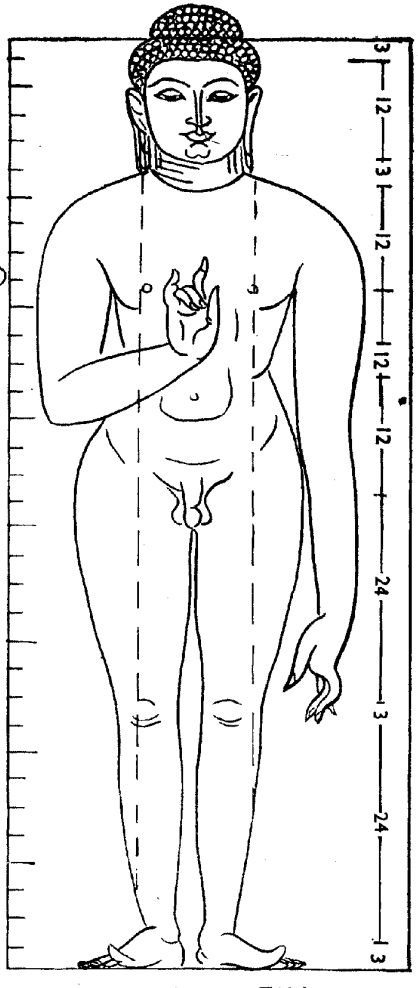

DEVATA 9 TALA

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

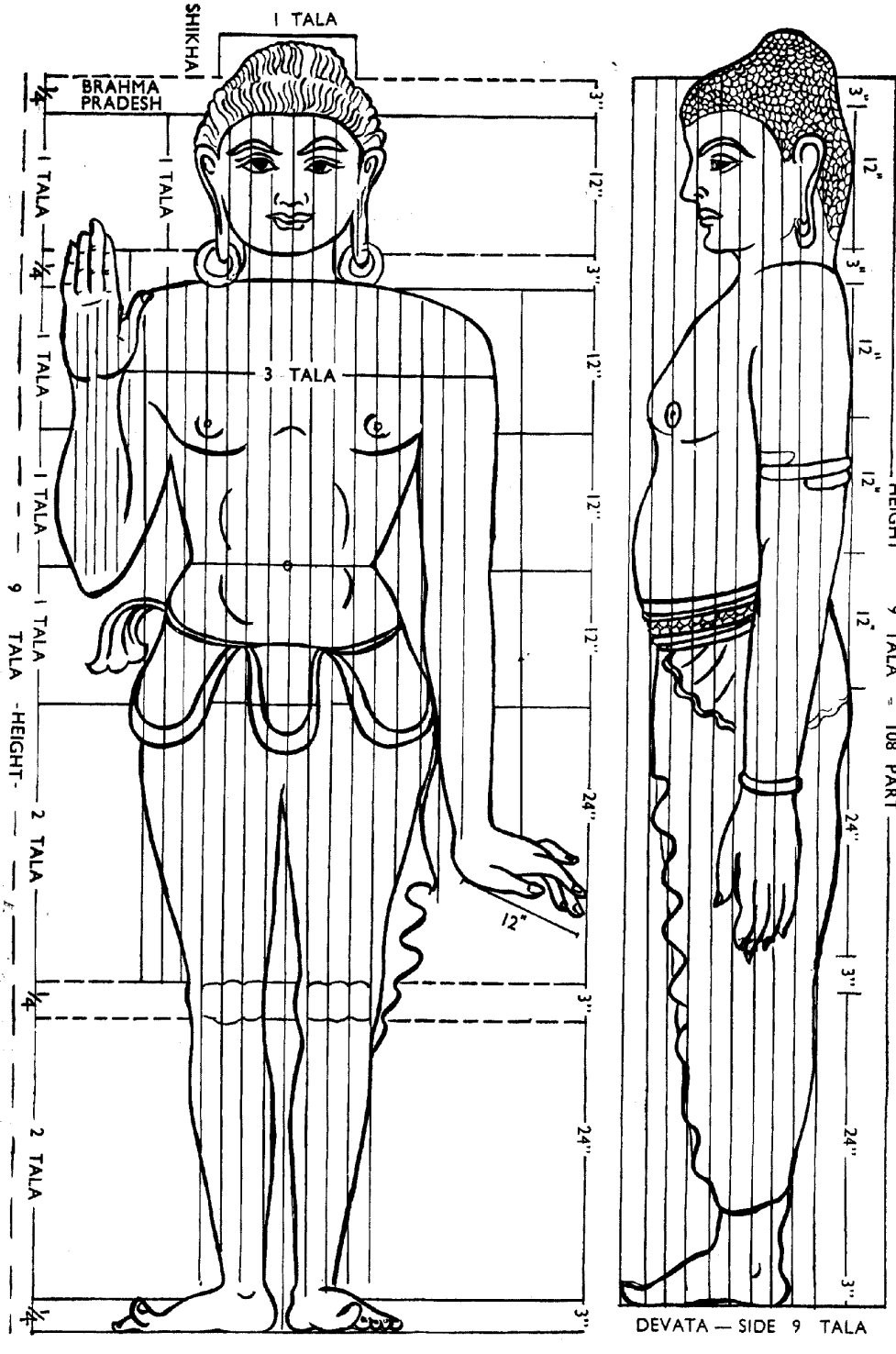

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दस तालमान की प्रतिमाए : श्रीराम, रुद्र और बलराम

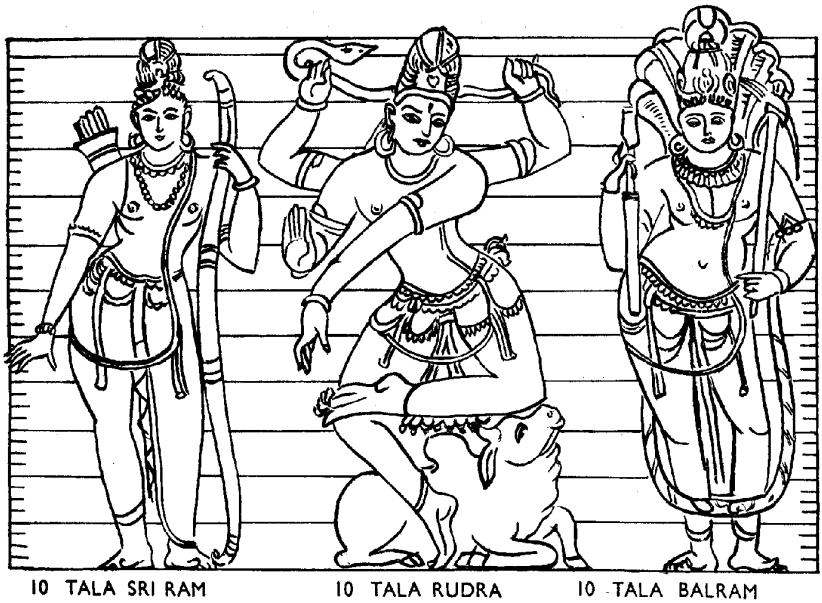

10 TALA SRI RAM 10 TALA RUDRA 10 TALA BALRAM

ग्यारह तालमान के कार्तिकेय, हनुमन्त और भूत

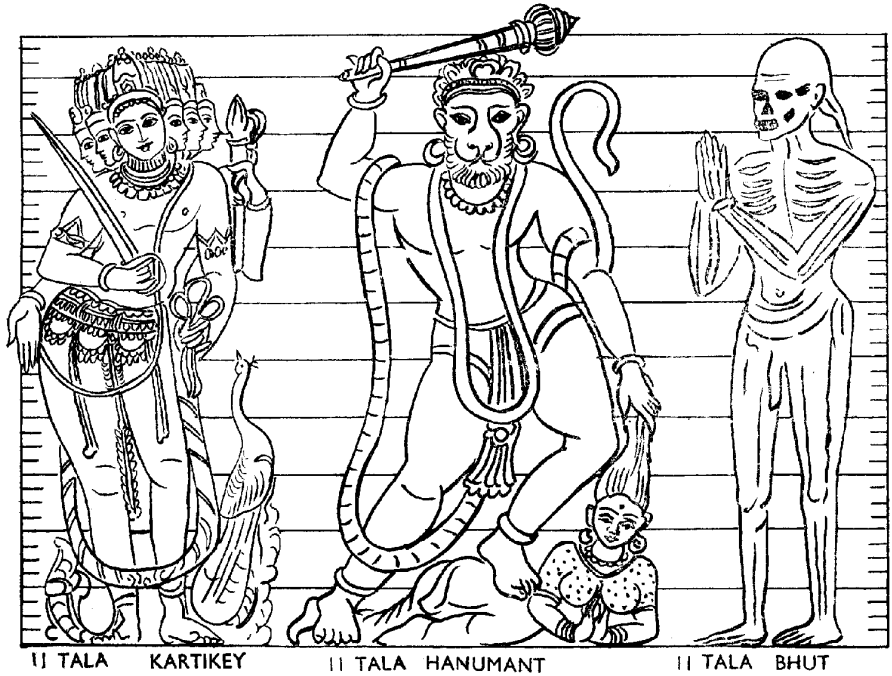

11 TALA KARTIKEY 11 TALA HANUMANT 11 TALA BHUT

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महर्षि शुक्राचार्य ने युगानुसार देह के तालमान कहे हैं। सत्ययुग में दश ताल (१२० अंगुल), त्रेतायुग में नवताल (१०८ अंगुल), द्वापर युग में आठ ताल (९६ अंगुल), और कलियुग के प्रारंभ में, सात ताल (८४ अंगुल) के प्रमाण का देहमान करने का आदेश दिया गया है। वर्तमान कलियुग के मध्य में साधारण मनुष्य की ऊंचाई छः ताल (७२ से ६४ अंगुल) तक की रही है। काल के प्रभाव से मनुष्य-देह कद में छोटी होती चली गयी है।

अब हम नवताल की प्रतिमा के विभाग देखें–

नवतालं प्रमाणेतु मुखं तालमितं स्मृतम्
चतुरंङगुल भवेद्ग्रीवा तालेन हृदयं पुनः ॥१॥
नाभ्यास्तमादधः कार्या तालनैकेन शोभिता
नाभ्याधश्च भवेनमेंद्र भागमेकेन वा पुनः ॥२॥
द्वितालोह्मायतागुरू जानुवी चतुरङगुलम्
जंघे उरुसमे कार्या गुल्फाब्धश्चतुरंङ्गुलम् ॥३॥
नवतालात्मकमिद केशान्त व्यंङगुलः कार्यमानत्
शिखावधितुं केशान्त व्यंङगुलः कार्यमानत्
दिशावया विभजेत्सप्ताष्ट दशतालिकाम् (शुक्रनीति अध्याय ६)

नौ तालमान की मूर्ति के उदय विभाग इस तरह हैं। मुख एकताल, कंठ चार अंगुल, कंठ से हृदय-छाती एक ताल, हृदय से नाभि एक ताल, नाभि से गुह्य भाग एक ताल, गुह्य से साथम दो ताल, पैर की घुटनी चार अंगुल, पैर के नले दो ताल, पैर की घुटनी का निचला भाग चार अंगुल होते हैं। नवताल का नाप, कपाल से पैर तक का, कुशल शिल्पियों ने कहा है। कपाल से मस्तक के केश तक के तीन अंगुल विशेष लेने चाहिए। नवताल की प्रतिमा का जो प्रमाण दिया गया है, उसी तरह ७–८–१० तालमान के प्रमाण अनुसार सब अवयव के त्रैराशिक से सभी अवयवों की कल्पना करनी चाहिए। (शुक्रनीति–अ. ६ १०४)

बारह से पंद्रह तालमान के वैताल, राक्षस, दैत्य और भृगऋषि

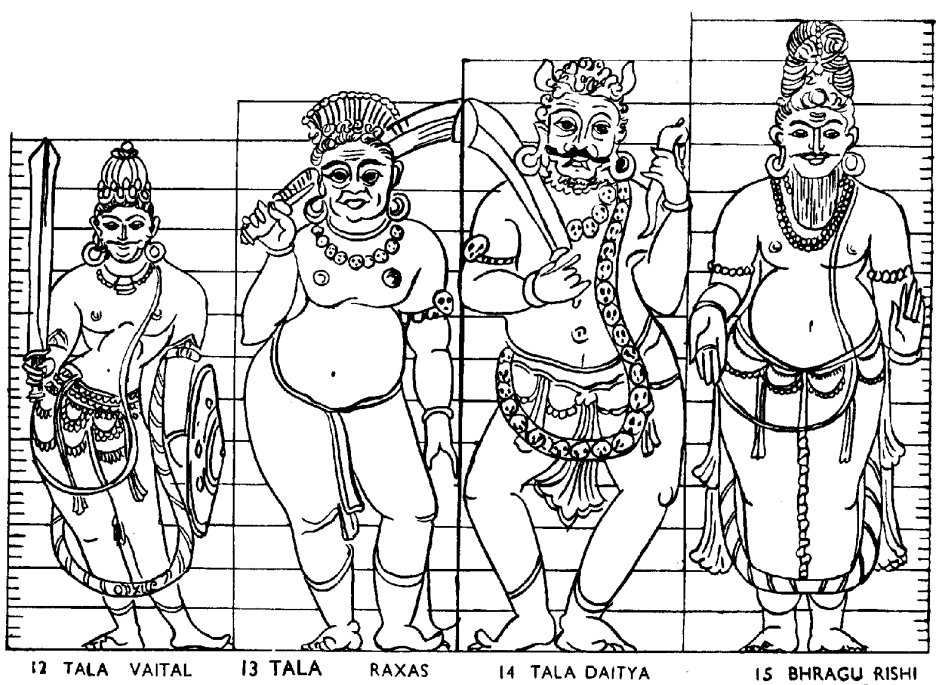

12 TALA VAITAL वेताल | 13 TALA RAXAS राक्षस | 14 TALA DAITYA दैत्य | 15 BHRAGU RISHI भृगु ऋषी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्क : तृतीय

प्रतिमा का वर्ण और उसका वास्तुद्रव्य (Idol : Colour and Material Used)

हरेक मूर्ति के पृथक-पृथक वर्ण-रंग शिल्पशास्त्रों चित्रशास्त्रों और अन्य ग्रंथों में वर्णित है। यूं तो रंग का संबंध चित्र के साथ है, सो विशेषत: रंग चित्रोपयोगी है। मूर्तिशास्त्र में रंग का उपयोग अतिअल्प मात्रा में होता है। कई देवताओं का वर्ण सुवर्ण रंग का है। उनकी मूर्ति पीले वर्ण के पत्थर में से बनाई जाती है। कई रक्तवर्ण, तो कई श्यामवर्ण, तो कई नीलवर्ण की मूर्तियां भी शिल्पशास्त्रों में वर्णित हैं। वर्ण के अनुसार ही मूर्तियां बनाने का आग्रह शास्त्रों में किया गया है। 'विष्णु-धर्मोत्तर' और 'अभिलाषितार्थ चिंतामणि' आदि ग्रंथों में प्रत्येक देव के स्वरूप अलग-अलग वर्णों के साथ वर्णित हैं। कई देवताओं के वर्ण उनके विशिष्ट गुणों के अनुसार निर्धारित किये गये हैं।

देव-प्रासाद में मूल नायक देवता की एक प्रमुख प्रतिमा उसके वर्णित वर्ण के अनुसार बनाने का आदेश मान्य रखना यजमान की श्रद्धा पर अवलंबित है। उदा० जैन संप्रदाय में पार्श्वनाथ की मूर्ति का वर्ण श्याम है, शिवमंदिरों में शिवलिंग का वर्ण विशेष रूप से श्याम ही होता है। सोलह विद्यादेवियों का वर्ण भी भिन्न-भिन्न है। श्याम, पीत, श्वेत आदि में जिस रंग का पाषाण प्राप्त हो सके, उस पाषाण में से प्रतिमा बनाईजाती है। कृष्ण, दुर्गा, कालिका, जिन पार्श्वनाथ आदि को श्यामवर्ण के कहा गया है। उनकी अनेक मूर्तियां श्याम वर्ण के पत्थर में बनी हुई हैं। मेघश्याम विष्णु, नीलांबर बलराम, रक्तवर्ण सूर्य, गौरवर्ण रोहिणी और यम तथा भैरव आदि को विकृत श्यामवर्ण काहा गया है। प्रमुख प्रतिमा को वर्णानुसार बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। अन्य प्रतिमाओं के लिए भी हो सके तो उन्हीं के वर्णानुसर पत्थर लेना चाहिए। फिर भी जहां यह संभव न हो, वहां वहीं के स्थानीय पाषाण में से प्रतिमाएं बनानी चाहिए। वे पत्थर के उपयोग का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

भारत के अलग-अलग प्रदेशों में से प्राप्त पाषाण जिस वर्ण के होते हैं, उन्हीं के मंदिर और मूर्तियाँ बनती हैं। उत्तर भारत में राजस्थान–मकराणा में श्वेत और गुलाबी रंग का संगमर्मर मिलता है। जैसलमेर, सौराष्ट्र और कच्छ के कई भागों में पीतवर्ण (सुवर्ण-वर्ण) का मारबल (संगमर्मर) प्राप्त होता है। मेवाड़, केसरियाजी में श्वेतवर्ण का मारबल मिलता है। डूंगरपुर और जयपुर के पास श्याम वर्ण का भेशलाना का पत्थर मिलता है। डूंगरपुर में श्यामवर्ण के बजाय कबूतर के रंग जैसा पत्थर मिलता है। उसे शिल्पियों ने 'पारेवा' पत्थर नाम दिया है। दक्षिण में ग्रेनाइट का पाषाण मिलता है। उसमें से श्याम मूर्ति बनती है।

उत्साही यजमान अन्य प्रदेशों में से अपनी जरूरत के अनुसार, उसी वर्ण का पत्थर बड़ी कठिनाइयों से प्राप्त करते हैं, और शास्त्र में वर्णित रंग की मूर्तियां बड़ी श्रद्धा से बनाते हैं, ऐसे, उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में से मिलते हैं।

प्रतिमा के लिए अच्छा, सख्त, सुचिक्कण हो सके ऐसा पाषाण पसंद किया जाता है। पाषाण की परीक्षा तीन प्रकार से होती है। १. पुलिंग, २. स्त्री लिंग, और ३. नपुंसक लिंग। जो पत्थर उत्तम आवाज दे वह पुलिंग, जो मध्यम आवाज करे वह स्त्री लिंग और जिसकी आवाज ही न हो वह नपुंसक लिंग। पुलिंग पाषाण में से देव मूर्तियां बनाई जाती हैं। स्त्री लिंग पत्थर में से देवी की मूर्तियाँ, पीठिका और शिव की जलाधारी बनायी जाती है। और नपुंसक लिंग के पत्थर में से देव मंदिर, राजमहालय आदि बनाया जाता है। शिवमंदिर में इन तीनों पत्थरों का उपयोग होता है। नपुंसक लिंग से मंदिर, पुलिंग से शिवलिंग और स्त्री लिंग से जलाधारी-योनि या देवी मूर्तियाँ बनाई जाती हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूर्ति के वास्तुद्रव्य में पाषाण, मिट्टी, ईंट, काष्ठ और धातु की मूर्तियां बनाने का भी आदेश है। और इस प्रकार की प्राचीन मूर्तियां अब भी मिलती हैं। विशेषतः ऐसी बौद्ध मूर्तियां ज्यादा मिलती हैं। प्राचीनकाल में मिट्टी की मूर्तियां बनाकर उन्हें भट्ठे में डालकर पकाते थे।

पत्थर के प्रकार और गुणदोष की तरह काष्ठ के भी प्रकार और गुण-दोष ध्यान में लेकर मूर्तियां बनानी चाहिये। सामान्यतः गांठ और दरार (क्रेक) न हो, ऐसे काष्ठ में से मूर्तियां बनानी चाहिए।

पाषाण, मृत्तिका (मिट्टी) और काष्ठ के अलावा, धातु को भी वास्तुद्रव्य में गिना जाता है। धातु के प्रकार, उसका मिश्रण आदि संबंधी वर्णन वास्तुशास्त्र विषयक ग्रंथों में वर्णन मिलते हैं।

"शैलानाजात् लोहत्जम् श्रेष्ठम्" पाषाण की मूर्ति से धातु की मूर्ति श्रेष्ठ कही गयी है। अष्ट धातु, पंच धातु, और मिश्र धातु को लोह कहा गया है। चांदी, सोना, ताम्र, जस्ता, शीशा, कलई, और लोह, यह सातों शुद्ध धातु हैं। कलई, जस्ता और ताम्र के मिश्रण से कांसा बनता है: ताम्र और जस्ते के मिश्रण से पीतल बनता है। धातु की मूर्ति बनाने के लिए एक मन पीतल, पांच सेर ताम्र अथवा एक मन पीतल और ढाई सेर ताम्र मिलाकर उसमें ढाई पाव सोना डालकर और उसे पिघलाकर प्रतिमा बनाई जाती है। अर्वाचीनकाल में यजमान की इच्छानुसार धातु का मिश्रण करके कलाकार मूर्तियां बनाते हैं। तांबा, रूपा, सोना, पीतल और सफेद शीशा, इन पांचों धातुओं का मिश्रण करके, उसमें तांबे की मात्रा बढ़ाकर, जो रक्तवर्णी मिश्र धातु बनाई जाती है, उसे पंचधातु कहते हैं। धातु की मूर्तियां बनाने की विधि जैन ग्रंथ "आचार्य दिनकर" में वर्णित है। ईसा पूर्व काल की बनी हुई धातु की ऐसी मूर्तियां नालन्दा, गांधार और तिब्बत में मिली हैं। गुप्तकाल में धातुओं की ऐसी मूर्तियां बनाने की कला का बहुत अच्छा विकास हुआ था। जावा–स्याम में भी धातुओं की सुंदर मूर्तियां मौजुद हैं। द्रविड़ प्रदेश में धातुओं की मूर्तियां विशेष बनाई जाती थीं।

नेपाल में काष्ठ मूर्तियों के ऊपर धातु के पतरे लगाये हुए हैं। यह शैली गुजरात में भी दो सौ वर्षों से प्रचलित है। द्रविड़ में खोखली मूर्तियां बनाना धर्म माना जाता है। प्रासाद में प्रतिष्ठित मूर्ति के अलावा धातु की चलमूर्तियां भी होती हैं। इन चल-मूर्तियों को उत्सवादि प्रसंग में सारे गांव में धूमधाम से फिराया जाता है। चलमूर्ति को भोग मूर्ति भी कहते हैं।

द्रविड प्रदेश में (कुंभ कालम्) धातु मूर्तियां बनानेवाले शिल्पियों का बड़ा परिवार भी है।

मूर्ति के चार प्रकार हैं: १. यानक, २. स्थानक, ३. आसन और ४. शयन.

(१) **यानक**: इस प्रकार में वाहन पर बैठी हुई नौदुर्गा की मूर्तियां, कल्कि अवतार की अश्वारूढ़ मूर्ति, या शीतला माता की गर्दभ पर बैठी मूर्ति होती है।

(२) **स्थानक**: इस प्रकार में खड़ी मूर्तियों के स्वरूप दिखाई देते हैं। उदा० ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य आदि।

(३) **आसन**: इस प्रकार में भिन्न-भिन्न आसन लगाकर बैठी हुई मूर्तियां दिखाई देती हैं। उदा० गणेश, या पद्मासन लगाकर बैठी हुई जैन या बौद्ध मूर्तियां।

(४) **शयन**: इस प्रकार की मूर्तियां सोती हुई होती हैं। उदा० शेषशायी विष्णु, बुद्ध निर्वाणकाल आदि।

अल्प पूजन विधि के लिये मिट्टी (मृत्तिका) की मूर्ति बनाकर उसका पूजन करके उसे जल में विसर्जित किया जाता है। महाराष्ट्र में गणेश की ऐसी मूर्तियां पूजा के बाद जल में विसर्जित की जाती हैं। श्रावण मास में मिट्टी का पार्थिव लिंग बनाकर उसकी सभी प्रकार की पूजा विधि पूर्ण करने के बाद भाद्रपद शुक्ल में उसे जल में विसर्जित करते हैं।

मंदिरों में स्थिर और जंगम प्रकार की मूर्तियां भी रखी जाती हैं। पूजनीय मुख्य मूर्ति अपने निश्चित स्थान पर स्थापित की गई होती है। उसे स्थिर मूर्ति कहते हैं और उसी देवता की धातु की छोटी मूर्ति मंदिर में रखी जाये, उसे चलित मूर्ति कहा जाता है। देवों के उत्सव प्रसंगों में चल मूर्तियों को पालकी में रखकर सारे शहर में घुमाया जाता है।

ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी की, जहाँ पत्थर प्राप्त हो सकता था, ऐसे प्रदेश में भी मिट्टी की सुंदर प्रतिमाएं मिली हैं। शायद उस काल में उन प्रदेशों में खदान में से पत्थर निकालने की कला का अधिक विकास नहीं हुआ होगा।

मूर्ति अथवा प्रतिमा के निर्माण के लिए भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में ७ या ९ प्रकार के वास्तु-द्रव्य वर्णित हैं।

छः प्रकार के धातु द्रव्यों की मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। वह छः धातु इस प्रकार हैं: सोना, चांदी, तांबा, कांसा, शीशा और अष्ट लोह।

रत्न, स्फटिक, प्रवाल, पाषाण आदि चार के रत्न द्रव्यों की मूर्तियां भी बनाई जाती हैं।

रेत, मृत्तिका, कंकरियां, लेप और काष्ठ द्रव्य की मूर्तियां भी दिखाई देती हैं।

विविध रंगो का प्रयोग करके चित्र-मूर्ति भी बनाई जाती है। इस तरह १६ प्रकार के द्रव्य, मूर्ति-निर्माण के लिए भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में वर्णित हैं।

लोहे की प्रतिमा बनाने का शास्त्रों में निषेध कहा है। इसीलिए सिर्फ लोहे में से स्वतंत्र मूर्ति नहीं बनायी जाती, परंतु उसमें सोना, ताम्र आदि धातु के रस का मिश्रण किया जाता है। उसे अष्ट लोह कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : चतुर्थ

हस्तमुद्रायें (Position of Hands)

हस्तमुद्राओं के लए तांत्रिक ग्रंथों में, ब्राह्मण क्रियमाण ग्रंथों में, नाटचशास्त्र में, योग में और आगम ग्रंथों में विपुल साहित्य भ रा पड़ा है। कई विद्वान मुद्राओंको तीन वर्ग में विभाजित करते हैं। वैदिक, तांत्रिक और लौकिक। वैदिक में कला की ६४ मुद्राये वर्णित हैं। तंत्र में १०८ मुद्रायें कही गयी हैं। महाराजा भोजदेव के 'समरांगण सूत्रधार' में मुद्राओं के विषय में तीन अध्याय प्रस्तुत किये है। उनमें मुद्राओंका विस्तृत वर्णन मिलता है। नृत्य और योग की ६४ हस्तमुद्रायें कही गई हैं। उनमें से प्रत्येक के नाम भी दिये गये है। हस्तमुद्रायें संकेतसूचक हैं। यस्त-मुद्रा के दो प्रकार कहे हैं: अंगुलि-मुद्रा और हस्तमुद्रा। हस्तमुद्रायें ६४, पादमुद्रायें ६ और शरीर-मुद्रायें ९ कही हैं। और उन सबके और भी वर्ग हैं। एक हस्त की मुद्रायें २४, दो हाथ से होनेवाली मुद्रायें १३ और नृत्यमुद्रायें २१ कही हैं और उन सबके नाम भी दिये गये हैं।

अंगुलीमुद्रायें :	१ वरद	हस्तमुद्रायें :	१ कटचवलंबित–कटिमुद्रा
	२ अभय		२ गजहस्त मुद्रा
	३ तर्जनी		३ सिंहकर्ण मुद्रा
	४ ज्ञानमुद्रा		४ करपुट मुद्रा–दंड मुद्रा

अंगुलिमुद्रा के लक्षण :

१. वरदमुद्रा : सीधे हाथ का पंजा नीचे की ओर रखकर, भक्त पर प्रसन्नता से वरदान देती मुद्रा को वरद मुद्रा कहते हैं। उदाहरणार्थ त्रैलोक्य, विजयादेवी ।

२. अभय मुद्रा : सीधे हाथ का पंजा खड़ा रखकर भक्त को अभय वचन देती मुद्रा को अभय मुद्रा कहतेहैं। उदाहरणार्थ त्रिपुरादेवी, पार्वती, ईश्वरी, मनेश्वरी ।

३. तर्जनी मुद्रा : अंगूठे के नजदीक की अंगुली को तर्जनी कहते हैं। तर्जनी मुद्रा में तर्जनी सीधी होती है, और उसके बाद की तीनों उंगलियां मुड़ी हुई होती हैं। सूर्य के प्रतिहारोंकी यह मुद्रा होती है।

४. ज्ञान मुद्रा : उपदेश देती हाथ की अंगुलियों की मुद्रा को ज्ञानमुद्रा कहते हैं।

अंगुलिमुद्रायें :

शिल्प और नृत्य कला में अंगुलि-मुद्रा का स्थान विशिष्ट है। अंगुलिमुद्रायें क्रिया की संकेत-सूचक (Symbols) बनकर मन के भाव प्रकट करती हैं। नृत्य में अंगभंगी, हस्तमुद्रा, अंगुलिमुद्रा, आंखें और पादचालन भावों के परिवर्तन प्रकट करते हैं। जबकि मूर्तियों में तो कोई एक ही विशिष्ट भाव प्रकट होता है। दृष्टि चलित न होने के कारण मूर्ति में एक ही समय पर एक ही भाव प्रकट हो सकता है। मूर्ति में एक ही स्थिर मुद्रा होती है। जब कि नृत्य में एक विशेष लाभ उसकी हलन-चलन की वजह से मिलता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

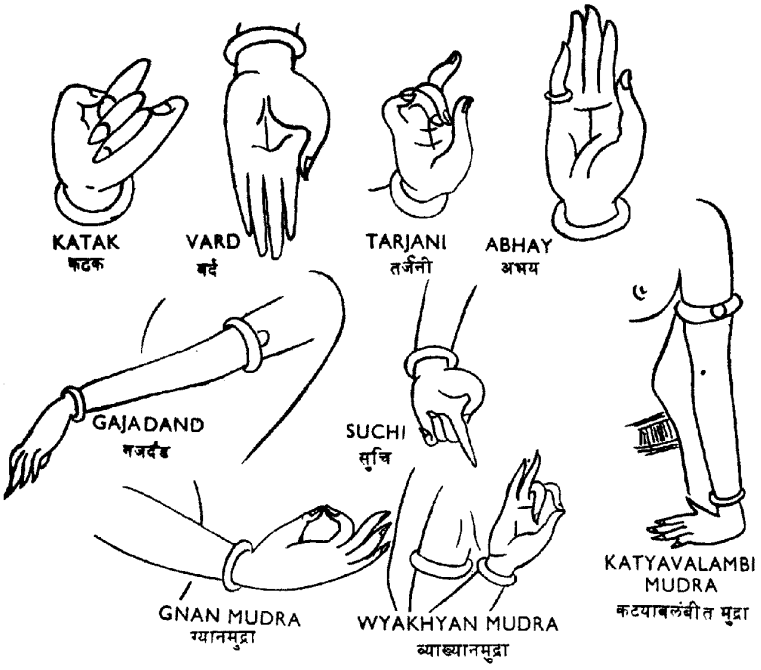

हस्तमुद्राओं के लक्षण :

१. कट्यावलंबी मुद्रा :

कमर पर हाथ रखा गया हो, ऐसी मुद्रा। उदाहरणार्थ विठोबा की मूर्ति।

२. गजहस्त या दंडहस्त मुद्रा :

हाथी की सूंड या दंड की तरह हाथ रखने की मुद्रा।

३. सिंहकर्ण मुद्रा :

हाथ नीचे रखकर सिंह के दो कान जैसी मुद्रा।

४. करसंपुट मुद्रा :

दो हाथ के पंजे संपुट की तरह जोड़ने की मुद्रा को करसंपुट मुद्रा कहते हैं। दो अधिक मुद्रायें इस प्रकार हैं :

(अ) विस्मय मुद्रा :

आश्चर्य प्रकट करती मुद्रा को विस्मय मुद्रा कहते हैं।

(ब) भूमिस्पर्श मुद्रा :

पद्मासनयुक्त मूर्ति के दाहिने हाथ की उंगली से भूमि स्पर्श करने का भाव दिखाती मुद्रा को भूमिस्पर्श मुद्रा कहते हैं। ध्यानी, योगी इस मुद्रा में बैठते हैं। विशेषतः बौद्धमूर्तियां इस मुद्रा में पायी जाती हैं। बुद्ध की आसनस्थ मूर्ति की यही मुद्रा है।

अभय, वरद, तर्जनी, ज्ञानमुद्रा और भूमिस्पर्श मुद्रायें उत्तर भारत की प्रतिमाओं में विशेष मात्रा में दृष्टिगोचर होती हैं। अन्य मुद्रायें द्रविड शिल्प में विशेष पायी जाती हैं। पताका और त्रिपताका शिवनटराज के रूप में तांडव और संहार तांडव की मुद्रायें वर्णित हैं। बौद्ध शास्त्र में ज्ञान-व्याख्यान को संदर्शन मुद्रा कहा गया है। बौद्धों और जैनों की आसनस्थ मूर्ति की गोद में एक हथेली पर दूसरी हथेली रखी हुई होती है; इसे योगमुद्रा कहते हैं। विष्णु और शिव की मुद्रा को भी योग मुद्रा कहा गया है। 'अपराजित' कार ने स्वच्छंद भैरव की महाकाय इक्कीस ताल की मूर्ति के दो हाथ की योनि मुद्रा कही है।

हस्त, पाद और मुखादि की स्थिति, गति और आकृति से नृत्य के भाव अभिव्यक्त होते हैं। शिव की योगमूर्ति के अलावा ब्राह्मण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

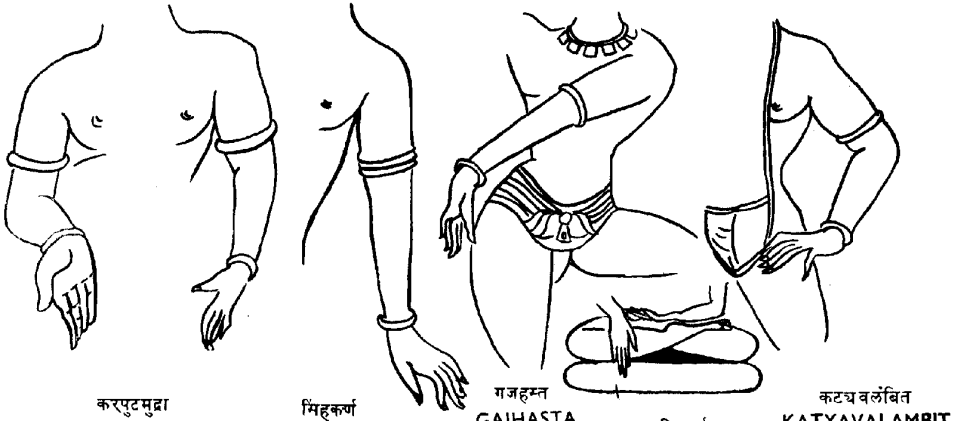

प्रतिमा के लक्षण में मुद्रायें बहुत अल्प हैं। बौद्धों में मुद्राओं का प्रयोग विशेष मात्रा में पाया जाता है। जैसा कि हम देख चुके हैं, भारत के मूर्ति-विधान में वरद, अभय, तर्जनी और ज्ञानमुद्राओं का ही विशेष प्रयोग हुआ है।

हाथ और उंगली की स्थिति दर्शाती हुई शैली में उत्तर भारत की मूर्तियों से दक्षिण भारत की मूर्तियां अलग दिखती हैं। हाथ की उंगलियों की मुद्राओं में, भारतीय शिल्पियों ने जैसे प्राण फूंक दिये हैं, और उन्होंने पाषाण जैसे मूक माध्यम में मन की आंतरिक वृत्तियों का प्रकटीकरण किया है।

"विष्णु धर्मोत्तर" के अनुसार नृत्यकला का प्राण भावाभिव्यक्ति है, और भावाभिव्यक्ति मुद्राओं द्वारा प्रदर्शित होती है। वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, ज्ञानमुद्रा, तर्जनीमुद्रा, सिंहकर्णमुद्रा, पताका-त्रिपताका आदि एक हाथ की मुद्रायें हैं और दो हाथ से होनेवाली मुद्रायें भी वर्णित हैं। दरअसल ये सभी मुद्रायें मूर्तिशास्त्र के लिये उपयोगी नहीं हैं। उत्तर भारत के मूर्तिशास्त्रों में सिर्फ तीन मुद्राओं का प्रयोग होता है। वरद, अभय और तर्जनी। जबकि द्रविड़ शिल्प में इन तीन के सिवा कटक, कट्यवलंबित, सूचि, व्याख्यान, ज्ञान, और गजदंड मुद्रा भी आती है।

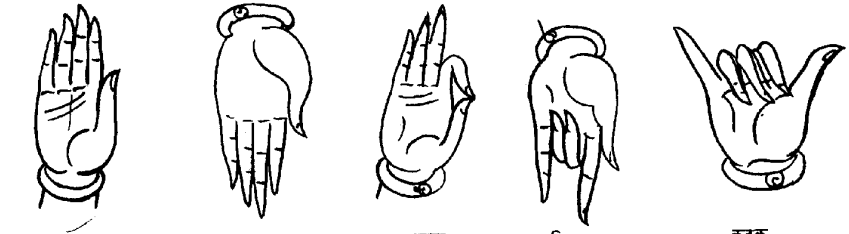

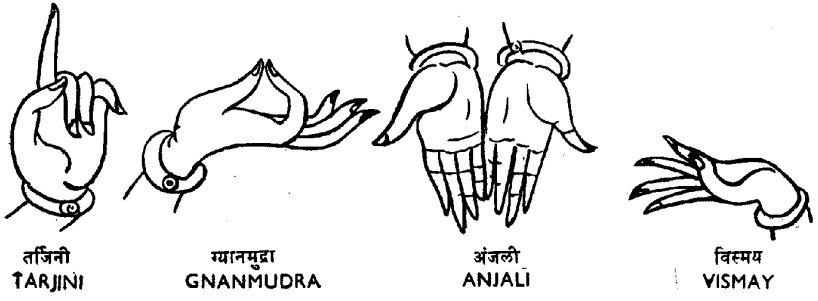

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : पंचम्

पादमुद्रा और आसन (Position of Feet)

योग के आसन अनेक हैं। आगमों में शिव के ८४ आसन वर्णित हैं। उनमें बत्तीस मुख्य माने जाते हैं। परंतु, उनमें से प्रतिमा विधान के लिये उपयोगी हों, ऐसे बहुत थोड़े हैं।

१. योगासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन
२. बुद्ध पद्मासन
३. अर्ध पर्यंकासन–सुखासन
४. भद्रासन–ललितासन
५. उत्कटासन
६. गोपालासन
७. वीरासन
८. प्रेतासन
९. कूर्मासन
१०. सिंहासन
११. पर्यंकासन,

ये सभी आसन थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ मूर्तिविधान में पाये जाते हैं। इनमें से कई आसनों की मुद्राएं द्रविड प्रदेश के शिल्पों में विशेष पायी जाती हैं। तो इनमें से कई आसन नृत्यभाव के भी हैं। कूर्मासन और सिंहासन मूर्ति विधान के अनुरूप मुद्राएं नहीं हैं। वे योग की मुद्राएं हैं।

'अहिर्बुदन्य संहिता' में दस आसन वर्णित हैं। 'सुप्रभेदागम' में आसनों के पांच भेद कहे गये हैं–जो उपरोक्त आसनों में समाविष्ट हैं। महाराजा भोजदेव ने 'समरांगण सूत्रधार' में पादमुद्राओं के ६ प्रकार कहे हैं।

शरीर मुद्रा, पाद मुद्रा और आसन, ये तीनों विषय भिन्न हैं। उनके स्पष्टीकरण के अभाव में कई प्रकार के मिश्रण होते रहते हैं। इसलिये यहां उनका थक् स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया गया है। 'आसन' का सामान्य अर्थ बैठना-बैठक होता है। उसके ऊपर से आसनों को शरीर के अवयवों की क्रिया कही गई है।

आसनों के लक्षण

१ योगासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन:

सामान्य पलथी लगाकर दोनों हाथ गोद में रखकर बैठना, इसे योगासन या पद्मासन कहते हैं। ध्यानस्थ शिव, विष्णु, योग दक्षिणा-मूर्ति और ऋषि-मुनियों के आसनों की यह आसन-मुद्रा होती है। 'रुद्रयामलतंत्र' और 'वशिष्ट-योगसार' में इसे स्वस्तिकासन कहते हैं।

२ बद्ध पद्मासन:

दोनों पैरों को बाँधकर पलथी मारने से जब दोनों पैरों के पंजे खुले दिखाई दें, ऐसे आसन को बद्ध पद्मासन कहते हैं।

गोद में दोनों हाथ एक के ऊपर दूसरा रखकर लगाया जाने वाला आसन, बद्ध पद्मासन से विशेष भिन्न नहीं है। आसनस्थ जैन, बौद्ध प्रतिमाएं इस प्रकार की होती हैं।

३ अर्ध पर्यंकासन, सुखासन:

बैठक पर एक पैर मोड़कर, और दूसरे को नीचे लटकता रखकर बैठने को अर्धपर्यंकासन कहते हैं। उमा-महेश, लक्ष्मी-नारायण और ब्रह्मा-सावित्री की युग्म मूर्तियां और कई देवियों की मूर्तियों की आसनमुद्रा इस इस प्रकार की होती है। इसे सुखासन भी कहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४ भद्रासन, ललितासन:

बैठक पर बैठकर दोनों पैर खुले लटकते रखकर बैठने को भद्रासन या ललितासन कहते हैं। यह भी सुखासन का ही एक प्रकार है। इस प्रकार के आसनधारी अनेक देव-देवियों की मूर्तियां मिलती हैं।

५ उत्कटासन:

घुटनों को वस्त्र से बांध कर, अर्ध बैठी स्थिति को उत्कटासन कहते हैं। दशावतार में नृसिंह के वर्णन में यह आसन बताया गया है। उत्तर भारत में ऐसी कोई मूर्ति नहीं मिलती। दक्षिण में शंकर के तीसरे पुत्र आप्पा की मूर्ति का यही आसन है।

६ गोपालासन:

कृष्ण की बंसी बजाती खड़ी मूर्ति की मुद्रा को गोपालासन कहते हैं। यह मुद्रा भारत में सभी जगह दिखाई देती है।

७ वीरासन:

एक पैर आधा खड़ा रखकर, दूसरा घुटने से मोड़कर अर्ध बैठी स्थिति में बैठने को वीरासन कहते हैं। विष्णु के वाहन गरुड़ का और कई राजाओं का भी यही आसन होता है।

८ प्रेतासन:

ये आसन दो प्रकार के कहे गये हैं। बैठक पर चौड़ा पांव रखकर गुह्यभाग दिखाई दे, इस तरह बैठने को, और प्रेत (मुर्दे) की तरह सीधे सोकर, दोनों हाथ शरीर से लगाकर सोने को प्रेतासन कहते हैं। यह आसन मूर्ति-शिल्प के लिये ज्यादा उपयोगी नहीं है। लेकिन उग्र देव या देवी की मूर्ति के नीचे सोते हुए प्रेत का आसन इस प्रकार अंकित करने का आदेश है। इसे मूर्ति की पीठ-बैठक कहते हैं।

९ कुर्मासन:

दोनों पांव मोड़कर, दोनों घुटनों पर बैठने को, कूर्मासन कहते हैं। यह योग का आसन है।

१० सिंहासन:

कूर्मासन लगाकर दोनों घुटनों पर हाथ की उंगली रखकर, आंखें बंद करके बैठने को सिंहासन कहते हैं। यह भी योग का ही आसन है। कई विद्वान कूर्मासन और मकरासन को भी यही आसन मानते हैं। लेकिन कूर्म और मकर जलचर प्राणी हैं और वे जमुना और गंगा के वाहन हैं।

११. पर्यंकासन:

सोती बुद्ध विष्णु की मूर्ति शेषशायी, जलशाय और बुद्ध निर्वाण मूर्ति का पर्यंकासन होता है।

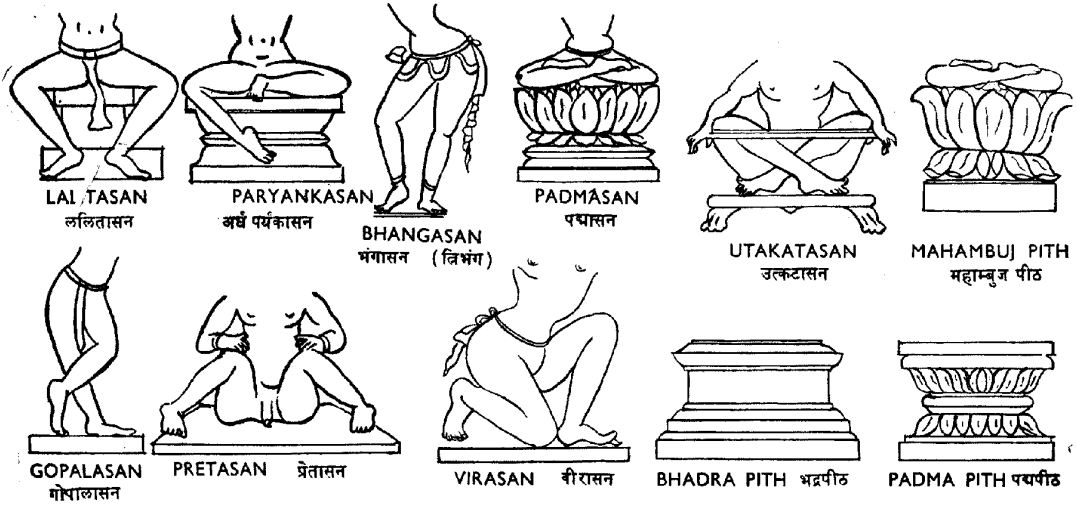

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : षष्ठम्

पीठिका (Pedestal)

द्रविड ग्रंथों में उत्तर भारत के शिल्प ग्रंथों से काफी अधिक मात्रा में पीठिका, बैठक और आसन विषयक वर्णन मिलता है। द्रविड ग्रंथों में नौ प्रकार की पीठिकाएं वर्णित हैं। जैसे–

१. भद्रपीठ
२. पद्म पीठ
३. महाम्बुज पीठ
४. वज्रपीठ
५. श्रीधर
६. पीठ पद्म
७. महावज्र
८. सौम्य
९. श्रीकाम्य

इसमें भद्र पीठ, पद्म पीठ और महाम्बुज पीठ (देखिये चित्र पृष्ठ : १९) द्रविड और उत्तरीय प्रदेश की मूर्ति में देखी जाती है। कई लोग पीठ या बैठक की गणना शरीर-आसन में करते हैं। लेकिन शरीर मुद्रा से यह (आसन–पीठ-बैठक) भिन्न ही है।

'समरांगण सूत्रधार' में मुद्राओं के अध्याय में तीन प्रकार वर्णित हैं। शरीर मुद्रा, पाद मुद्रा और हस्त मुद्रा, इस तरह तीनों का भिन्न-भिन्न वर्णन है।

कई लोग वाहन को ही बैठक मान लेते हैं। उदाहरणार्थ शेषशायी विष्णु, कालिय मर्दन करते कृष्ण, मृतक पर नृत्य करते नटराज, या वामन अवतार में बलि को पैर के नीचे कुचलते हुए भगवान विष्णु, ये सब प्रासंगिक वाहन, आसन, या मुद्रायें हैं। लेकिन इन्हें पीठिका नहीं कहा जा सकता है।

पीठिका का मतलब है, जिसके ऊपर हरदम बैठा जा सके, ऐसा आसन। उदाहरणार्थ सिंहासन पौराणिक काल में देव, राजा, महाराजा आदि के निश्चित आसन थे। गणेश हमेशा सिंहासन के ऊपर ही बैठते हैं। जब कि हनुमान के लिए ऐसा कोई निश्चित आसन नहीं है। वे राम के चरण के पास सेवक की मुद्रा में बैठते हैं। और जब खड़ी मुद्रा में होते हैं, तब एक हाथ में गदा और दूसरे में पर्वत धारण किये होते हैं। या प्रणाम मुद्रा में होते हैं। इसी तरह बालकृष्ण का भी कोई आसन नहीं है। लेकिन राजवी कृष्ण सिंहासन पर बैठते थे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देलवाड़ा आबु के जैन मंदिर का मंडप स्तंभ तोरण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

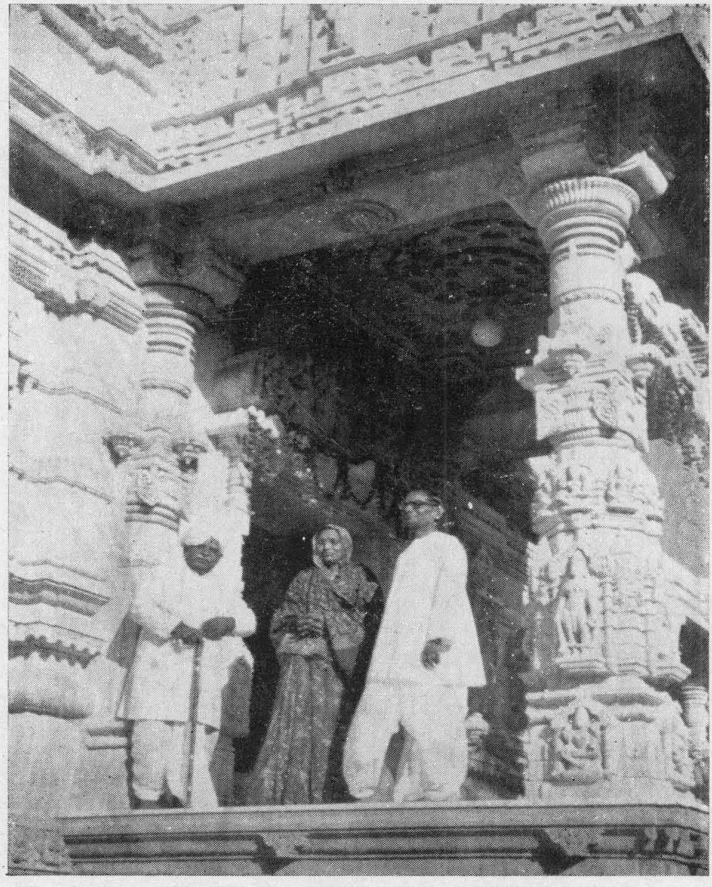

सेंच्युरी-रेयोन बिरलाजी कल्याण-मंदिरकी चतुष्किकामें मंदिर निर्माता प्रभाशंकरजी,
श्रीमती और श्रीमान श्रीगोपाल नेवटियाजी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : सप्तम्

शरीरमुद्रा (Position of Body)

प्रतिमा विधान में सबसे उत्कृष्ट तत्त्व अंगभंगी को माना गया है। देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के अंगों के मरोड़ के पृथक्-पृथक् अभिनय व्यक्त करनेवाली स्थिति को अंगभंग की संज्ञा दी गयी है।

शरीरमुद्रा

१. समपाद-स्थानक	२. आभंग
३. त्रिभंग	४. अतिभंग
५. आलिढ्य	६. प्रत्यालिढ्य
७. उत्कटिक	८. पर्यंक
९. ललाट तिलक	

इनमें से प्रथम चार मुख्य शरीर मुद्रायें मानी जाती हैं, और बाकी की पांच मुद्रायें शिल्पशास्त्र में गौण मानी गयी हैं। 'विष्णु धर्मोत्तर' और 'समरांगण सूत्र' में शरीर मुद्रा के नव प्रकार कहे गये हैं। वे नृत्य और चित्रकला के लिये विशेष उपयोगी हैं।

शरीरमुद्रा के लक्षण

१ समपाद, स्थानकः

पांव से मस्तक तक एक सूत्र में खड़ी मूर्ति को समपाद कहते हैं। सूर्य, बुद्ध और जैन तीर्थंकरों की खड़ी मूर्तियों को कायोत्सर्ग मुद्रा कहते हैं।

२ आभंगः

मस्तक थोड़ा-सा झुका हुआ हो, और कटिप्रदेश थोड़ा-सा मुड़ा हुआ हो, उसे आभंग मुद्रा कहते हैं। बुद्ध की बोधिसत्व मूर्तियाँ और ऋषि-मुनियों की मूर्तियाँ ऐसे मोड़वाली (आभंग मुद्रायुक्त) होती हैं। जिन्होंने एक भंग या मोड़ लिया हो, वे सब मूर्तियां आभंगमुद्रा की कही जाती हैं।

३ त्रिभंगः

मस्तक, कटि और पैर—इन तीनों अंगों से बलखाती प्रतिमा को त्रिभंगी कहते हैं। त्रिभंग से मूर्ति के सौंदर्य-लालित्य में उत्कृष्ट लावण्य व्यक्त होता है। उसे ललित त्रिभंग भी कहते हैं। अप्सराएँ, देवांगनाएँ, नृत्यांगनाएँ, और आलिंगनयुक्त प्रतिमाएँ त्रिभंगी होती हैं। दूसरे देवी-देवताओं की प्रतिमाएं भी ऐसी होती हैं।

४ अतिभंगः

जिन प्रतिमाओं के अंग तीन से ज्यादा मोड़वाले या बलखाये होते हैं, उन्हें 'अतिभंग' कहते हैं। मस्तक, शरीर, कटि, पाद और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हस्त इन सबके भंगवाली मूर्तियों को अतिभंग युक्त मुद्रा की मूर्ति कहते हैं। नटराज-शिवतांडव, शक्ति देवी की उग्र मूर्तियां, बुद्ध के वज्रपाणि स्वरूप की क्रोधान्वित देवी-मूर्तियां, महिषासुरमर्दिनी और युद्ध करते हुए देवी-देवताओं की मूर्तियां इस प्रकार की होती हैं। अतिभंग मुद्राओं के मरोड़ सशक्त होते हैं।

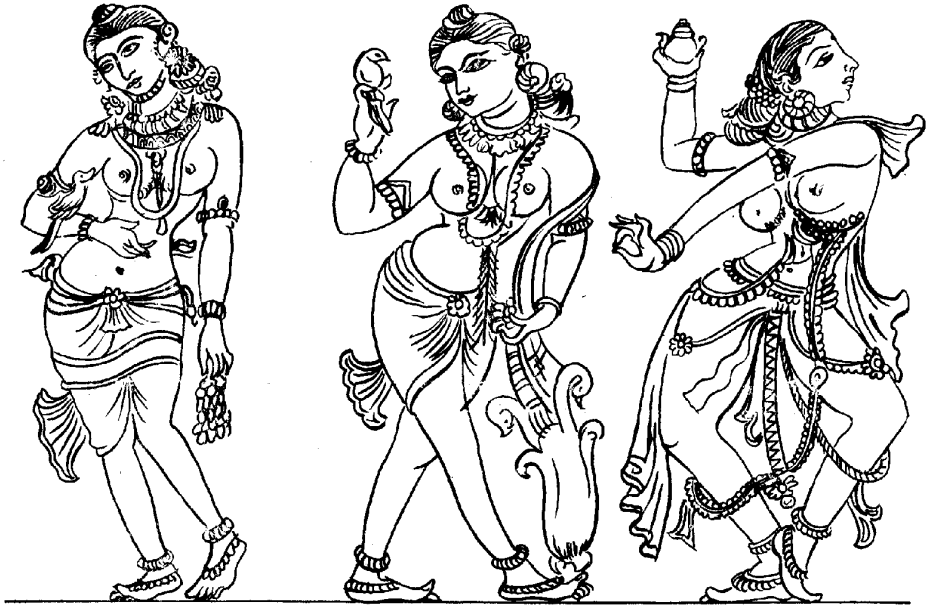

ABHANG
आभंग

TRIBHANG
त्रिभंग

ATIBHANG
अतिभंग

५ आलिढ्य:

बायाँ पैर मोड़कर ऊंचा रखकर दाहिने पैर पर खड़ी मूर्ति की मुद्रा को आलिढ्य मुद्रा कहते हैं।

६ प्रत्यालिढ्य:

दाहिना पैर मोड़कर, उसे ऊंचा करके बायें पैर पर खड़ी मूर्ति को प्रत्यालिढ्य भंगवाली मूर्ति कहते हैं। आलिढ्य से विपरीत मुद्रा को प्रत्यालिढ्य मुद्रा कहा गया है। हनुमान, दशावतार के वाराह, और बलि को दबाती हुई वामन की मूर्ति, ये सब प्रत्यालिढ्य भंगवाली होती हैं।

७ उत्कटिक:

नरराज की नृत्य मुद्रायुक्त प्रतिमा को उत्कटिक भंगवाली प्रतिमा कहते हैं।

८ पर्यंक:

विष्णु भगवान की क्षीरसागर में सोयी हुई मुद्रा को पर्यंक मुद्रा कहते हैं।

९ ललाट तिलक:

द्रविड और बंग प्रदेश में ललाट तिलक मूर्तियाँ बहुत देखी जाती हैं। एक पैर ऊर्ध्व रखकर, ललाट को तिलक करती मुद्रा को ललाट-तिलक मुद्रा कहा गया हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

SAMAPAD समपाद | ABHANG आभंग | TRIBHANG त्रिभंग | ATIBHANG अतिभंग

'समरांगण सूत्रधार' में शरीर मुद्रा के ये नौ प्रकार वर्णित हैं :

१. वैष्णवम्	४. आलिद्ध्य	७. आभंग
२. वैशारवम्	५. प्रत्यालिद्ध्य	८. त्रिभंग
३. मण्डलम्	६. समपाद	९. अतिभंग

नृत्य में हस्त, पाद मुख और शरीरावयव मुद्राओं भावादि व्यक्त करने का परम साधन है। भाषा में भाव प्रकाश होता है किंतु ये चारों अवयवों से मुद्राओ मुक भाव व्यक्त करने का सर्वोत्तम साधन है।

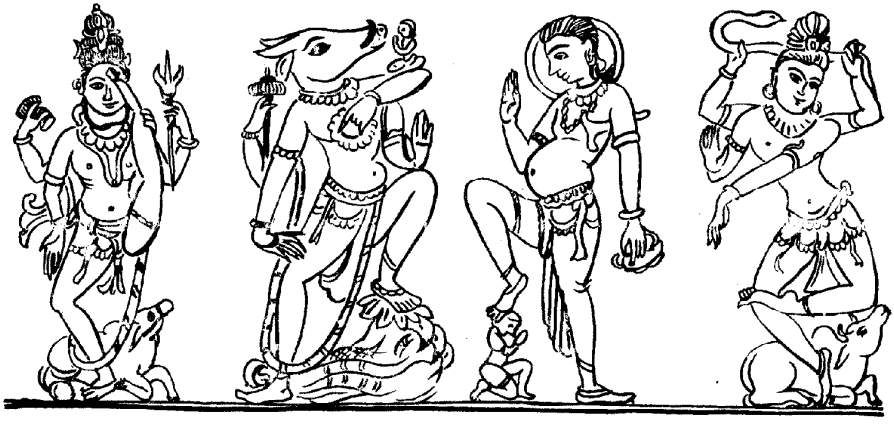

LALATMUDRA ललाटमुद्रा | ALIDYA आलिढ्य | PRATYALIDYA प्रत्यालिढ्य | UTKATIK उत्कटिक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : अष्टम्

वाहन (Vehicles)

देवी-देवताओं के अपने-अपने निश्चित वाहन होते हैं। इन वाहनों से प्रतिमाओं को पहचानने में सुविधा होती है। उदाहरणार्थ जैनतीर्थंकरों की सभी प्रतिमाएं देखने में एक-सी होती हैं। लेकिन प्रतिमा विशेष के 'लांछन' (चिन्ह) के द्वारा पता चलता है कि वह किस तीर्थंकर की प्रतिमा है।

देवी-देवताओं के वाहन उनके स्वभाव, रुचि और विशिष्ट गुण-धर्म के सूचक होते हैं। उदाहरणार्थ, कई उग्र देव-देवताओं के वाहन प्रेत, या मृत देह (प्राणी) आदि होते हैं। चण्डी का वाहन व्याघ्र या सिंह है। खासकर सजीव प्राणी वाहन के रूप में विशेष पाये जाते हैं। वाहन का दूसरा प्रकार स्थिर-जड़ आसन होता है। उनमें कमलपीठ, भद्रपीठ आदि होते हैं।

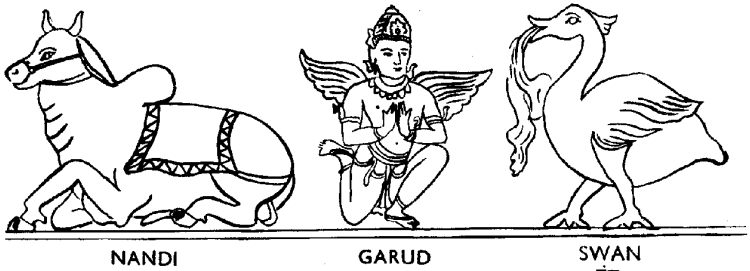

NANDI नंदी | GARUD गरुड | SWAN हंस

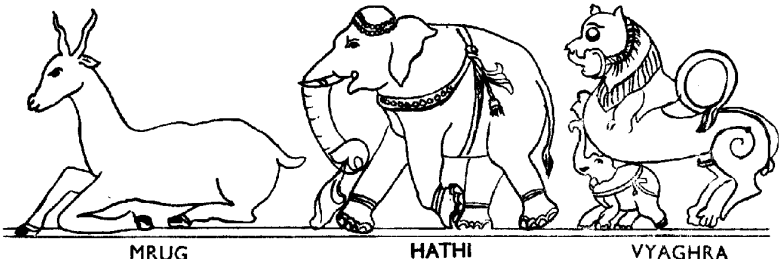

MRUG मृग | HATHI हाथी | VYAGHRA व्याघ्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कई देवी-देवताओं के वाहन इस प्रकार हैं : अंतिम चारों स्वरूप प्रासंगिक हैं।

१.	ब्रह्मा	हंस	७.	इन्द्र	हाथी-ऐरावत	१३.	वरुण } मकर (मगर)
२.	विष्णु	गरुड़	८.	वायु	हरिण-हिरन	१४.	गंगा } मकर (मगर)
३.	महेश (शंकर)	नन्दी	९.	यम	भैंसा	१५.	वराह नाग
४.	गणेश	मूषक-चूहा	१०.	अग्नि	घेटा (भेड़)	१६.	नटराज वामनाकार दैत्य. (प्रासंगिक)
५.	सरस्वती	मोर-हंस	११.	चण्डी	व्याघ्र या सिंह	१७.	बालकृष्ण कालीय नाग (प्रासंगिक)
६.	सूर्य	सप्ताश्व रथ	१२.	निरुति	श्वान (कुत्ता)	१८.	वामन बलि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंक : नवम्

नृत्य (Dance)

नृत्य-कला का आदि-स्वरूप शिव के तांडव नृत्य को माना जाता है। इसलिए नृत्य-कला के आद्यपिता शिव माने जाते हैं। महर्षि भरत ने नाट्य-शास्त्र पर एक समृद्ध ग्रंथ पद्य में लिखा है। यह ग्रंथ नृत्य-कला के लिए प्रमाणभूत माना जाता है। वाद्य, ताल, गीत, सप्तस्वरादि भेद और तांडव आदि नृत्य का कला के रूप में 'अपराजित सूत्र' नामक शिल्प ग्रंथ में निरूपण किया गया है। उग्रताण्डव के साथ लास्यताण्डव के उल्लेख भी शिल्प-ग्रंथों में दीया गया हैं।

शास्त्रकारों ने नृत्य में अंग-भंग से होनेवाले अनेक भेदों के वर्णन किये हैं। पाद, ताल, कटि, वक्ष, ग्रीवा, बाहु, मुख, नासिका और दृष्टि से व्यक्त होने वाले भाव और भ्रमर रेखा से प्रकट होने वाले भाव, नृत्य-कला में होनेवाले अंग-भंग द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। नृत्य-कला में मुख, हाथ, दृष्टि और अंग-भंगी को ही अभिनय की महत्त्व की मुद्राएँ माना गया है। नृत्य, संगीत, और ताल ये सब एक दूसरे के पूरक हैं। तांडव-नृत्य सामान्य नृत्य नहीं है, परंतु वह शिव का प्रलयंकर नृत्य है। द्रविड प्रदेशों के स्थापत्यों में शिव-तांडव की रुद्र प्रतिमा बहुत-सी जगहों पर पायी जाती हैं। चिदम्बरम् के नटराज मंदिर में १०८ प्रकार के नृत्य स्थापत्य में अंकित किये गये हैं। उत्तर भारत में नटराज की प्रतिमाओं का, दक्षिण प्रदेश के समान प्राधान्य नहीं है। वहां शिवलिंग की पूजा का विशेष महत्त्व है। द्रविड में भी लिंग पूजा तो होती ही हैं !

कटिसम नृत्य द्रविड प्रदेशों में, ललित नृत्य इलोरा में, ललाट तिलक कांजीवरम् में और चतुरम् तंजौर में प्रचलित है। शिवनृत्य में सृष्टि की उत्पत्ति, रक्षा और संहार का मिश्र स्वरूप समाया है।

नृत्य में वाद्य, ताल और गीत का मेल है। आजकल मूक नृत्य का प्रयोग भी प्रचलित है। लेकिन इससे इतना रस उत्पन्न नहीं होता। मुख द्वारा गीत के आलाप का निर्णय होता है। नृत्य में भावानुसार भाव संक्रांति भी होनी चाहिए। लेकिन हाथ से अर्थ-भाव की कल्पना होती है। यह सब नृत्य लक्षण हैं।

आलिढ्य, प्रत्यालिढ्य और उत्कटिक इन सब पादमुद्राओं को भी नृत्यकला में निश्चित ही स्थान दे सकते हैं।

यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो दृष्टिस्ततो मनः
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रस ।।

जसा नृत्य में हाथ जिस विषय का सूचन करता है, उसी विषय का सूचन दृष्टि भी करती है। दृष्टि जैसा ही सूचन मन भी करता है। मन जैसा भाव और भाव जैसा रस उत्पन्न होता है।

आस्येना लंबयेदगीत हस्तनार्थं प्रकल्पयेत्
चक्षुर्भ्या न भवेदभावे पादाभ्यां ताल निर्णय

मुख से गीत का निर्णय होता है। हाथ से अर्थ-भाव की कल्पना होती है। दृष्टि से भाव की कल्पना होती है पैर पद से ताल का निर्णय होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भंड.गे भंड.गे मुखं कुर्यात् हस्तौ दृष्टि च वर्तते
हस्तकार्यं भवेल्लोके कर्मणो भिनयेत्किलम् ॥१॥ (देवतामूर्ति प्रकरण)

नृत्य में हस्त, पाद, मुख और शरीर के अन्य अवयवों की मुद्राएँ भावाभिव्यक्तिके परम साधन हैं। विशेषतः भाव भाषा द्वारा प्रकट होते हैं, लेकिन नृत्य की मुद्राएँ मूक होते हुए भी भावाभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन हैं।

नृत्य करते समय ज्यों-ज्यों अंगभंगी होती जाती है, वैसे ही मुख, हस्त और दृष्टि का हलन--चलन होता है।

हस्त, मुख और दृष्टि यह अभिनय का कारण है। (देवमूर्ति प्रकरण)

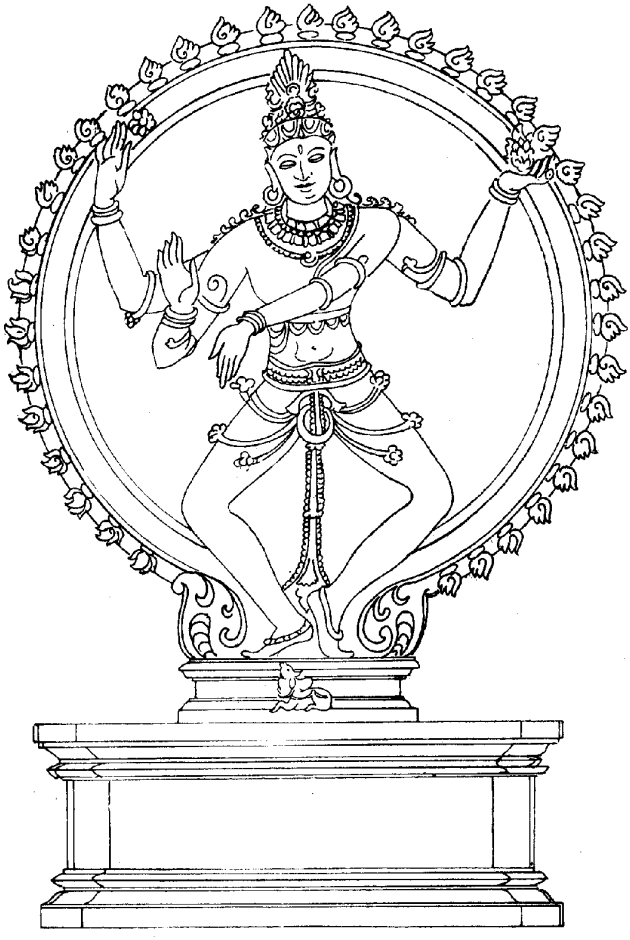

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्क : दशम्

षोडशाभरण (अलंकार) (Ornaments)

'अपराजित सूत्र' २३६ में और 'द्रविड शिल्प रत्नम्' अ. १६ में अलंकार विषयक चर्चा की गयी है। देवी-देवता, चक्रवर्ती, राजा, श्रीमंत वर्ग, आदि के अलंकार विषयक द्रविड ग्रंथों में और आगम ग्रंथों में सविस्तृत वर्णन मिलते हैं। तदुपरांत, 'अंशुमन प्रभेदागम' 'मानसार', 'शिल्प-सूत्र', 'पद्मसंहिता' और अन्य आगम ग्रंथों में आभूषणों के वर्णन किये गये हैं। द्रविड तंजौर के बृहदीश्वर के शिवमंदिर में अनेक अलंकारों का वर्णन उत्कीर्णित है, और उन अलंकारों में हीरा, मोती, मानिक लगाने की रीतियां भी वहां के स्थापत्य में उत्कीर्णित की गई हैं। लेकिन सभी प्रतिमाओं के लिए ये १६ आभूषण अनिवार्य नहीं हैं। कई प्रतिमाओं में वे कम-ज्यादा मात्रा में दिखाई देते हैं। आभूषण के लिए कोई साम्प्रदायिक भेद नहीं है, काल भेद और प्रांत भेद स्वरूप भेद अलंकार कमी जास्ती दिखाई जाता है यह विशिष्ट बात मानी जानी चाहिए। जैन तीर्थंकर वीतरागी होने के कारण उनके कोई आभूषण नहीं हैं। परंतु, उनके यक्ष, यक्षिणी, प्रतिहार आदि की मूर्तियों को आभूषण पहनाये हुए होते हैं। हमारी भारतीय शिल्प-कला पूर्व के जिन-जिन देशों में प्रचलित हुई है, वहां–जावा, कम्बोडिया, लंका, अंगकोरवाट आदि देशों के स्थापत्यों की प्रतिमाओं पर इसी प्रकार के आभूषण दिखायी देते हैं। इसका कारण यह है कि उनका स्थापत्य और मूर्ति विधान, भारतीय कुल की संतानें हैं।

'अपराजित सूत्र' में, किस प्रदेश में किस प्रकार के आभूषणों की विशिष्टता है, वह भी वर्णित है। कान की बुट्टी के आभूषण को सौराष्ट्र में 'ठोलिया' कहते हैं। तमिल भाषा में कुण्डल को 'याली' या 'तोडा' कहते हैं। संस्कृत साहित्य में स्कंधमाला को बगल तक लटकती बताया गया है। गुप्तकाल की पल्लव प्रतिमाओं में स्कंध माला देखने को नहीं मिलती। लेकिन इलोरा, अहिलोल और चालुक्य राज्यकाल तथा चौल राज्यकाल की मूर्तियों पर यह स्कंध माला दिखायी देती है, इसी तरह बहुत प्राचीन मूर्तियों में कटि-सूत्र से जंघा तक की माला (उरुहाम या मुक्त माला) दिखायी नहीं देती। द्रविड चौल राज्यकाल की और उसके बाद की मूर्तियों में वह दिखायी देती है। बदामी शिल्प में दोनों जंघा पर एक-एक पंक्ति और पेडू पर मध्य में तोरा लटकता है।

मूर्ति विधान में कहे गये १६ आभूषण सभी काल में शिल्पित किये ही जाते हों, ऐसा नहीं है। गुप्तकाल की प्रतिमाओं में खास तरह के आभूषणों की विशिष्टता थी। प्रत्येक प्रान्त की प्रतिमाओं के आभूषण और वेश–परिधान में वैविध्य मिलता है। किसी काल में कोई आभूषण कम–ज्यादा होते थे, उसके ऊपर से प्रतिमा का सर्जनकाल, और वह कौन से प्रान्त की थी, यह समझने में सुविधा रहती थी।

'अपराजित सूत्र' २३६ में १६ प्रकार के आभूषण वर्णित हैं। वे इस प्रकार हैं :

१. मुकुट–१ किरीट २ करंट ३ जटा मुकुट
२. कुंडल
३. उपग्रीवा
४. हिक्कासूत्र
५. हीणमाल
६. उरुसूत्र
७. केयूर
८. उदरबंध
९. छन्नवीर
१०. स्कंधमाला
११. कटककल्लय, पादवलय
१२. पाद जालक
१३. यज्ञोपवीत
१४. कटिसूत्र
१५. उरुहाम
१६. अंगुलीमुद्रा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तंजौर, बृहदीश्वर के मंदिरों में अलंकारों का वर्णन भलीभांति अंकित किया गया है।

मुकुट

'द्रविड-शिल्प रत्नम्' अ. १६ में भी १६अलंकार स्पष्टता से वर्णित हैं। उदा. मुकुट के तीन मुख्य प्रकार कहे गये हैं। किरीट, करंड और जटामुकुट। जटामुकुट के भी केशों की रचना के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार कहे गये हैं। उदा. कुंतल, शिरस्त्राण, धम्मिला और और अलकचूड़क आदि केशमुकुट के प्रकार हैं। शिव, ब्रह्मा, पार्वती और सरस्वती जटामुकुट धारण करते हैं। लेकिन इसमें विभिन्न ग्रंथो में मत-मतांतर है। विष्णु के मुकुट को किरीट मुकुट, और शक्ति देवियों तथा चक्रवर्ती राजाओं के मुकुट को करंड मुकुट कहते हैं।

'अपराजित सूत्र' में मुकुट के तीन प्रकार सहज भिन्नता से वर्णित हैं।

१. शेखर-(शिखर के आकार का) : शिव और नरेंद्र का।
२. किरीट-शृंगोदर, शृंग, इसे विष्णु और अन्य देवता धारण करते हैं।
३. आमलक-(आमलसार) मुक्ताफल के पांच अंडक जैसा यह मुकुट देवताओं तथा राजाओं के लिए है।

द्रविड आगम ग्रंथ, 'मानसार' और 'शिल्प रत्नम्' में ऐसे विशेष प्रकार के मुकुटों के स्वरूप वर्णित है। विविध प्रकार के मुकुट और उनको धारण करनेवाले देवी-देवताओं के नाम इस प्रकार हैं :-

१.	जटा-मुकुट	ब्रह्मा और शिव	४.	शिरस्त्राण	यक्ष नाग, विद्याधर	७.	धम्मिला मुकुट विविध देवियां
२.	किरीट मुकुट	विष्णु और वासुदेव	५.	कुंतल मुकुट	सरस्वती, सावित्री	८.	अलक चूडक राजा रानियां
३.	करंड मुकुट	अन्य देवी-देवताएं	६.	केशबंध मुकुट	बालकृष्ण	९.	मुकुट पट्ट राजा, महाराजा, रानियां

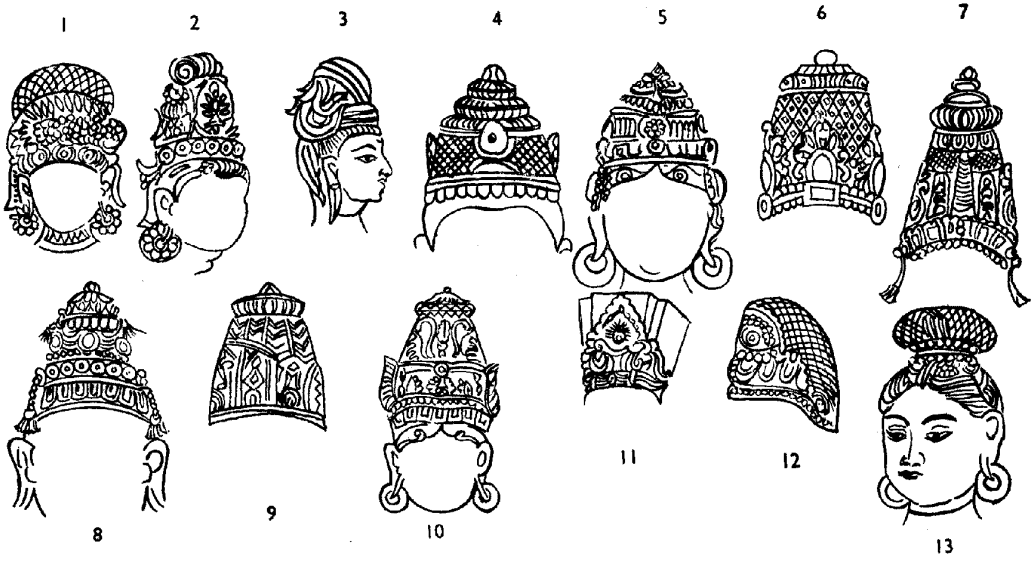

चित्र में बताये हुए मुकुट के क्रमशः नाम :
ललितरहस्य और उत्तर कामिकला शिरस्त्राण के पांच भेद

१. धम्मिला :	Dhammila	७. किरीट मुकुट :	Kirit Mukut (मथुरा)
२. जटा मुकुट :	Jata Mukut पल्लव	८. किरीट मुकुट :	Kirit Mukut (होयसल)
३. ,,	,,	९. करंड मुकुट :	Karand Mukut (गुजरात, राजस्थान)
४. करंड मुकुट :	Karand Mukut (चोला)	१०. करंड मुकुट :	Karand Mukut (गुजरात, राजस्थान)
५. ,,	Karand Mukut (होयसल)	११. जावासुमाला मुकुट :	Javasumala Mukut
६. ,,	(शेखर) Karand Mukut (गुप्त, चालुक्य, पल्लव)	१२. केशबंध :	Keshbandh (चालुक्य)
		१३. धम्मिला :	Dhammila (दक्षिण भारत)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१४. करंड मुकुट :	(Karand mukut)	२२. केशबंध जटामुकुट :	(Keshbandh Jatamukut)
१५. किरीट मुकुट :	(Kirit mukut)	२३. ,, ,,	,, ,,
१६. शिरस्त्राण :	(Shirastran)	२४. जटामुकुट धम्मिल्ला :	(Jatamukut Dhammilla)
१७. जटामुकुट केशबंध :	(Jatamukut Keshbandh)	२५. ,, अलक चूडक :	(,, Alakchudak)
१८. कुन्तल :	(Kuntal)	२६. किरीट मुकुट	(Kirit Mukut)
१९. जटामुकुट केशबंध :	(Jatamukut Keshbandh)	२७. करंड ,,	(Karand Mukut)
२०. मयुरपंखी जटामुंड :	(Mayurpankhi Jatamund)	२८. ,, ,,	(Karand Mukut)
२१. केशबंध जटामुकुट :	(Keshabandh Jatamukut)		

MUKUT मुकुट

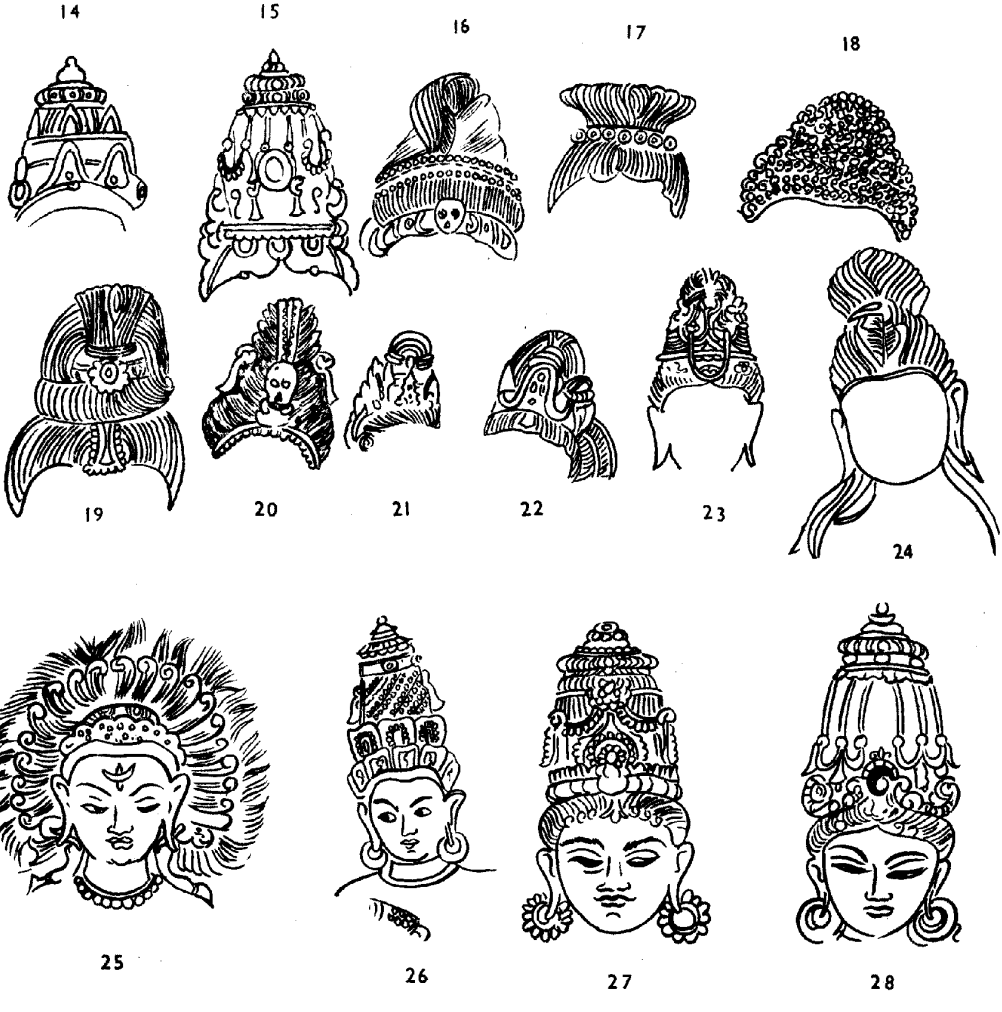

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बृहद् संहिता (वराह संहिता) में मुकुट पर कलगियां, (शिखियां) एक, तीन, या पांच रखने का आदेश है।

१. पांच कलगी महाराजा के लिए २. तीन कलगी युवराज के और महारानी के लिए

३. एक कलगी सेनापति के लिए

'विष्णु धर्मोत्तर' कार देवताओं के लिये सात कलगी के मुकुट का वर्णन करते हैं। लेकिन ऐसे कलगी वाले मुकुट चित्र और नाटक में दिखाये जाते हैं। शिल्पकृतियों में ऐसी कलगियां उत्कीर्ण करना संभव नहीं है। सो ऐसी कलगियां शिल्प में देखने को नहीं मिलतीं।

आभूषणों के प्रकार और लक्षण

१ मुकुट

(अ) किरीट मुकुट :

एक-एक अंगुल के परिमाण के, एक के ऊपर एक, चारों ओर से लपेटे हुए आवरण वाले, अष्ट अंगुल ऊंचे और उज्ज्वल मुकुट को किरीट मुकुट कहते हैं। १६ अंगुल से २४ अंगुल ऊंचे, प्रकाशमय मुकुट को भी किरीट मुकुट कहते हैं। इस मुकुट को खास तौर से विष्णु धारण कहते हैं। तीन, पांच या सात पेचवाला मुकुट योग्य लगता है। शिखर की आकृति वाले, कमल के समान, या छत्र के समान, एक पर दूसरा यों उत्तरोत्तर चढ़ते वृत्ताकार के किरीट मुकुट में कौस्तुभमणि लगा रहता है। यह मुकुट दूसरे अनेक रत्नों से जड़ित होता है।

(ब) करंड मुकुट:

नीचे से मूल भाग के क्रम की परिधि को छोटा करते हुए, ऊपर का अग्रभाग, मुकुलाधार–खिले हुए कमल जैसा–तीन, पांच, या सात पेचवाला टोकरी की आकृति जैसा जो सुशोभित होता है, उस मुकुट को करंड मुकुट कहा है। बाकी अन्य बातें ऊपर जैसी बताई हैं, उसी प्रकार होती हैं। उसके नीचेवाले तीन पट्टे रत्न जड़ित करने चाहिये। उसमें कान के लंबे कर्ण-पुष्प–रत्न पट्ट, कान पर लटकते तोरे आदि करने चाहिये। करंड मुकुट अन्य देव-देवियों तथा चक्रवर्ती राजाओं के लिये होता है।

(क) जटा मुकुट:

बत्तीस अंगुल से एक–एक अंगुल की वृद्धि करते ६१ अंगुल उँचाई तक के जटा मुकुट होते हैं। जटा की ऊंचाई दो अंकोवाली और समांगुल करनी चाहिये। जटा का नीचे का हिस्सा बड़ा करना चाहिए। एक दूसरे के ऊपरी क्रम से जटाबंध की जटा की चौड़ाई उतरते क्रम में रखनी चाहिए। जटा की लट की चौड़ाई का परिमाण छोटी (अंतिम) उंगली जितना रखना चाहिए। जटामुकुट की ऊंचाई २४ से १६ अंगुल तक की रखनी चाहिए। इसके पांच प्रकार वर्णित हैं। बाल के अंत भाग से मुकुट के नीचे के मूल भाग में ललाट पर पांच पट्टे करने चाहिए। ४ से १२ भाग तक की ऊंचाई का यह मुकुट करना चाहिये। शिव के जटामुकुट में धतूरे के फूल, नाग और मस्तक पर गंगाजी और अर्धचंद्र करने चाहिए। मुकुट के मध्य में मकरकूट और दूसरे पत्रकूट को रत्नफूट भी कहते हैं। उग्र प्रतिमा के जटा मुकुट में मुंड भी किये जाते हैं। खास तौर से शिव, ब्रह्मा, उमा, सरस्वती और सावित्री जटामुकुट धारण करते हैं। नीचे दिये हुए कुतल और जटाकुन्तल गुप्तकाल के है।

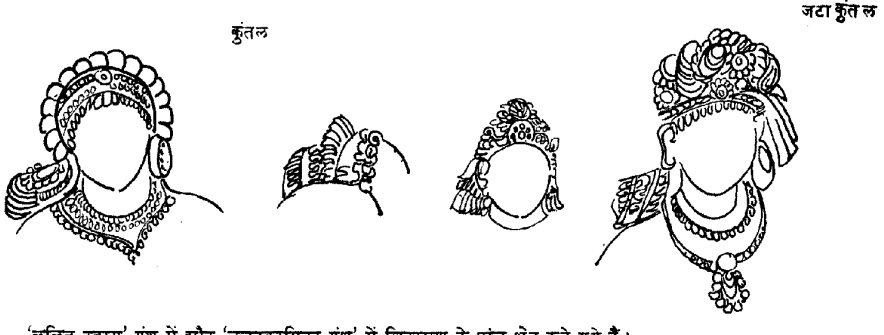

'ललित रहस्य' ग्रंथ में और 'उत्तरकामिका ग्रंथ' में शिरस्त्राण के पांच भेद कहे गये हैं।

१. शिव और ब्रह्मा के मुकुट को धम्मिला और जटामुकुट कहते हैं। २. सरस्वती के मुकुट को कुन्तल कहते हैं।

३. सावित्री और उमा के मुकुट को केशबंध कहते हैं। ४. शिव का धम्मिला मुकुट होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५. अलक चूड़क जटामुकुट सभी प्रकार के मस्तक के बाल की रचना के प्रकार हैं।
जटामुकुट के पांचों प्रकार के स्पष्ट स्वरूप दिखाई पड़ते हैं।

२ कुण्डल कान के आभूषण:

१. पत्रकुंडल	२. रत्नकुंडल
३. सिंह कुंडल	४. शंखपत्र कुंडल
५. सर्पकुंडल	६. गज कुंडल
७. वृत्तकुंडल	८. मकर कुंडल

इस तरह के कुंडलों की आठ प्रकार की आकृति तैयार की जाती है।

पत्र कुंडल तीन, चार या पांच मात्रा प्रमाण के अनुसार चौड़ा करना चाहिये। एक यव चौड़ाई के गोल, सफेद सरल शंख-पत्र कुंडल करने चाहिये। मकराकृति, सिंहाकृति या गजाकृति के कुंडल दो, चार या पांच मात्रा परिमाण के करने चाहिये। कुंडल के आकार भेद के अनुसार उसकी ऊंचाई, और उसका व्यास रखना चाहिये। तमिल में कुंडल को तोडु और सौराष्ट्र में ठोलिया कहते हैं।

वृत्तकुंडल १८ यव प्रमाण के और चार अंगुल की ऊंचाई के, कमल जैसे विकसित, स्कंध पर लटकते करने चाहिए। शंख को बीच में से काटकर शंखकुंडल बनाया जाता है। शिव के सर्पकुंडल और विष्णु के मकरकुंडल किये जाते हैं। प्राणी की आँखें लाल रत्न की करनी चाहिए।

JATAMUND
जटामुंड

KUNDAL कुंडल

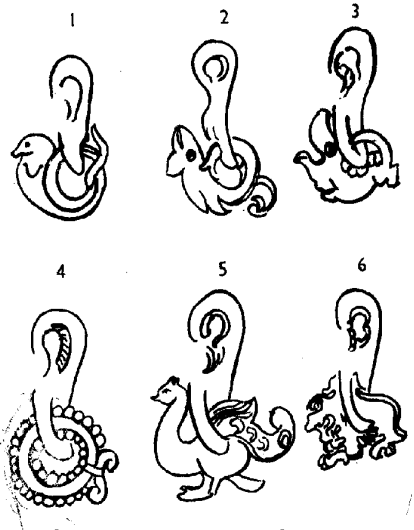

१. सर्पकुंडल	४. सूर्यवृत कुंडल
२. मत्स्य कुंडल	५. मयूर ,,
३. मघर ,,	६. सिंह ,,

३ उपग्रीवा–ग्रैवेय–गले के आभूषण:

कंठमाला: रुद्राक्ष या रत्न से इस सुवर्णमणि शोभायमान की जाती है। गुजरात सौराष्ट्र में इस उपग्रीवा को 'कंठा' भी कहते हैं।

कर्णबंध

४ हक्कासूत्र–हार :

यह गले का आभूषण है। उपग्रीवा से नीचे और छाती के बीच में लटकता रहता है। विस्तार में यह आभूषण चार अंगुल और चौडाइमें तीन यव चौड़ा है। यह रत्न–जड़ित अलंकार है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

GRIVA ग्रीवा

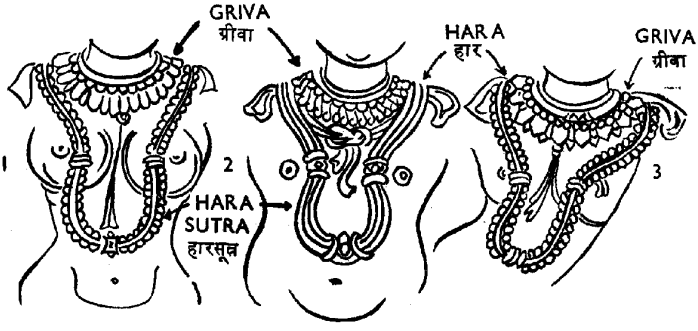

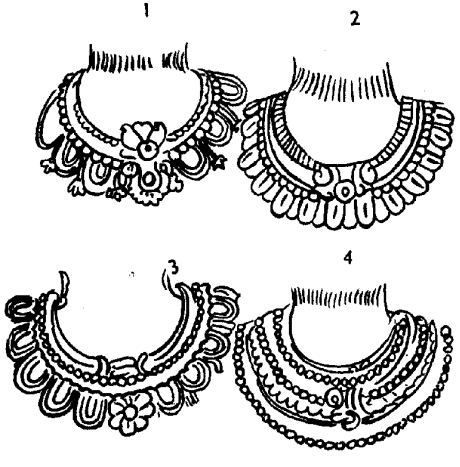

'शब्दामालायम्' ग्रंथ में नीचे लिखी हुई मालाओं का उल्लेख विशेष तौर से हुआ है :

(अ) वनमाला : विष्णु की माला को कहते हैं। वह पैर के घुटनों तक लंबी, मध्य में सहज, स्थूल और छोरों पर पतली होती है।

(ब) मुंडमाला : असुरों के मस्तकों से ग्रथित माला को रुंडमाला (मुंडमाला) कहते हैं। इसे रुद्र तथा कालिका धारण करती हैं।

५ न्हीणमाला:

यह माला उदरबंध तक लंबी तीन या पांच की संख्या (लड़ी) में होती है। इन सब संख्याओं (लड़ियों) को बीच-बीच से जोड़ते रत्नजड़ित बंध होते हैं जिन्हें पदक कहते हैं। मोती की लड़ियों (संख्या) के अनुसार नाम दिये गये हैं। जैसे–एकावली, त्रिसरी, पंचसरी या सप्तसरी, आदि कहते हैं। गुजरात में इसे रायणमाला कहते हैं।

६ उरुसूत्र (स्तनसूत्र):

यह हीक्का सूत्र से ६ इंच नीचे और स्तनसूत्र के मध्यभाग तक चार पुंजे (वहेंत) लंबाई का और एक यव (जौ) मोटा होता है। ऐसे अनेक मणियुक्त सुवर्ण के हार को उरुसूत्र कहते हैं। स्तन से आठ अंगुल जितना (यज्ञोपवीत की तरह) वह लंबा होता है। दोनों स्कंद पर धारण किया हुआ और स्तन को पूर्णतया आवृत्त करने वाला यह आभूषण खास तौर पर देवी प्रतिमा के लिए होता है। इस सूत्र के पीछे पीठ पर गांठ बांधी जाती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

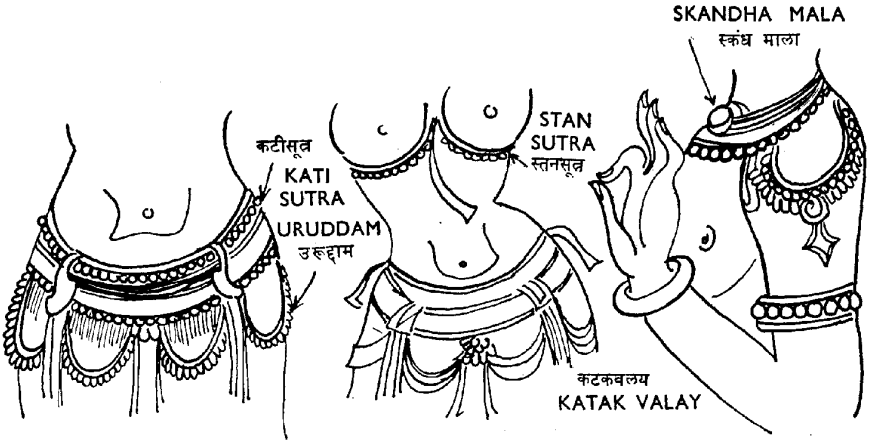

७ केयूर (बाजूबंद):

अष्टपत्र कमलयुक्त अनेक रत्नों से शोभित, शैवाल जैसी हरी कांतिवाला, बाहु के मध्य में कड़े जैसा चौड़ा आभूषण केयूर या बाजूबंद के नाम से पहचाना जाता है। यह आभूषण बाहु को वलयित किए हुए तीन, चार या पांच मात्रा प्रमाण से, रत्न पूरित विस्तार

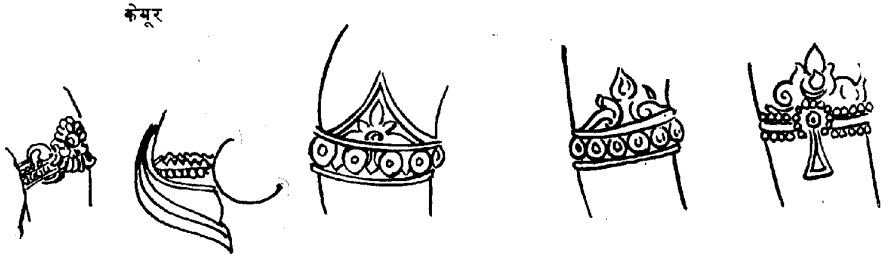

वाला बनाना चाहिए। 'पद्म-संहिता' में ऐसा कहा है कि वह मोती की लटकती लड़ियोंवाला होता है। कई जगह दो-तीन वलय-कड़े जैसे उसके छोर पुष्पमुखी, सिंहमुखी या नागफली वाले भी होते हैं। शिव की बाहुओं पर सर्पाकार केयूर पहनाये जाते हैं। भरत नाट्य में केयूर का अपरनाम 'अंगद' कहा है।

८ उदरबंद:

पेडू (नाभि) से ऊंचा, छाती के नीचे पेट पर आवृत्त आभूषण को उदरबंद कहते हैं। वह 'छन्नवीर' से जुड़ा हुआ होता है। कई उसे उरुसूत्र भी मानते हैं। पेट के आगे से पीछे जानेवाला आभूषण स्तनसूत्र कहलाता है।

९ छन्नवीर या चन्नंवीर:

यज्ञोपवीत की तरह दोनों स्कंध से उतरते हुए आभूषण को 'छन्नवीर' कहते हैं। ग्रीणमाला के नीचेसे वह छाती और उदर के बीच मिलकर पीछे जाता है। और जहां वह आगे-पीछे जोड़ा जाता है, वह 'पदक' रत्न से जड़ा हुआ होता है। उदरबंद और कटिसूत्र की तरह उसके ऊपर मोती और सुवर्ण जड़े हुए होते हैं। उस आभूषण को छन्नवीर कहा जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

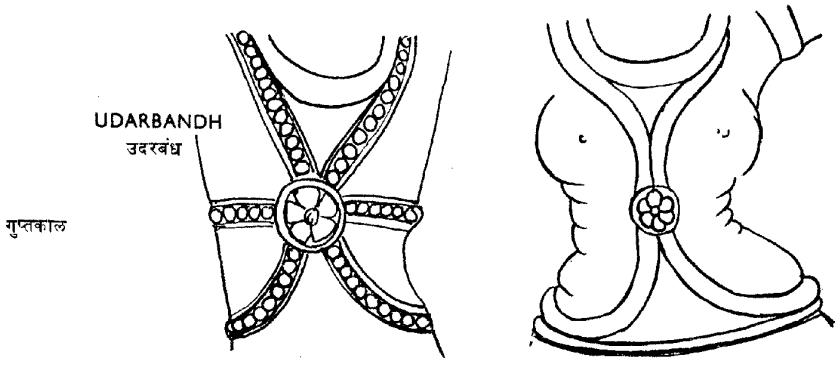

१० स्कंधमाला:

दोनों स्कंध पर, दोनों ओर अनेक प्रकार के मोतियों की सुवर्ण–पुष्प–युक्त लटकती माला को स्कंध माला कहते हैं। संस्कृत साहित्य में उसे बगल तक लटकती बताया है। चालुक्य काल में इलोरा आदि स्थलों की प्रतिमाओं में और चौल राज्यकाल की प्रतिमाओं में यह देखी जाती है। गुप्तकाल की और पल्लव राज्यकाल की मूर्तियों में यह स्कंध माला दिखाई नहीं देती है।

११ कटक वलय दो प्रकार के होते हैं:

१. **हस्तवलय :** हाथ की कलाई का आभूषण

२. **पादवलय :** पैर के टखने का आभूषण.

(अ) **हस्तवलय:** हाथ की कलाई के आभूषण को हस्तवलय कहते हैं।

गोलवलय: दो-तीन यव मोटे या अंतिम अंगुली जितने पतले होते हैं। चित्र-विचित्र रत्नों से शोभित वलय की जोड़ी बनाई जाती है। दो से आठ वलय तक, यह देवी प्रतिमाओं होती है। कटक वलय का मतलब है हाथ के कड़े।

पादवलय

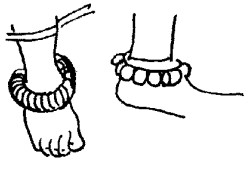

गुप्तकाल

(ब) **पादवलय:** पैर के टखने पर आवृत्त गोल कड़े जैसे आभूषण को पादवलय कहते हैं। शिव को और अन्य सूचित देवी-देवताओं के पैर में भुजंग वलय पहनाया जाता है। उसकी लंबाई १२ अंगुल से अधिक होती हैं। उसकी फेन ७ अंगुल चौड़ी और १ अंगुल मोटी होती है। उस फणी का मुख चांदी का, जिह्वा और उसकी दो आंखें रत्न से जड़ित करनी चाहिए। प्रान्त व देश के अनुसार इसमें थोड़ा वैचित्र्य देखने को मिलता है।

१२ यज्ञोपवीत:

बायें स्कंध से लटकते सूत्र को जनोई–यज्ञोपवीत कहते हैं। कई शिवमूर्तियों पर यज्ञोपवीत नहीं होती है। प्राचीनकाल में मृग की चमड़ी शरीर पर तिरछी बांधी जाती थी। यज्ञोपवीत की प्रथा उस काल में नहीं होगी, तभी ऐसा चमड़ा बांधने की प्रथा रही होगी।

द्रविड पल्लव और चौल मूर्तियों में यज्ञोपवीत सिर्फ वस्त्रों के चिथड़े के रूप में दिखाई देते हैं। चौलकाल में सूत की तीन डोरियां एक जगह गांठ मारी हुई स्थिति

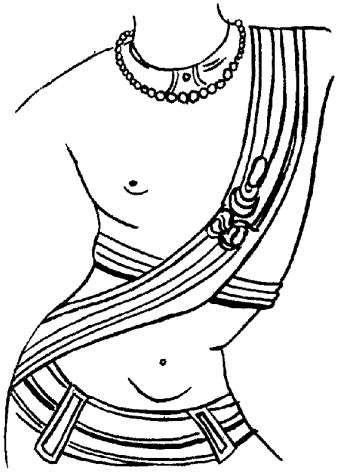

यज्ञोपवीत
YAGNYOPAVIT

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

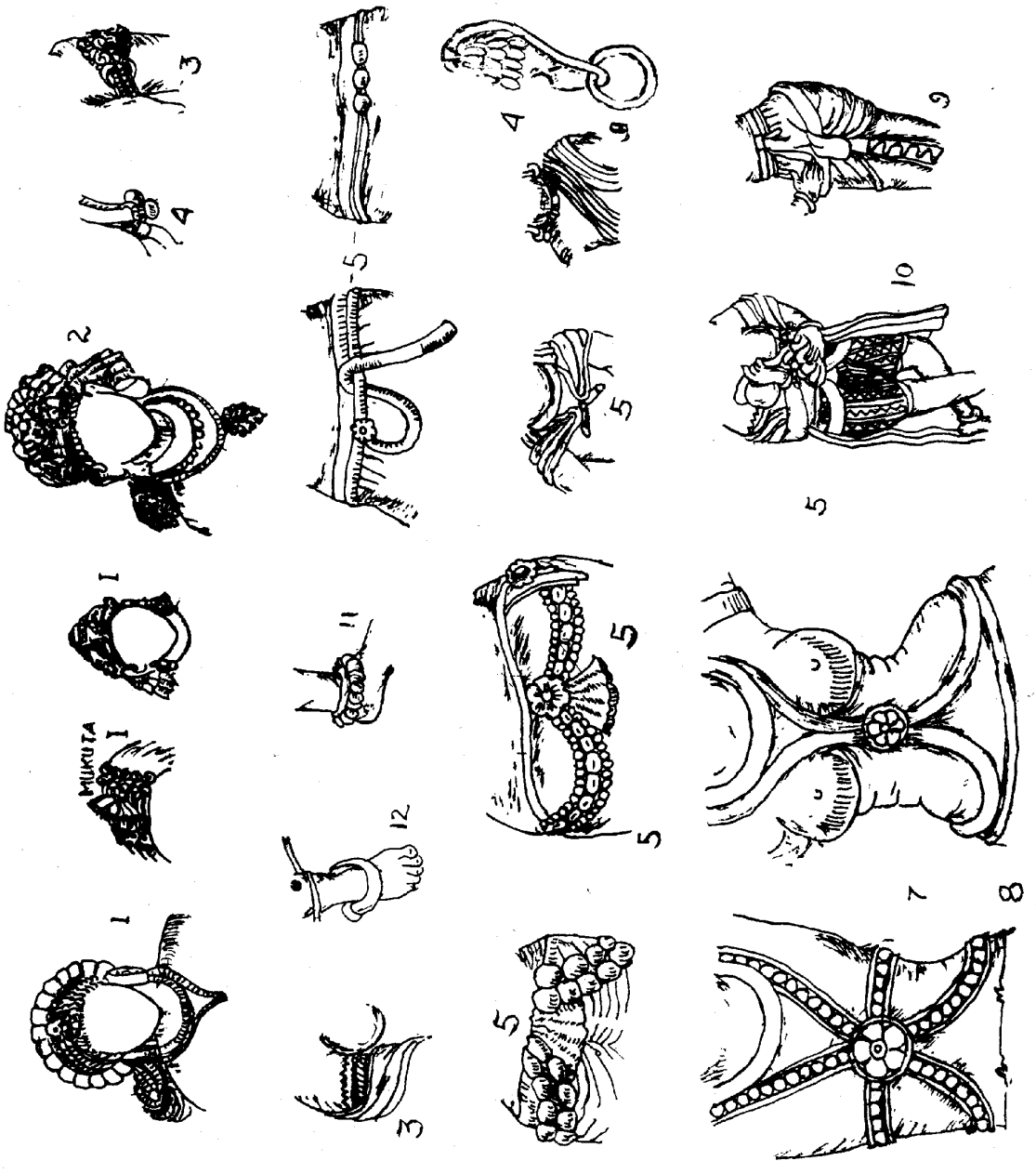

गुप्तकाल की मूर्तियों का आभूषण

१-२. मुकुट ३. केयूर ४. कुंडल ५. कटिसूत्र ६. ग्रीवा ७-८. उदरबंध ९-१०. कटिसूत्र, उरुहाम, मुक्तदाम

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में पायी जाती हैं। आगम ग्रंथों और गृह्य सूत्रों में यज्ञोपवीत के स्पष्ट उल्लेख हैं। दो हजार वर्ष पूर्व की बुद्ध मूर्तियों में यज्ञोपवीत मिलता है। उसी तरह जैनों की प्राचीन मूर्तियों में भी यज्ञोपवीत दिखाई देता है।

१३ कटिसूत्र:

कमर पर बांधने के वस्त्र को पटकूल कहा है। ऐसे कमर के आभूषण को कटिसूत्र कहते हैं। कटिसूत्र के तीन कंदोरे वाले पट्टे के सम्मुख मध्यभाग में पेडू पर सिंह या ग्रास का मुखबंध होता है। रत्नजडित कटिसूत्र पर सोने की बारीक नक्शी होती है। भिन्न-भिन्न काल की मूर्तियों में कटिसूत्र की रचनाएं अद्‌भुत होती हैं। कटिसूत्र से जंघा पर लटकती मोती की पंक्तियों या माला को उरुदाम या रुद्र दाम भी कहते हैं। कई लोग उसे भिन्न आभूषण के रूप में गिनाते हैं।

गुप्तकाल का आभरण

कटीसूत्र KATISUTRA

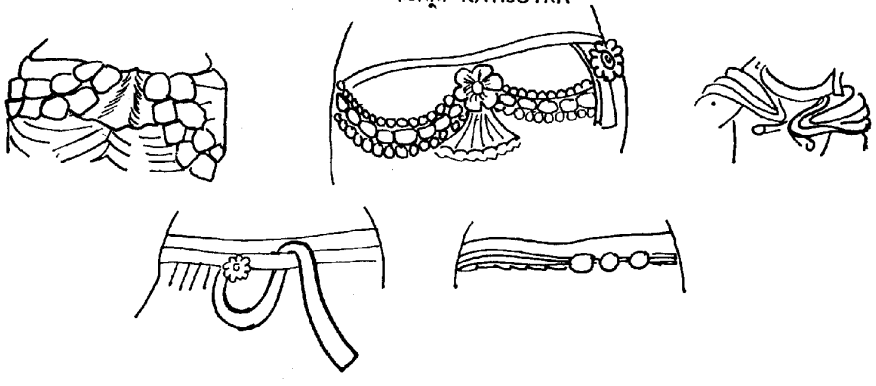

१४ उरुदाम:

उरुसूत्र: कटिसूत्र से तोरण की तरह लटकती मोती की मालाओं को 'उरुदाम' कहते हैं। मालाओं के बीच में लटकती लटों (पंक्तिओं) को 'मुक्तदाम' कहते हैं। पेडू के ऊपर बीच में झूलते मोती के तोरण में बहुत बारीक नक्शी होती है। उरुदाम को कई लोग मुक्तदाम भी कहते हैं। प्राचीन मूर्तियों में वह नहीं दिखती है, लेकिन गुप्तकाल की किसी-किसी मूर्ति में वह होती है। द्रविड-चोल के बाद के समय में यह उरुदाम दिखाई पड़ता है। बदामी शिल्प में दोनों ओर की जंघाओं पर एक-एक पंक्ति दिखाई देती है।

१५ पादजालक:

पैर के टखने के नीचे, पैर के पंजे पर आवृत्त लंबगोल आकृति के आभूषण को पादजालक कहते हैं। वह घुंघरू वाले नूपुर जैसा होता है। सौराष्ट्र में उसे 'कांबी' कहते हैं। लक्ष्मी और अन्य देवियों को बहुत छोटे घुंघरुओं का नूपुर का आभूषण पहनाया जाता है। 'मान सोल्लास' ग्रंथ में पादचूड़क, पादभूषण या राढ़व आदि के पैर के आभूषण वर्णित हैं।

१६ अंगुली मुद्रा:

हाथ-पैरों की अंगुलियों में गोल वलय आंटेवाली अंगूठी, तथा हाथ के बीच की उंगली में हीरा-जड़ित अंगुलिका होती है। होयसल राज्यकाल की मूर्तियों में दो-तीन आंटे की अंगूठी होती है। उसे पवित्रमुद्रा कहते हैं। गुजरात में उस मुद्रा को वेढ़ कहते हैं। हाथों की उँगलियों की तरह पैर की उँगलियों में भी मुद्रा पहनायी जाती है।

१७ विशेषाभरण:

आभूषणों के माप, प्रतिमा के अंग के अनुपात में करने चाहिये। विष्णु या दशावतार की मूर्ति की छाती में श्रीवत्स के स्थान पर कौस्तुभ-मणियुक्त वैजयन्ति (माला) होती है। जैन तीर्थंकर की छाती में श्रीवत्स का चिन्ह उभरा हुआ होता है। श्रीवत्स को क्वचित रोमावली की संज्ञा कहते हैं। बौद्ध और जैन, इन दोनों की मूर्तियों के मस्तक पर उभरे चिन्ह को उष्णिश कहते हैं। इन दोनों संप्रदाय की मूर्तियों के मस्तक में जो गोलाकार गुच्छ दिखाई देता है, वह उनके बाल का गुच्छ है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रीकृष्ण राधा के नाक में जिस 'बाली' को पहनाते हैं, उसे बेसर या नासाभूषण कहते हैं। शुक्राचार्य कहते हैं कि मूर्तियों को आभूषण की तरह रेशमी, चर्म या सूती वस्त्र पहनाये जाते हैं। धोतीय और उत्तरीय नामके दो वस्त्र विशेषकर होते हैं। विष्णु, इन्द्र, कुबेर, आदि देवों की मूर्तियों को राजसी और शिव, ब्रह्मा, अग्नि आदियों को तपस्वी वस्त्र पहनाये जाते हैं। सूर्य तथा स्कंद (कार्तिकेय) आदि मूर्तियों को सैनिक का गणवेश पहनाया जाता है। उसे अस्त्र-शस्त्र से सजाया जाता है। स्कंद, सुब्रह्मण्यम्, षड्मुखम्, कुमार, ये सब कार्तिकेय के नामों के पर्याय हैं। दुर्गा, चंडी, लक्ष्मी, सरस्वती, आदि महादेवियों को उच्च वर्ण की महिलाओं जैसी वेशभूषा पहनाई जाती है। वे बहुविध रत्नालंकारों से सुशोभित होती हैं।

प्रतिमाओं के पीछे मुख को वलयित किये हुए आभामण्डल, प्रभामण्डल, प्रभावति या शिरचक्रम् होता है।

देव प्रतिमाओं के भूषाविन्यास सामान्यतः तीन विभाग में विभाजित किये जा सकते हैं: विष्णु, इन्द्र, कुबेर आदि देवों की मूर्तियों को राजसी वस्त्र और शिव, ब्रह्मा, अग्नि आदियों को तपस्वी वस्त्र पहनाये जाते हैं।

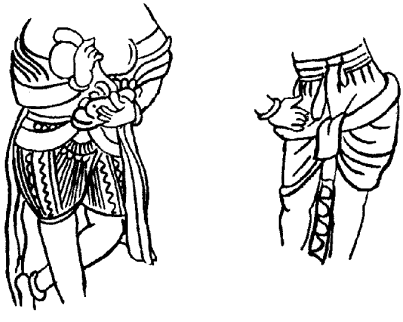

कटिसूत्र–उरुदाम, मुक्तदाम

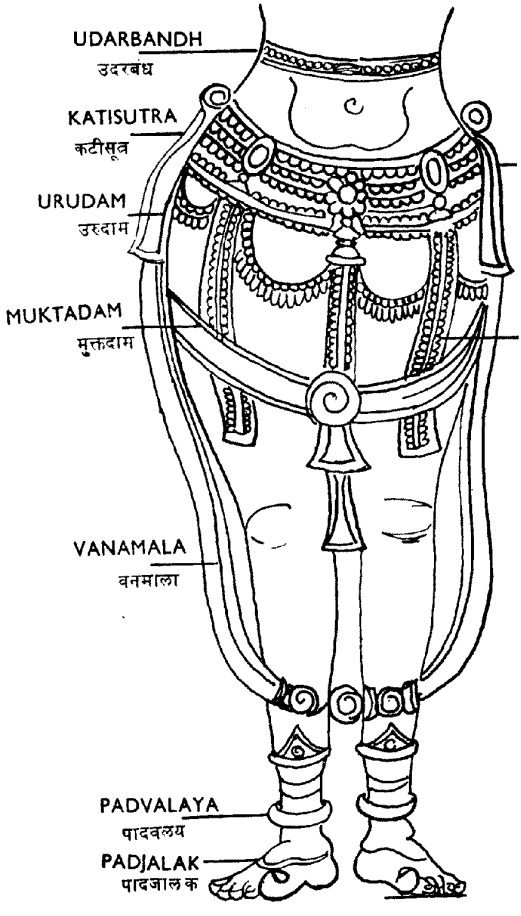

१. परिधान
२. अलंकार
३. शिरोभूषण

सूर्य की प्रतिमा को छाती का वस्त्र और पैर में उपान (बूट) विशेष रूप से पहनाये जाते हैं। इससे सूर्य के पैर की उंगलियां दिखाई

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

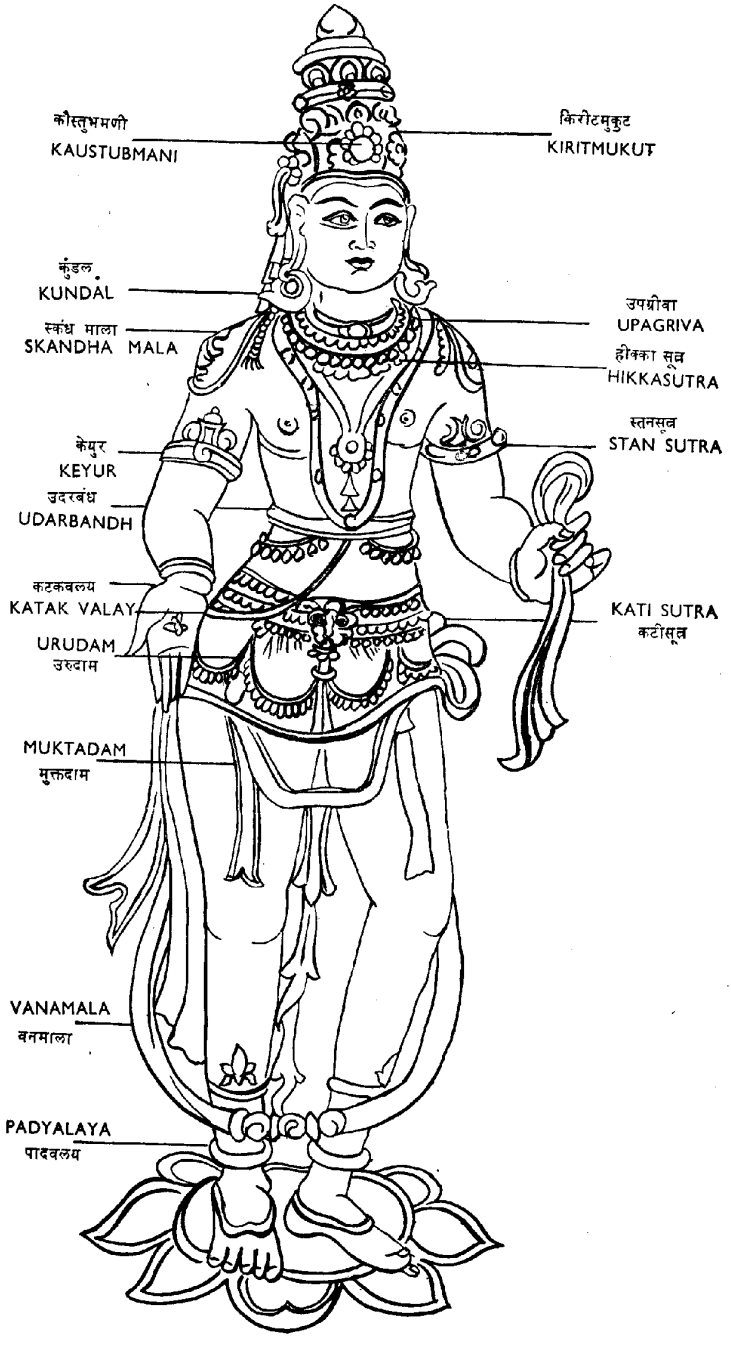

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नहीं देतीं। परन्तु सूर्य की किसी प्रतिमा में उपान न हो तो उंगलियां दिखाई देती हैं। सूर्य-पूजा के मध्य एशिया से भारत में आने की पूरी-पूरी संभावना है। पिछले काल की मूर्तियों में सूर्य के पैर में उंगलियां उत्कीर्ण की हुई मिलती हैं।

कार्तिक स्वामी स्कंद द्रविड में खूब पूजे जाते हैं। लेकिन उत्तर भारत में उनके स्वतंत्र मंदिर नहीं हैं। शिव के यह जेष्ठ पुत्र मध्य एशिया की ओर बसे हैं, ऐसा माना जाता है। इसीलिये स्कंद और सूर्य की छाती के वस्त्र की आकृति मिलती-जुलती है।

दिगंबर या श्वेतांबर जैन संप्रदायों की बैठी हुई या खड़ी मूर्तियों में वस्त्र, अलंकार-आभूषण नहीं होते हैं। कारण वे वीतराग हैं। श्वेतांबर मूर्ति को सिर्फ़ लंगोट-कच्छ होता है। उस संप्रदाय की मूर्तिया तुरंत पहचानी जा सकती हैं।

आभूषण तथा अलंकारों में प्रान्त और काल भेद से वैविध्य मिलता है। व्याघ्रचर्म, मृगचर्म और कृष्णमृगचर्म भगवान शंकर कटि प्रदेश में धारण करते हैं।

प्रत्येक युग की कला अपनी-अपनी विशेषताएं व्यक्त करती है। गुप्तकाल की मूर्तियों में माला, मुकुट, मकर मुखी से विभूतषि आभूषण, कंठ में स्थूल मुक्त–कलाप से निर्मित एकावली माला, उसके मध्य में इन्द्रनील, कानों में ताटंक–चक्र, नागेन्द्र या मुक्ता-फल जड़ित कुंडल, स्कंध पर उपवस्त्र (जैसे मेखला स्थान में बांधे हुए), इनसे गुप्तकालीन लोकसंस्कृति का परिचय मिलता है। यह उस काल की कला को व्यक्त करता है।

सांची की कला में प्राकार वज्र का तोरण, स्तंभों के शिल्प में कुंडल, जो सामने से देखने से चारों ओर ठोस और भरी होता है। वे स्त्री-पुरुषों के कान में दिखाई देते हैं।

कुषान काल में पान के पत्ते की आकृति वाले मुकुट, भुजाओं में नाचते मोहिनी आकृति से अलंकृत मयूर-केयूर, यह उस युग की विशेषता है।

कर्णाटक प्रदेश के होयसूल राज्यकाल के मंदिर हलेबीड, बेलुर और सोमनाथपुरम् के मंदिरों की मूर्तियों के आभूषण उस प्रदेश की कला की भिन्नता दिखाते हैं। वहाँ की मूर्तियों के आभूषण मानो भार से लदे हुए हों, इस तरह उत्कीर्ण किये गये हैं। देवताओं के मस्तक के ऊपर का मुकुट देव के मस्तक से वजनदार और चौड़ा दिखाई देता है। अलबत्ता, वहाँ का शिल्प इतना सुंदर होता है कि प्राथमिक दृष्टिपात में यह दोष दिखाई नहीं देता। देवांगनायें भी स्थूल दिखाई देती हैं, पर होती है बड़ी सप्रमाण। प्रत्येक मूर्तिके ऊपर और आगल-बगल बेल वृक्ष के पत्ते आदि कंडारे होते हैं।

द्रविड मे तांजोर प्रदेशकी मूर्तियों का मुकुट मुखकी उंचाई से दुगुणा उंचा होता है।

इस तरह कला के अलंकार-निरूपण का विविध दृष्टिकोनों से तथा संपूर्ण सामग्री के साथ अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंङ्ग : एकादशम्

आयुध (Weapons)

उत्तर भारत के 'नागरादि' शिल्प ग्रंथों में ३६ प्रकार के आयुधों के नाम, लक्षण, मान-प्रमाण और स्वरूपों का वर्णन किया गया है। 'अपराजितसूत्र'–२३५ और द्रविड शिल्पग्रंथों में आयुधों के बारे में इतना स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता है। द्रविड 'शिल्परत्नम्' के २३ वें अध्याय में आयुधों के अपूर्ण नाम मिलते हैं।

आयुधों में शत्रु-संहार के शस्त्र के उपरान्त जीव-प्राणी भी गिने जाते हैं। वाद्य और साधन-उपकरणों को भी तामस आयुध के अतिरिक्त आयुधों में गिना जाता है। इस तरह राजस्, और सात्विक आयुध और मनोरंजक-वाद्य भी आयुध में गिने जाते हैं।

३६ आयुधों में २३ शस्त्र तामस हैं, १३ सात्विक और राजस हैं। पुस्तक, माला, कमंडल, मुद्राएं, दर्पण, घंटा, सूचि-शृंग, हल, पान, कमल, फल, वीणा और शंख, यह सात्विक आयुध माने जाते हैं।

आयुधा नामतो वक्ष्ये नाम संख्यावलिक्रमात्
त्रिशूलच्छूरिका खड्ग खेटा खट्वांङ्गकं धनुः ॥१०॥
बाणपाशांकुश घंटारिष्टि दर्पण दंडकाः
शंख चक्र गदा वज्र शक्तिमुद्गरभृशुंडयः ॥११॥
मूसलः परशु श्वेत कर्तिका च कपालकम्
शिरः सर्प च शृङ्गं च हलः कुंतस्तथैवच ॥१२॥
पुस्तकाक्ष कमंडलु शुचयः पद्मपत्रके
योगमुद्रा तथा चैव षट्त्रिंशच्छत्रंकाणिच ॥१३॥ अपराजित सूत्र (२३५)

विश्वकर्मा कहते हैं, 'अब मैं आयुधों के नाम क्रमशः कहता हूः

१. त्रिशूल	१०. घंटा	१९. भुइजर	२८. हल
२. छूरिका	११. रिष्टि	२०. भृशंडी	२९. कुंत (भाला)
३. खड्ग	१२. दर्पण	२१. मूशल	३०. पुस्तक
४. खेट (ढाल)	१३. दंड	२२. परशु	३१. माला
५. खटवांग	१४. शंख	२३. कर्तिका	३२. कमंडल
६. धनुष	१५. चक्र	२४. कपाल(खोपरी-खप्पर)	३३. सूचि (सखा)
७. बाण	१६. गदा	२५. शिर(शत्रु का)	३४. पत्र–कमल
८. पाश	१७. वज्र	२६. सर्प	३५. पानपात्र
९. अंकुश	१८. शक्ति	२७. शृंग (सिंग)	३६. योगमुद्रा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

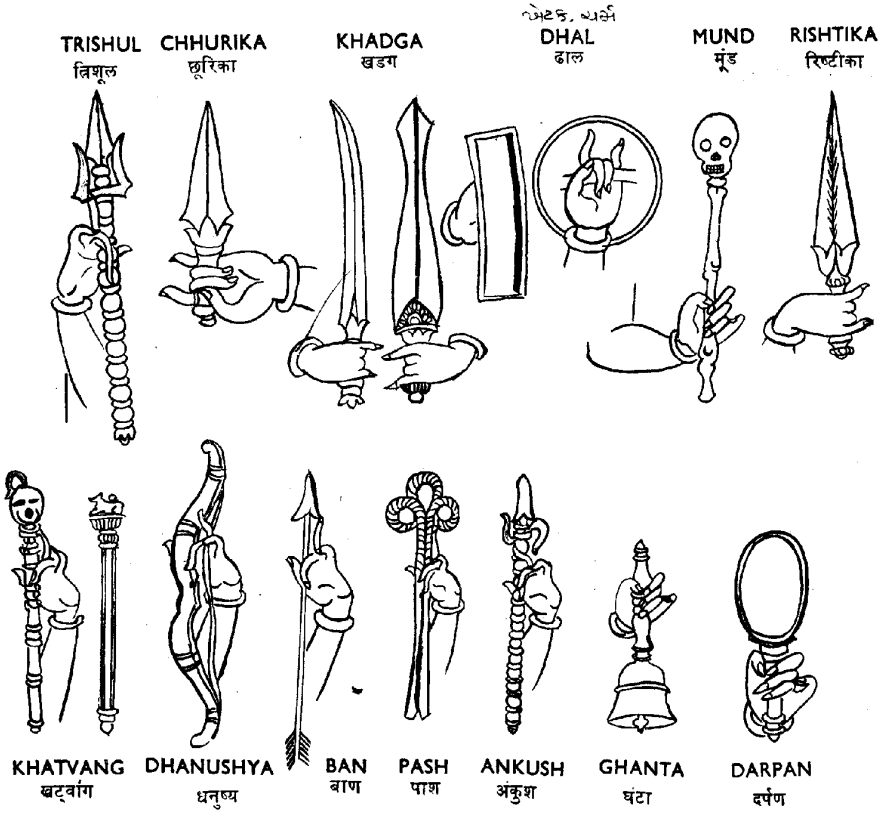

यहाँ ग्रंथकार ने आयुधों के स्वरूप और मानप्रमाण के २४ श्लोक दिये हैं। इन ३६ आयुधों के उपरांत १६ आयुध मूर्तिशास्त्र के प्राचीन ग्रंथों में प्रतिमाओं के स्वरूप वर्णन में दिये गये हैं।

तामस आयुध के चार प्रकार हैं :

१. पट्टिश
२. टंक
३. अग्नि
४. प्राणीजीव (मृग, कुक्कुट, नकुल–सियाल, सर्प)

साधन उपकरण के सात प्रकार हैं :

१. आम्रलुंबी
२. ध्वजा
३. कंबा (गज)
४. सूत्र–दोरी
५. मोदक
६. फल–मातुलिंग
७. लेखिनी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

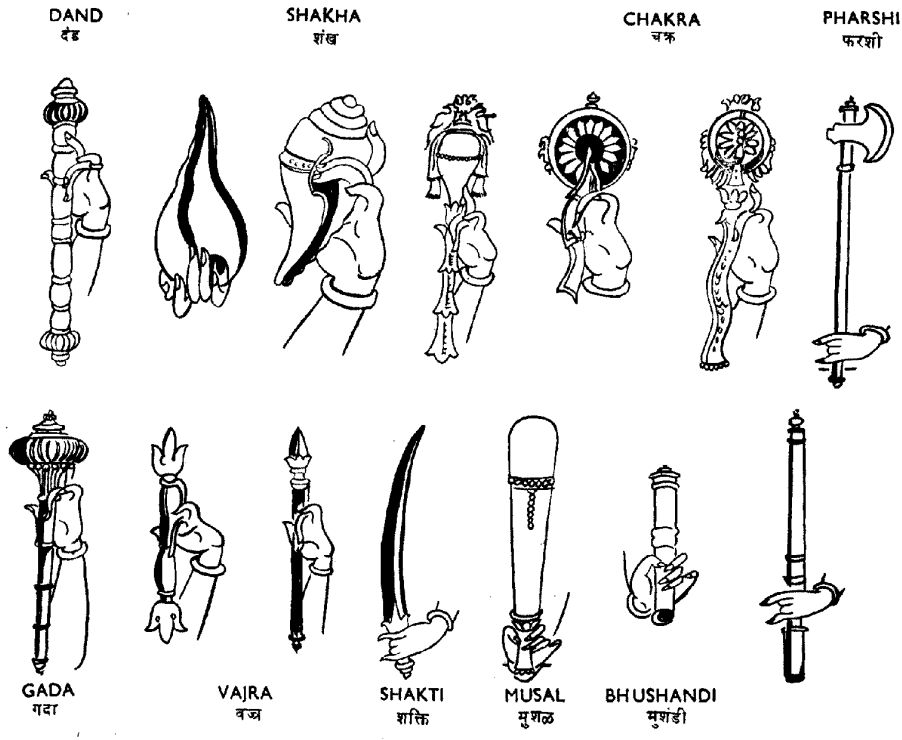

राजस् (वाजित्र) के आयुध पांच हैं :

१. डमरु
२. वंशी
३. भेरी
४. ढोलक
५. वीणा

उपरांत बालक मिलकर कुल (३६+४+७+५+१) =५३ आयुध होते हैं।

दो आयुधों के स्वरूप के बारे में थोड़ा मतभेद है। विविध प्रतिमाओं का बारीक तलस्पर्शी निरीक्षण करने के बाद (३६+१७ +२=५५) यह सूची बनाई गयी है।

उत्तर भारत की अपेक्षा द्रविड प्रदेश की मूर्तियों की आयुध धारण करने की शैली अनोखी है। द्रविड प्रदेश की मूर्तियों में ऊपर के हाथ की दो उंगलियों में आयुध धारण किये होते हैं। जब कि उत्तर भारत की मूर्तियां विशेषतः मुट्ठी में आयुध धारण करती हैं।

आयुधों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

१. तीव्र संहार शस्त्र
२. वाद्य तंतु
३. जीव–प्राणी
४. सात्विक, राजस, साधन उपकरण

और इस प्रकार के तीन विभाग भी किये जा सकते हैं :

१. सात्विक
२. राजस
३. तामस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

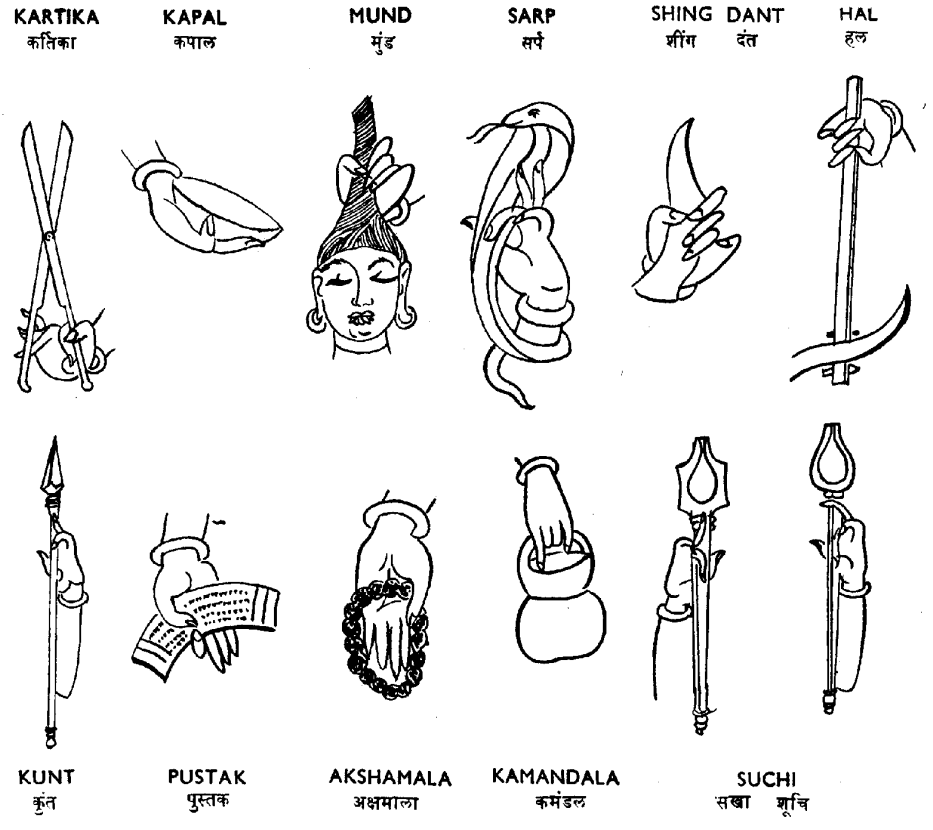

देवी-देवताओं ने अपनी प्रकृति के अनुसार आयुध धारण किये हैं। शुक्राचार्य ने इस विषय में कहा है कि देवों की मूर्तियों के परिचय के लिए यह आयुध प्रतीक के रूप में महत्त्वपूर्ण हैं।

रामायण महाभारत और पुराणों में वर्णित अग्न्यस्त्र, पाशुपतास्त्र, ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, अचकणय–संमोहनास्त्र, वायवास्त्र, इन सबको अस्त्र कहा जाता है। इनके द्वारा यंत्र[1] विद्या से अग्नि, बाण, जहरीला वायु उत्पन्न होकर, शत्रु या उनकी सेना का संहार करता है। अर्वाचीन समय में करोडों रुपये के व्यय से एक अणु-बम या हाइड्रोजन-बम तैयार होता है, और जैसा विनाश ये कर सकते हैं, उसी प्रकार का विनाश प्राचीन काल के ये अस्त्र यंत्र-शक्ति से कर सकते थे। वह विद्या भारत में थी। मंत्रशक्ति[2] से उत्पन्न होनेवाले संहारक को **अस्त्र** कहते हैं। शारीरिक बल से उपयोग में लिये जाने वाले धनुष, त्रिशूल, परशु आदि को **शस्त्र** कहा जाता है।

महर्षि भारद्वाज ने बहुत प्राचीनकाल में "यंत्रसर्वस्व"[3] नामक बड़ा ग्रंथ लिखा था। उसमें अनेक यंत्रों के प्रकारों की रचनाएं, शस्त्र, विमान आदि विषयक प्रकरण थे। महाभारत काल में केवल "वैमानिक प्रकरण" बचा था। उस पर वदव्यास के शिष्य बोधायन ने वृत्ति लिखी है।[4]

---

१. यंत्रम–जिससे नियमन किया जाये, जिसे किसी निश्चित पात्र में निश्चित शब्दवक्षरों से साधा जाये।
२. मंत्रम्–जिससे देवों का आह्वान–स्तुति करके इच्छित वस्तु प्राप्त की जा सके।
३. तंत्रम्–जिससे देवों को चोड दिया जाये–तंत्रग्रंथों के आधार से उन्हें तंत्र कहा जाता है।
४. उसका थोड़ा अंश बचा है। उस अद्‌भुत और आश्चर्यजनक ग्रंथ की एक हस्तलिपि मेरे हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह में है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

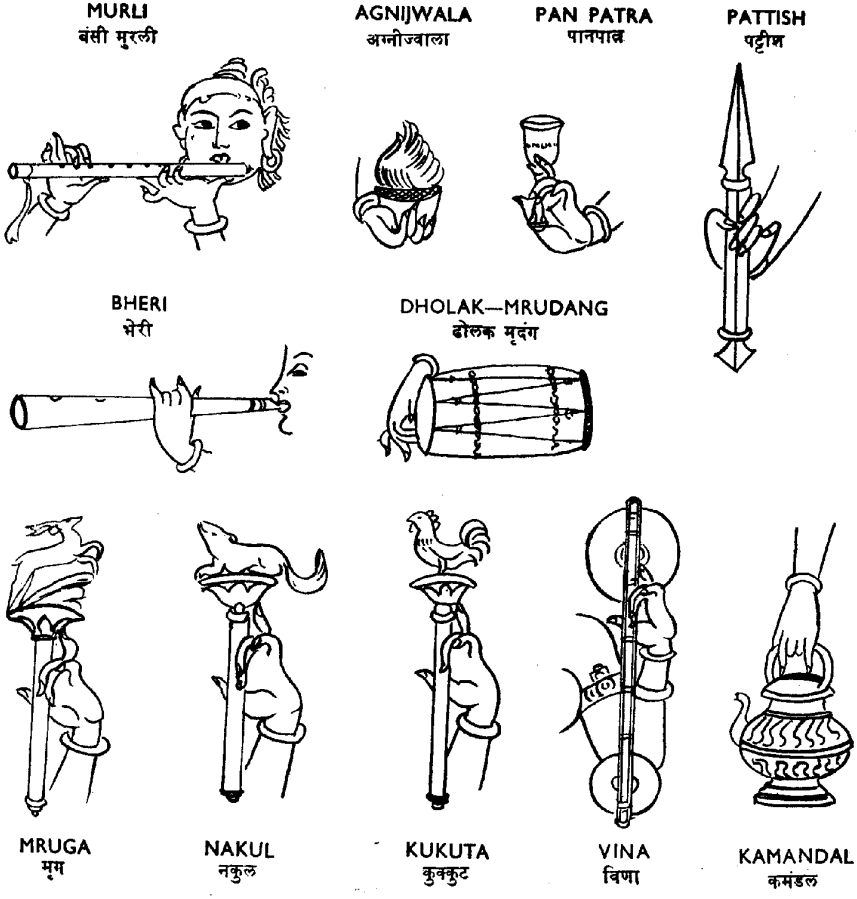

"अपराजित सूत्र" २३५ में आयुध के प्रकरण में प्रथम युद्धक्षेत्र पर शत्रु के शस्त्रों के प्रहार से रक्षण के लिए योद्धाओं को वज्रके देह जैसा कवच, लोहे के पतरे से बनाने को कहा गया है। द्रविड प्रदेशों में आयुधों को दैवी-शक्तिरूप मानकर उनकी प्रतिमाएं द्रविड मंदिरों में उत्कीर्ण पायी जाती हैं। आयुधों की मूर्ति-प्रतिमा के पाठ 'श्रीतत्वनिधि' ग्रंथ में दिये हैं।

विष्णु की गदा को कौमोदकी कहते हैं। उनके धनुष को सारंग कहते हैं। शिव के धनुष को पिनाक कहते हैं। इसलिए शिव को पिनाक-पाणि भी कहते हैं। शिव खोपड़ी का भिक्षापात्र धारण करते हैं। इसलिए उन्हें कापालिक या कपालभृत्य भी कहते हैं। पैर की हड्डी में से बनाये हुए खट्वांग के शिरोभाग पर मनुष्य की खोपड़ी बैठाई होती है। प्राचीन काल में अस्थि—हड्डी का उपयोग आयुध के रूप में होता था। जैसे, दधीची ऋषि ने देवदानव के युद्ध में देवताओं को अपनी हड्डियाँ शस्त्र-योग के लिए दी थीं।

पाश को फांसे के रूप में उपयोग में लिया जाता है। खेटक, चर्म आदि ढाल के पर्याय हैं। शक्ति का प्रयोग तलवार के अर्थ में भी होता है। दूसरी जगह एक वर्णन में उसे भाले के आकार का दैवी शस्त्र मानकर उसे फेंककर मारने का प्रयोग किया जाता है। पट्टिका लोह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

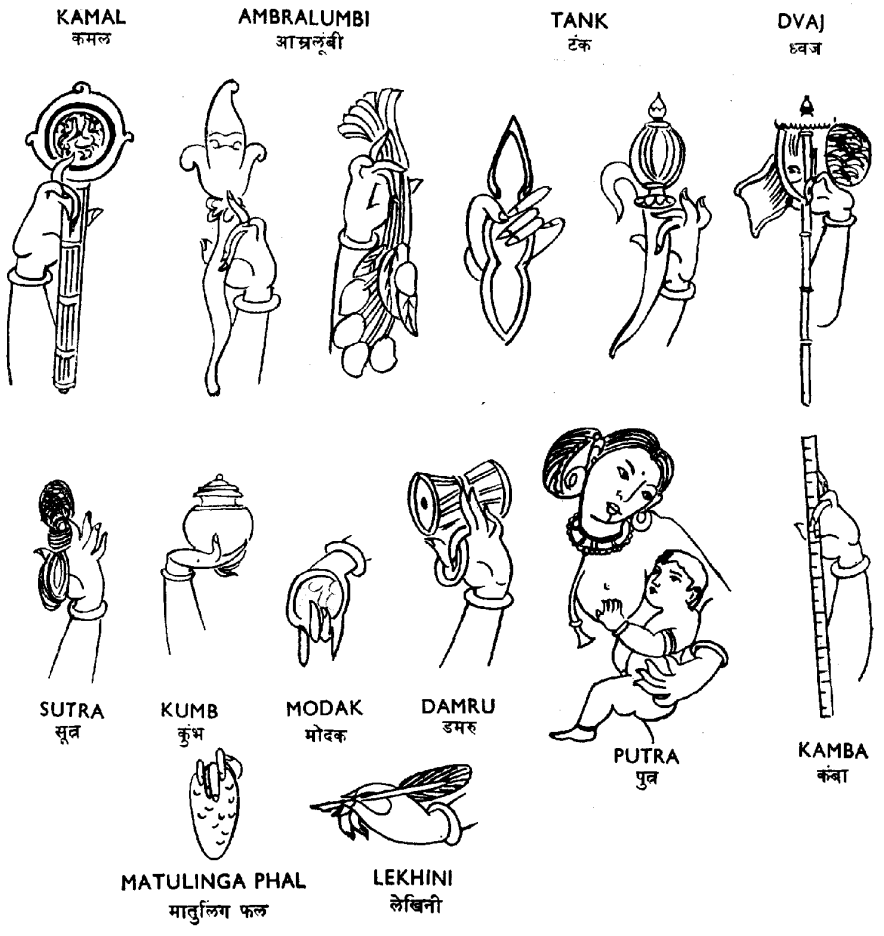

का शस्त्र है। वह लकड़ी जैसा होता है। उसके सिरे पर तीक्ष्ण धारवाला अस्त्र जैसा फल है, ऐसा वैजयन्तिकार कहते हैं। टंक का आकार लंबगोल होता है। उसे पत्थर में से बनाया जाता है। मुरली का दूसरा नाम वेणु या बाँसुरी है।

द्रविड शिल्प में मूर्तिशास्त्र और लिंग विषयक जानकारी सविस्तर दी गयी है। उसमें प्रतिमा के कौन से अंग विभाग में कौन-सा आयुध कितना उंचा दिया जाये, स्कंध के समकक्ष कौन-सा, कान नासिका और छाती के समकक्ष कौन-सा आयुध रखा जाये, इस सबका वर्णन किया गया है।

जैन ग्रंथ में एक जगह लिखा है कि अस्त्र-शस्त्र प्रतिमा के मस्तक से ऊंचा न होना चाहिये। लेकिन उनके इस सूत्र को पूर्ण रूपसे स्वीकृत नहीं किया गया होगा, क्योंकि प्राचीन काल की कई पुरानी मूर्तियां इस सिद्धांत के विरुद्ध भी मिलती हैं।

सोमेश्वरदेव (१४२७–३८) के काल के 'मानसोल्लास' में तथा 'शस्त्र विनोद' में, शस्त्रों का पर्याप्त वर्णन है।

चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में मैथिली भाषा में लिखे गये 'वर्ण रत्नाकर' ग्रंथ में ३६ प्रकार के आयुधों का उल्लेख किया गया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सन् १८१४ में रचित 'पृथ्वीचंद चरित्र' में भी ३६ दंडायुधों की सूची इस प्रकार है:

१. वज्र	१०. भाला	१९. शविस्ट	२८. काल
२. चक्र	११. भिंडमाल	२०. कणव	२९. राच
३. धनुष्य	१२. खेट	२१. कंपन	३०. पाश
४. अंकुश	१३. भूशंडि	२२. कर्तरी	३१. फल
५. खंग	१४. मुग्दर	२३. तलवार	३२. यंत्र
६. छूरिका	१५. अरब	२४. कुदाल	३३. द्रव्य
७. तोमर	१६. हल	२५. डुस्कोर	३४. दंड
८. कुंत	१७. परशु	२६. गदा	३५. लगड
९. त्रिशूल	१८. पट्टिश	२७. प्रलय	३६. कटारी

'आइने अकबरी' में शाही शस्त्रागार के हथियारों का वर्णन है। उसमें सोमनाथ पाटण में बनी हुई फ़ौलादी तलवार, जामदार और खटावा नाम की गुजराती कटारों का विशेष उल्लेख है।

१८ वीं शताब्दी में 'सुजात चरित्र' नामक ग्रंथ में देहली पर जाट लोगों के द्वारा किये गये लूट के आक्रमण के प्रसंग के वर्णन में हथियारों का सुंदर वर्णन है। उस काल के भानभेद से नामों में थोड़ी भिन्नता है।

राजकोट पुस्तकालय में नेपाल का धनुर्वेद संवत ५५७ का युद्ध कला का एक बड़ा ग्रंथ है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : द्वादशम्

परिकर (Decorative Frames)

मुख्य मूर्ति के आसपास सुशोभन-युक्त अलंकरण को परिकर कहते हैं। परिकर में मुख्य मूर्ति की पर्याययुक्त शिल्प-कृतियां उत्कोर्ण होती है। उसके उपरान्त अन्य अलंकृत शिल्पकृतियां उत्कीर्ण की जाती हैं। उदाहरण–चामरधारी स्त्री-पुरुष, द्वारपाल, अप्सरा, आदि।

विष्णु की मूर्ति के आसपास दशावतारयुक्त परिकर होता है। सूर्य की मूर्ति के चारों ओर नवग्रह-युक्त परिकर है। देवी की मूर्ति के पार्श्व में सप्तमातृका या नवदुर्गा के स्वरूप-युक्त परिकर होता ही है। जैन मूर्ति के परिपार्श्व में अष्टप्रतिहारी-युक्त परिकर होता है।

प्राचीन काल की पूजनीय मूर्तियों का तो परिकर होता ही है। प्रतिमा के मुख के इर्द-गिर्द के वर्तुलाकार तेजोमंडल को आभा-मंडल या प्रभामंडल कहा जाता है।

गुप्त काल की जैन प्रतिमा के परिकर में, परिकर की गादी (बैठक) सिहयुक्त होती है, मध्य में खड़ा धर्मचक्र और मृगयुग्म होता है, तथा ऊपर की ओर, इन्द्र, और प्रतिमा के मस्तक के दोनों ओर उड़ते गांधर्व-विद्याधर के स्वरूप होते हैं।

गुप्तकाल और बारहवीं शताब्दी में जैन परिकर, शिल्प-ग्रंथों के वर्णन के अनुसार शास्त्रोक्त पद्धति से विशेषतः होने लगे।

मत्स्य पुराण में परिकर का स्वरूप यों वर्णित है :

तोरण चोपरिष्टात्तु विद्याधर समन्वितम् ॥१३॥
देव दुंदुभि संयुक्तं गंधर्वमियुनान्वितम्
पत्रवल्ली समोपेतं सिंहव्याघ्र समन्वितम्
तथा कल्पलतोपेतंस्तुवाङि गरपरेश्वरैः ॥
एवं विधो भवेद् त्रिभागेणास्य पीठिका ॥

पूज्य प्रतिमा के परिकर के तोरण में विद्याधरों के रूप (मूर्ति) करने चाहिये। ऊपर की ओर देव-दुंदुभि के साथ गांधर्वयुग्म (जोड़ी) करनी चाहिये। दोनों ओर पत्रवल्ली के साथ सिंह-व्याघ्र और काल के रूप भी करने चाहिये। पूज्य मूर्ति के दोनों ओर परिकर में कल्पलता करनी चाहिये, और परिकर के अर्धभाग से पीठिका-सिंहासन करना चाहिये।

इस प्रकार परिकर बहुत प्राचीन काल से किये जाते रहे हैं। जैन परिकरों की रचना भी गुप्तकाल में ऐसी ही थी। उसके बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं। अभी प्रचलित और प्रवर्तमान परिकर की रचना तो ग्यारहवीं शताब्दी के बाद हुई होगी।

परिकर के कारण मूर्ति का सौंदर्य बढ़ता है। मूर्ति एकाकी या सूनी नहीं लगती। सामान्यतः मुख्य मूर्ति का ही अलंकृत परिकर, शास्त्रोक्त पद्धति से किया जाता है। लेकिन कई शिल्पी अन्य मूर्तियों का भी परिकर करते हैं, जिससे मूर्ति का सौंदर्य बढ़े।

सामान्यतः ऐसे परिकर में बाजू में दो स्तंभ, और ऊपर उनको जोड़ता सुंदर कलात्मक तोरण होता है। उपरान्त फूल, पत्ती, व्याघ्र, ग्रास आदि परिकर में किये जाते हैं।

ऊपर गांधर्व, किन्नर और अप्सराएं उड़ती हुई दिखाई जाती हैं। स्तंभ के पास नीचे चामरधारी दो सेवक बनाये जाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

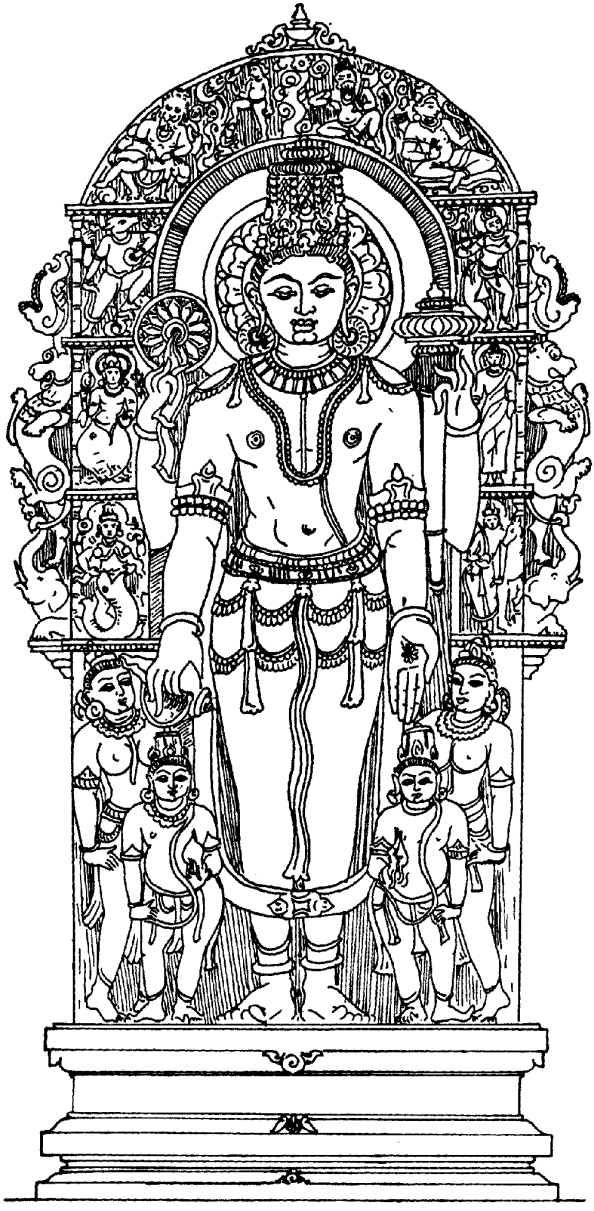

NARAYAH

दशावतार–परिकरयुक्त विष्णु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रामपंचायन परिकरयुक्त मारुति

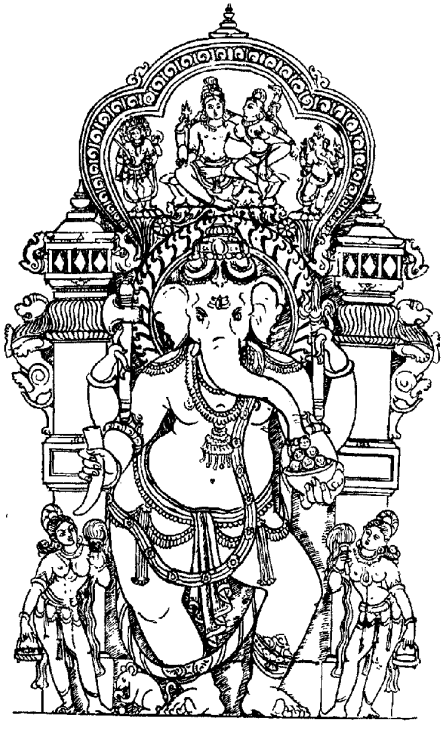

शीवपंचायन परिकरयुक्त विनायक

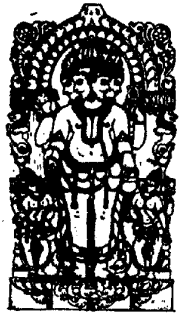

परिकरयुक्त ब्रह्मा

महिषासुरमर्दिनी

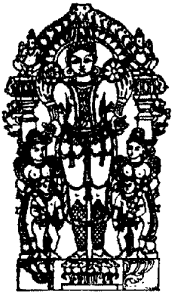

परिकरयुक्त सूर्य

परिकरयुक्त विष्णु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

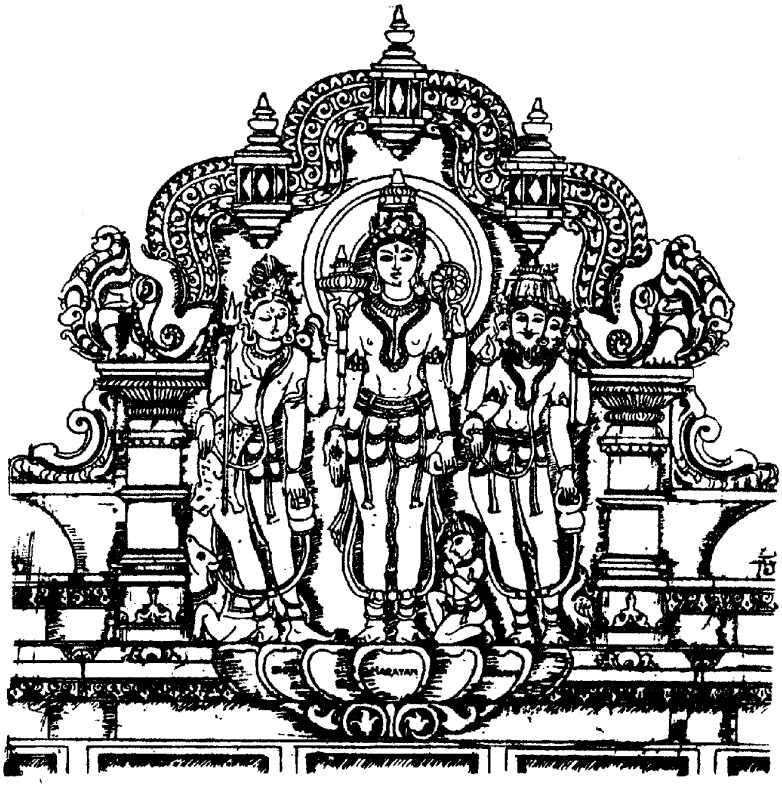

शिव विष्णु ब्रह्मा

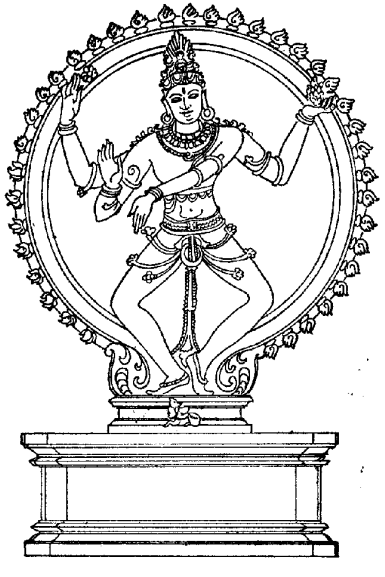

शिवतांडव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

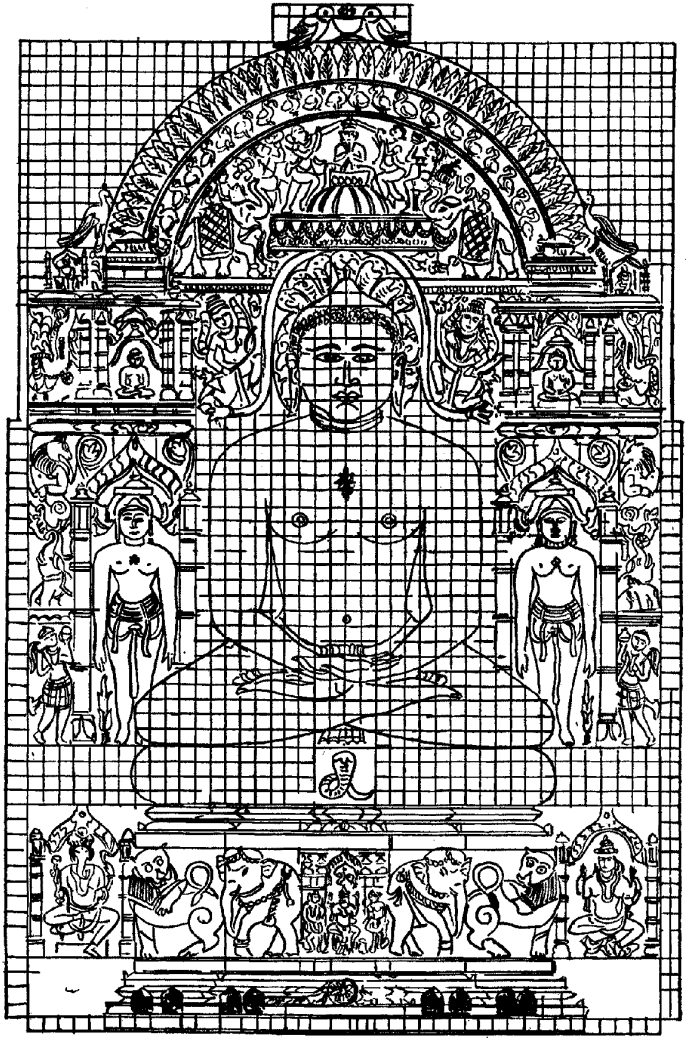

जिन परिकर

कभी-कभी छोटी-छोटी सुंदर, अलंकृत अप्सराएं भी शिल्पित की जाती हैं। उदाहरणतः गणेश की मूर्ति के दोनों ओर, सेवक की जगह, अपेक्षाकृत छोटे कद की उनकी पत्नी रिद्धि तथा सिद्धि उत्कीर्ण की जाती हैं।

स्तंभ के ऊपर के भाग में व्याघ्र या ग्रास शिल्पित किये जाते हैं। कई बार मगर के मुख भी आँके जाते हैं।

देवी-देवताओं की मूर्तियों के बाद उनके पार्श्वचर वाहन, आयुध को परिकर की कला में स्थान प्राप्त हुआ है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : त्रयोदशम्

व्याल स्वरूप (Various forms of Vyala)

दक्षिण भारत के देवालयों में हम पैरों पर खड़े हुए सिंह जैसे प्राणी का विशाल कद का शिल्प देखते हैं। उसे 'व्याल' कहते हैं। दसवीं शताब्दी के 'ज्ञान रत्नकोश' नामक शिल्प-ग्रंथ में व्याल को 'वरालक' कहा गया है। गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थान के शिल्पी इसे 'विरालिका' कहते हैं। द्रविड़ प्रदेशों में उसे 'याली' या 'दाळी' के नाम से पहचाना जाता है। दक्षिण भारत के कई लोग उसे 'विराल' या 'विरालिका' भी कहते हैं।

'अपराजित सूत्र' के २३३ वें अध्याय में व्याल के स्वरूप वर्णित हैं। 'समरांगण सूत्रधार' में भी सोलह स्वरूपों का वर्णन है। दोनों ग्रंथों में आठ स्वरूप समान हैं और बाकी आठ एक दूसरे से भिन्न हैं। इसलिये दोनों ग्रंथों के कुल स्वरूप (१६+८) चौबीस होते हैं।

'अपराजित सूत्र' में वर्णित सोलह स्वरूप इस प्रकार हैं: सिंह, हाथी, अश्व, नर, नंदी, मेंढ़ा, पोपट, सूअर, पाड़ा, चूहा, जंतु, वानर, हंस, कुक्कुट, मोर और तीन मस्तकयुक्त नाग।

'समरांगण सूत्रधार' में इस सोलह स्वरूपों से भिन्न जो आठ स्वरूप हैं, वे इस प्रकार है: हरिण, शार्दुल, शियाल, सांभर, श्वान, गदर्भ, बकरा और गिद्ध।

व्याल के ये चौबीसों स्वरूप शिल्प में सभी जगह देखने में नहीं आते। सिंह, गज, व्याघ्र, ग्रास, नर या मकरमुख के व्याल बहुत प्रचलित हैं। और वे बहुत-सी जगहों पर दिखाई देते हैं। अन्य स्वरूप शिल्प में कम मिलते हैं। जबकि वे चित्रकला में अधिक दिखाई देते हैं। व्याघ्र, ग्रास या मकरमुख व्याल शिल्पग्रंथों में वर्णित नहीं है, फिर भी शिल्पियों ने अपनी कल्पना से उसे पत्थरों में शिल्पित किया है!

व्याल का शरीर सिंह जैसा है। छोटे कदवाले उसके पैर हैं, और वह दो पैरों पर खड़ा होता है। उसके मुख की जगह वनचर, गायचर, पशु, पक्षी और मनुष्य का मुख उकेरा जाता है। व्याल के मुख में लगाम डाल कर उसकी पीठ पर सवार एक मनुष्य भी उकेरा जाता है। व्याल का एक पैर ऊंचा रहता है, उसके नीचे बहुधा ढाल, तलवार, भाला या अन्य शस्त्रधारी योद्धा का रूप उकेरा जाता है। कभी-कभी हाथी, वानर, स्वान आदि प्राणी, उसके पैर के नीचे छिपकर बैठे हुए भी उकेरे जाते हैं।

देवी-देवता या दिक्पाल आदि मूर्तियों की दोनों ओर की छोटी स्तंभिका पर भी विरालिका का स्वरूप उकेरा जाता है। कभी कभी मूर्ति की शोभा बढ़ाने के लिये परिवार की दोनों ओर व्याल उकेरे जाते हैं।

व्याल स्वरूपों के इस परंपरागत स्थान के अलावा देवालय की अन्य जगह पर भी शिल्पी अपनी सूझ के अनुसार अलंकार के रूप में ऐसे स्वरूप उकेरते हैं। जैसे कि वारिमार्ग (जलान्तर) में।

देवालय की बाह्य दीवार, जो मंडोवर कही जाती है, यहां व्याल स्वरूप पूरे कद में (लाइफ साइज) में शिल्पित मिलते हैं। मंडोवर के आंतरिक भाग और गर्भगृह के बाहर प्रदक्षिणा-मार्ग के स्तंभों पर भी ऐसे स्वरूप उकेरे होते हैं। दक्षिण भारत के दसवीं शताब्दी के मंदिरों में तो लगभग ८-१० फूट की ऊंचाई के बहुत से व्याल स्वरूप उकेरे हुए हैं। द्रविड़ प्रदेश के मंदिरों के विशाल प्रदक्षिणा मार्ग के दोनों ओर के स्तंभों की पंक्तियों में व्याल के आठ-दस फुट ऊंचाई के भव्य स्वरूप दिखाई देते हैं। उड़ीसा के राजारानी मंदिर में भी व्याल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

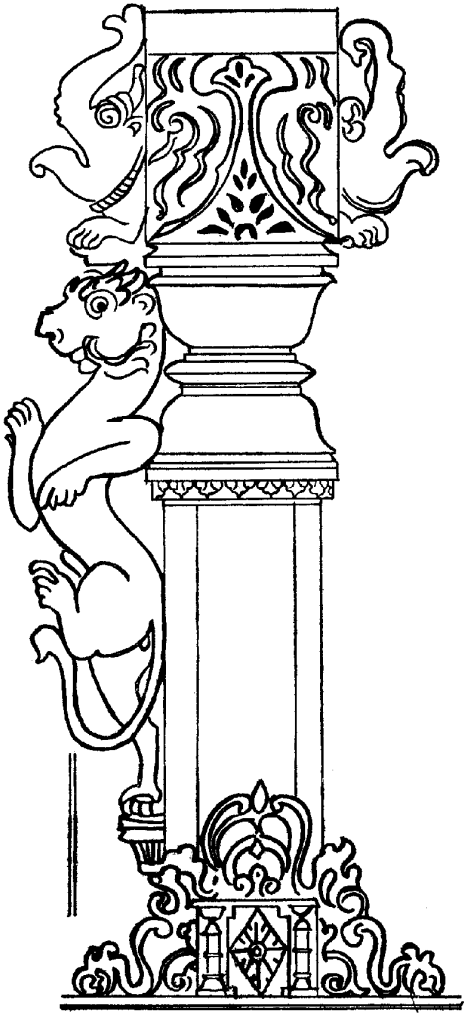

VIRALIKA
विरालिका

के विशाल स्वरूप हैं।

मंदिर की द्वारशाखा की अंतिम सिंहशाखों में व्याल के अनेक स्वरूप उकेरे जाते हैं। दसवीं शताब्दी के 'वास्तुविद्या' ग्रंथ में द्वार-शाखा की अंतिम शाखा को 'व्याल शाखा' ही कहा गया है। व्याल-शाखा के ऊपर घुड़सवार उकेरे होते हैं। बारहवीं शताब्दी के सोमनाथ मंदिर के उन्नत द्वार की सिंह-शाखा में बड़े कद के व्याल के अनेक भिन्न-भिन्न स्वरूप थे। उसके कई अवशेष अब भी वहां के म्यूज़ियम में मौजूद हैं। घुड़सवारी करते अनेक व्याल स्वरूप भी वहां हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

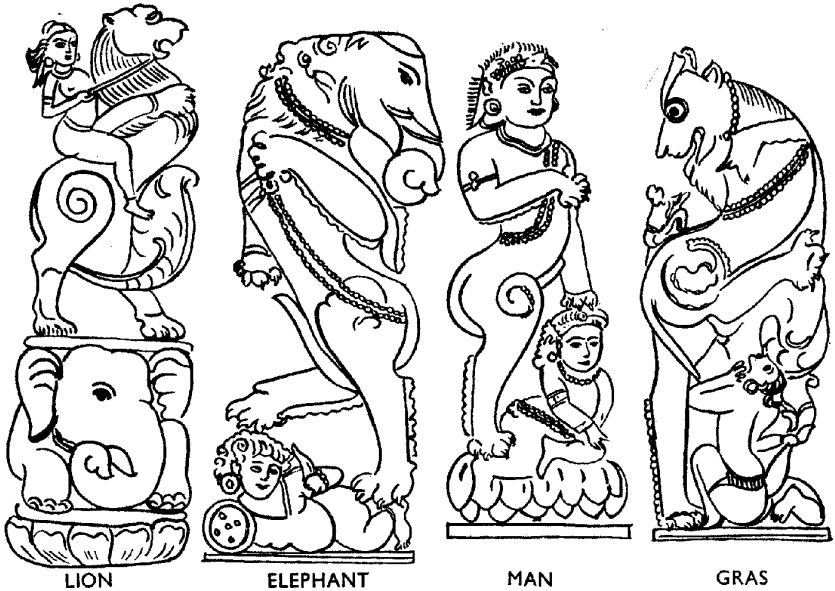

भारत में अनेक मंदिरों में ऐसे व्याल दिखाई पड़ते हैं। इ. स. पूर्व के अमरावती और सारनाथ के स्तूपों में गज और मकर व्याल भी दिखाई देते हैं। सौराष्ट्र के जूनागढ़ से धारागढ़ दरवाज़े के नज़दीक की गुफा के मदल (बेकेट) में ईसा पूर्व की पहली या दूसरी शताब्दी का व्याल स्वरूप विद्यमान है। सौराष्ट्र में वढवाण के नौवीं शताब्दी के राणकदेवी के मंदिर में, दसवीं शताब्दी के कच्छ के कोटाई और केराकोटा के शिवालयों में, भद्रेश्वर के मंदिरों में, थान के मुनीबाबा के मंदिर में, त्रिनेत्रेश्वर के मंदिर में और सोलंकी युगीन मंदिरों की जंघा में और वारिमार्ग में ऐसे स्वरूप दिखाई देते हैं। गुप्तकाल की मूर्तियों के अलंकार में भी व्याल के स्वरूप दिखाई पड़ते हैं। मध्य प्रदेश में नौवीं शताब्दी के खजुराहो के मंदिरों में व्याल के बड़े भव्य स्वरूप शिल्पित हैं। सिंह के व्याल स्वरूप भुवनेश्वर और कोनारक में विशेष रूप से पाये जाते हैं।

सिंह जैसे शरीर के ऊपर अन्य प्राणी, पंखी या मनुष्य के चेहरेवाले यह व्याल स्वरूप कौतुक का विषय हैं। अश्व और गजमुख व्याल तो देखने में भी सुंदर दिखाई पड़ते हैं, लेकिन सर्पमुख व्याल भयानक लगते हैं। इसकी ऐसी रचना क्यों हुई, इसका कोई पता नहीं

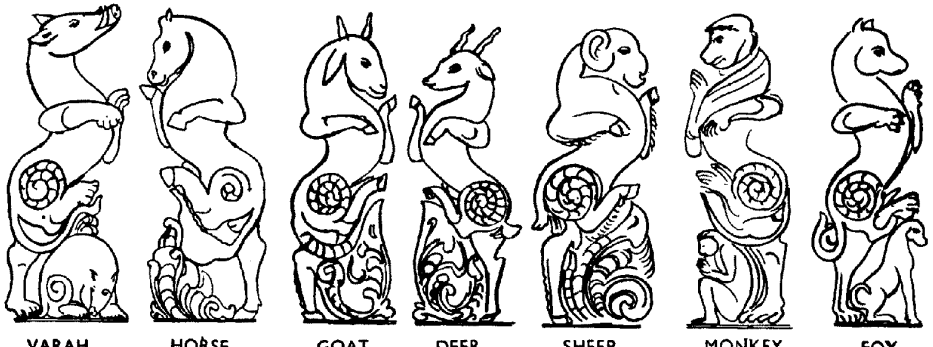

For Private And Personal Use Only

तोता PARROT | श्वान DOG | वराह VARAH | सिह LION

चलता। अनुमान किया जा सकता है कि भावक के मन में कौतुक के भाव जगाने के लिये या प्राणियों के स्वभाव का मिश्रण दिखाने के लिये या नवीन शिल्प-सौंदर्य की रचना करने के लिये व्याल की रचना हुई होगी।

ग्यारहवी बारहवी शताब्दी के द्रविड के चौल हयशाल मंदिरों में पीठ में सिह पर मुखों की पंक्ती को खोद गया है। नागरादि शिल्प के कामद पीठ की ग्रासपट्टी भी व्याल के एक स्वरूप का अंश है। कीर्तिमुख: और ग्रास व्याल के स्वरूप है। व्याल के कुलके स्वरूप जलचर प्राणी हैं। व्याल समुद्री अश्व कहलाते है। अपराजितकारने त्रिभंग ललित कुंचित आलिढच प्रत्यालिढच शरीर मुद्रा का व्याल का स्वरूप निर्माण किया है। व्याल स्वरूप के बारेमें पुरातत्त्वज्ञ श्री मधुसूदन ढाकी ने लिखा है। उनके लेख का इसमे कुछ आधार लिया है।

वृषभ नंदी. OX | त्रय फण सर्प THREE HOOD SERPENT | मयूर. PEACOCK | हंस. SWAN.

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : चतुर्दशम्

देवानुचर, असुरादि अेकोनविंशती स्वरूप (Heavenly Followers and Asuras)

देवानुचर के कई प्रकार हैं। देवकोटि के बाद ऋषिकोटि और क्षेत्रपाल कक्षा के भी हैं। अनुचर कक्षा के पांच–हनुमान, यक्ष, यक्षिणी, पितृनाग, वेताल का उत्तर पूजन होता है। उसके बाद के चार उत्तरानुचर, विद्याधर, किन्नर, गंधर्व और अप्सरा देवांगना को मध्यम कोटि का माना गया है। देवताओं के तीन प्रतिस्पर्धी दानव, असुर और राक्षस को अधम कोटि का माना गया है। भूत, प्रेत, पिशाच, शाकिनी, ये चारों प्रेतयोनि के भटकते और लुप्त होते अधम योनि के जीव हैं। इनके सभी स्वरूप शिल्पग्रंथों में वर्णित हैं। मूल श्लोक के साथ उनके पाठ यहां दिये गये हैं।

देवों के अनुचर यक्ष, यक्षिणी, नाग, हनुमंत और बेताल की प्रतिमाओं का, फल की आकांक्षा से कई भाविक लोग मंदिर बाँधकर पूजन करते हैं। ६४ योगिनियों और ५२ वीर वेताल के भी मंदिर बाँधे हुए मिलते हैं। मध्य प्रदेश में १० वीं शताब्दी का ६४ योगिनी का मंदिर और जबलपुर के पास ११ वीं शताब्दी का एक कलामय मंदिर देखने को मिलता है। १८ वीं शताब्दी के वेताल और वीर के मंदिर उत्तर गुजरात में, ऊँझा में, जीर्ण अवस्था में विद्यमान हैं। ऐसे मंदिरों की दीवालों पर देवों के प्रतिस्पर्धी दानवों, असुरों, राक्षसों और भूतप्रेतों की प्रतिमाएं भी उत्कीर्णित मिलती हैं। हालांकि इस प्रकार के मंदिर बहुत कम देखने को मिलते हैं, फिर भी इस

ऋषी
RISHI

नाग वासुकी
NAG VASUKI

किन्नर
KINNAR

यक्ष
YAKSHA

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विद्याधर–मालाधर
VIDYADHAR — MALADHAR

गांधर्व युगल
GANDHARVA—UGAL

यक्षिणी
YAKSHINI

हनुमंत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकार की मूर्तियाँ बनती थीं, इसके अनेक प्रमाण इस प्रकार के मंदिरों एवं शास्त्रों में मौजूद हैं।

भूत, प्रेत, राक्षस, असुर, दानव आदि की मूर्तियां गर्भगृह के कौन-से भाग में बैठायी जायें, इस संबंध में नागरादि शिल्पग्रंथों, द्रविड ग्रंथों और पुराणों में वर्णन मिलता है। शास्त्रोक्त विधि से उन मूर्तियों की पूजा होती थी, और उनके मंदिर भी बनते थे। यह १९ स्वरूप शिल्प और चित्रकर्म में रचने का आदेश प्राचीन शिल्प ग्रंथों में मिलता है।

जैन आगमों में प्राचीन देववाद के चार प्रधान वर्ग कहे गये हैं।

१. ज्योतिष (नौग्रहादि)
२. वैमानिक (इन्द्रादि देव)
३. भुवनपति (असुर और नाग–दो वर्ग में)
४. व्यंतर (जिसमें यक्ष, गंधर्व, विद्याधर, राक्षस, पिशाच, भूत आदि)

हिन्दू शास्त्रों के पौराणिक कथानकों में देवों के प्रतिपक्षी के रूप में दानवों, असुरों और राक्षसों को माना गया है। उनके बीच भयंकर युद्धों का वर्णन पुराणों में और रामायण तथा महाभारत में मिलता है। भूत, प्रेत, पिशाच, शाकिनी (डाकिनी), इन चारों का उल्लेख पुराणादि ग्रंथों में पाया जाता है। और शिल्पशास्त्रों में उनके स्वरूपों के वर्णन दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं :

१. ऋषिमूर्ति :

जटामुकुट कुर्चाय हस्ते दंडपुस्तकम्
यज्ञसूत्रोत्तरीयत्र त्वरूपंऋषिर्मूतिय ॥१॥

जटा धारण किये हुए, ऋषि के मुख पर दाढ़ी और हाथ में माला तथा पुस्तक है। वे यज्ञसूत्र-उपवीत और उत्तरीय-वस्त्र पहने होते हैं। ऐसा ऋषि का स्वरूप है।

२. हनुमंत :

हनुमंत महावीर पनोतीपादनिम्नकः
गदा पर्वत हस्तेन मुख वानर वा नर ॥२॥

श्रीराम के अनुचर महावीर हनुमंत पैर के नीचे पनोती को दबाकर खड़े हैं। हाथ में गदा और पर्वत धारण किये हुए हैं। उनका मुख वानर का (या नर का?) है। वे दक्षिण वायव्य में होते हैं।

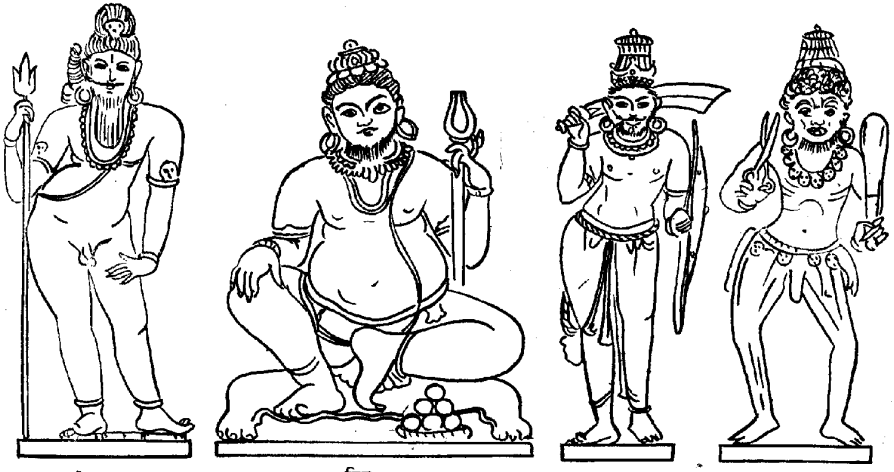

क्षेत्रपाल
KSHETRAPAL

पितृ
PITRU

दानव
DANAV

असूर
ASUR

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

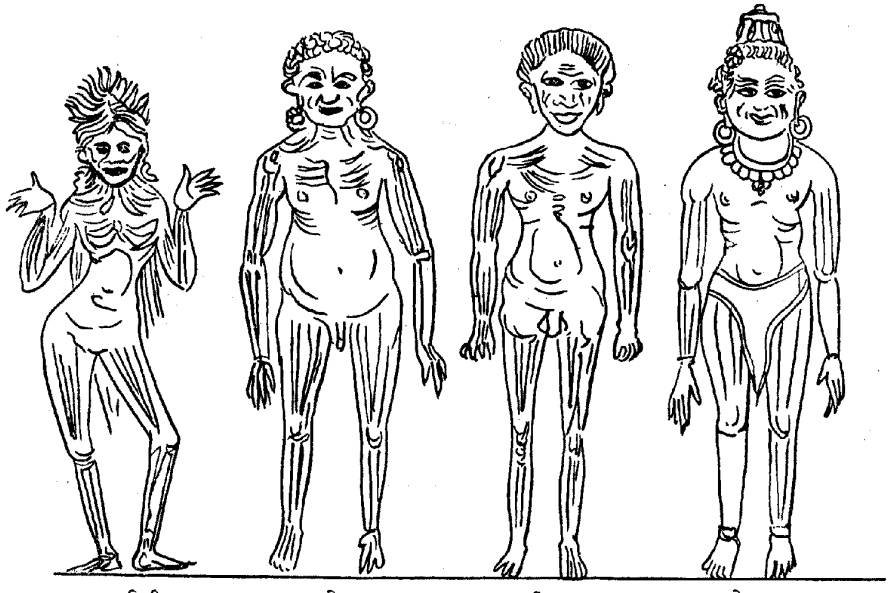

शाकिनी SHAKINI | प्रेत PRET | पिशाच PISHACHI | वेताल VAITAL

३. क्षेत्रपाल :

क्षेत्रपाल शूलवंत जटामुकुटकुर्चय
दिग्वासा निऋति देव कज्जल चल संन्निभम् ॥३॥

क्षेत्रपाल : त्रिशूल धारण किये हुए, जटामुकुट और दाढ़ीवाले निर्वस्त्र (नग्न), श्याम वर्ण के निऋति देव को नैऋत्य कोण के अधिपति समझा जाये।

४ यक्ष :

तुंदिला द्विभुजाकार्या निधिहस्त महोत्कटो ॥ मयसंगृहे

बड़े पेटवाले, दोनों हाथों में द्रव्य की थैली लिये हुए, यक्ष होते हैं।

५ पीतर :

पीतर पीतवर्णोम यज्ञसूत्रद्विभुजय
वाम जानु परिन्हस्ता सूचि दक्षिण हस्तायो ॥५॥ काश्यपे

वृद्ध पितृदेव पीत वर्ण के, यज्ञसूत्र धारण किये हुये, दो हाथ वाले हैं। उनका बायां हाथ पैर के घुटनों पर है, और दायें हाथ में यज्ञ की शरवा-सूचि है। (दोनों हाथों में नाग के आभूषण हैं, और भद्रपीठ पर बैठे हैं।)

६. नागस्वरूप :

द्विजिह्वा बाहव सप्तफणी समन्वितः
अक्षसूत्र धरा सर्वे कुंडिका पुच्छ संयुता ॥

दो जिह्वायुक्त, सप्तफणा और मणि के साथ, नाभि के नीचे सर्पपुच्छाधार और ऊपर पुरुषाकार हैं। उनके हाथ में माला और कमंडल है। (अन्य मत से खड्ग और ढाल भी है।)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनेक देव देवांङ्गना दिग्णलादि स्वरूप

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कलिङ्ग : ओरिसा के भुवनेश्वरमें राजराणीप्रासाद के पृष्ठभद्र के द्रश्य मंडोवर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

७. विद्याधर :

मालाविद्याधरव ।। इति विद्याधर, (आग्न्ये)

विद्याधर पुष्पमाला सहित आकाश में घूमते हैं। (आग्न्ये)

८. गांधर्व :

वरदो भक्तलोकाना किरीट कुंडलगदी
कार्यास्तुरूपगंधर्वो वीणा वाद्यन्यस्तथा ।।८।।

भक्त लोगों को वरदान देनेवाले, विष्णु आदि के गांधर्व युगल, किरीट-मुकुट धारण किये हुए, हाथ में वीणावाद्य लिये होते उडते है।

९. किन्नर :

वीणा हस्त किन्नरास्य ।। (आग्न्ये)

हाथ में वीणावाद्य धारण किये हुए किन्नर का स्वरूप है। अन्य जगह किन्नर का स्वरूप वर्णन करते हुए कहा गया है कि पशु जैसा उनका शरीर है। कमर के ऊपर के भाग में पुरुषाकृति है, मुख गरुड़ का है। और दो हाथ मुकुट-कमल रूप जुड़े हुए होते हैं।

१०. असुर :

किरीट कुंडल पेत स्तीक्ष्ण दंष्टा भयंकरा
नाना शस्त्रधरा कार्या दैत्यासुरगणाधिपः ।।१०।। शिल्परत्नम्

किरीट-मुकुट और कुंडलधारी, तीक्ष्ण दंतवाले, तथा अनेक भयंकर शस्त्रधारी, वे दैत्य और असुर गण के अधिपति हैं।

११. दानव :

दानवा विकृताकारा भृकुटिकूटिलानना।
किरीटेन च कुब्जेन मंडिता शस्त्र पाणवः।
नाना रूप महाकाय दंष्ट्रा करालवदना ।।११।। शिल्परत्नम्

विकराल स्वरूपवाले, वक्र भ्रमरयुक्त, किरीट-मुकुटधारी, कुबड़े मुखवाले, अनेक शस्त्र और आभूषणधारी, महाकाय, भयंकर मुखवाले दानव होते हैं।

१२. वैताल :

ईद्रक्ता एव बेताला दीर्घदेहाः कृशोदराः
पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेताल जातयः
निर्मांसाश्चैव ते सर्व रौद्रविकृत रूपिणः ।।१२।। शिल्परत्नम्

लंबी देहयुक्त, बैठे हुए पेटवाले वेताल होते हैं। पिशाच, राक्षस और भूत ये सब वेताल की जाति के ही हैं। वे सर्व मांसरहित, हड्डीयुक्त, देह के भयंकर विकृत स्वरूपवाले होते हैं।

१३ राक्षस :

रक्तवस्त्रधरा कृष्णा नखदीर्घाः सदंष्ट्रिका
कीर्तिखट्वांग हस्ताच राक्षसा घोररूपिणः ।।१३।। मयदीपिका

वे लाल वर्ण के वस्त्रों से युक्त, श्याम वर्ण के देहवाले, लंबे नखवाले और भयंकर स्वरूपवाले होते हैं। उनके हाथों में कीर्ति और खट्वांग होते है। राक्षस ऐसे घोर रूपवाले होते हैं।

१४. भूत :

भूतास्तथव दानवाश्च दीर्घवक्त्रा पिशाचका
निर्मांसा कृशोदरा रौद्र विकृतरूपिणः ।। मयदीपिका

भूत, दानव और पिशाच के देह मांसरहित, केवल हड्डीवाले होते हैं। और इन सभी के मुख लंबे होते हैं। बैठा हुआ पेट और भयंकर रूप, यही भूतों का स्वरूप है।

१५. प्रेत : **महोदरा कृशाङ्गाश्च रौद्र विकृतानना ।।१५।।**

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रेत बड़े पेटवाले, दुर्बल शरीर वाले, भयंकर विकृत देहवाले और लंबे मुखवाले होते हैं।

१६. पिशाच : **उत्पर्व कृशकायास्ते चर्मास्तिस्नायु विग्रह**
ह्रस्वकीर्ण शिरो जास्यु दीर्घ वक्रा पिशाचका ॥१६॥ शिल्परत्नम्

फूला हुआ नाक, गठीली हड्डियां और चमड़ी। हड्डियां और स्नायु दिखाई दें, ऐसे दुर्बल देहयुक्त, कम और घने बालवाले, तथा लंबे मुखवाले पिशाच होते हैं।

१७. अप्सरा - देवांगना : **पिङ्गाक्षास्यु महारम्या रूपिणोप्सरसः ॥१७॥**

पीली आंखोवाली, महासुंदर रम्य रूपवाली अप्सराएँ होती हैं।

१८. यक्षिनी : **॥ यक्षिण्या स्तब्धदीर्घाक्ष ॥**

स्तब्ध दृष्टियुक्त और लंबी आंखोंवाली यक्षिनी होती है।

१९. शाकिनी : **॥ शाकिनी वक्र द्रष्टव्या ॥**

तिरछी दृष्टिवाली शाकिनी होती है।

२०. शिल्पालंकार पंचजीव : **अथ कीर्तिमुखायासि ग्रास मकर संस्थिते**
विशली विलोल जिव्हा पंचधा परिकीर्तिता ॥२०॥

अप्सरा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिल्प कर्म में अलंकृत पंचजीव इस प्रकार हैं :

१. कीर्तिमुख, २. नाग, ३. ग्रास, ४. मकर, ५. विरालीं. यह पांच जीव-प्राणी शिल्पकृति के अलंकार रूप माने जाते हैं।

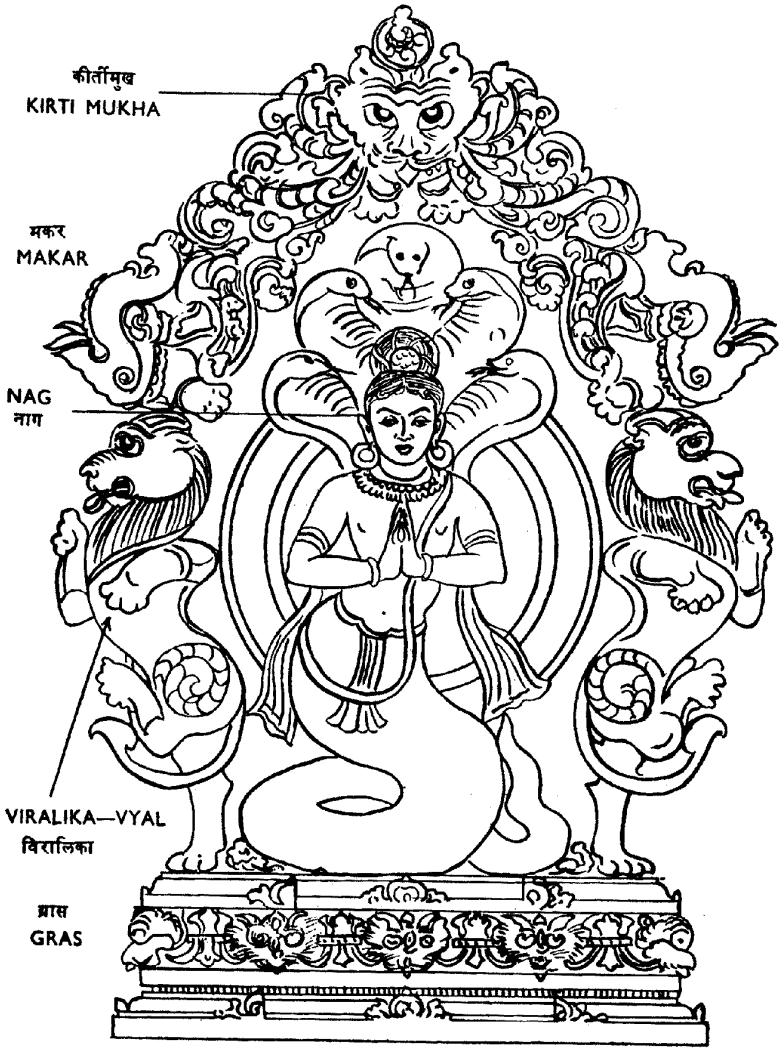

शिल्पालंकार पंचजीव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : पंचदशम्

देवांगना स्वरूप (Forms of Devanganas)

देवांगनाओं (देवकन्या, नृत्यांगना, अप्सरा स्वर्णनिवासिनी) के स्वरूप, पश्चिम भारत के 'नागरादि' शिल्पग्रंथों में स्पष्टता से वर्णित हैं। द्रविड शिल्पग्रंथों में मूर्तिशास्त्र विषयक बहुत सुंदर वर्णन मिलते हैं, परंतु, उसमें देवांगनाओं के बारे में उल्लेख नहीं है। यह आश्चर्य की बात है। वेसर जाति के मैसूर राज्य के हलिबेड, बेलूर और सोमनाथपुरम् के सर्वोत्तम प्रासादों में देवांगनाओं के स्वरूप प्रत्यक्ष-स्तंभ पर उत्कीर्ण हुए मिलते हैं।

खुशी की बात यह है कि पूर्व भारत के उड़िया (उड़ीसा) के शिल्पग्रंथों में, 'शिल्प प्रकाश' नामक ग्रंथ में, १६ प्रकार की देवांगनाओं के स्वरूप तथा उनके लक्षण, नाम आदि के बारे में वर्णन मिलते हैं। और वे उड़ीसा के और भुवनेश्वर, पुरी, आदि के शिल्प-स्थापत्य में दृष्टिगत होते हैं।

जिसे हम देवांगना कहते हैं, उसे उडीया में अलस्या–आलस-कन्या–कहते हैं।

शिल्पशास्त्रों में ३२ देवांगनाओं, नृत्यांगनाओं तथा अप्सराओं के वर्णन मिलते हैं। कई ग्रंथों में २४ देवांगनाओं के वर्णन हैं। इन सबके नाम भिन्न-भिन्न ग्रंथों में अलग-अलग दिये गये हैं। लेकिन कई नाम सामान्य होने के कारण, ३२ स्वरूपों के वर्णन तो मिलते ही हैं। वृक्षार्णव, क्षीरार्णव और प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में कई नाम भिन्न बताये होने के कारण, कई देवांगनाओं के और भी नाम मिले हैं। निःसंदेह, हस्त, मुख और रूप-लक्षण में भिन्नता होने के कारण ही उन्हें अलग नाम दिये जाने की संभावना पायी जाती है। जो नऊ नामों में फर्क है, वह इस प्रकार है:

१. शुभायिनी	– शुभांगिनी	६. मोहिनी	– मंजुघोष, विजया
२. गूढ़शब्दा	– पद्मनेत्रा	७. उत्ताना	– चंद्रवक्त्रा
३. चित्ररूपा	– चित्रवल्लभा, पुत्रवल्लभ	८. तिलोत्तया	– त्रिलोचन कामलया
४. भावमुद्रिका	– भावचंद्रा, भुजपोषा	९. रंभा	– उत्तान
५. मानवी	– माननी		

ब्रह्मा, विष्णु, शिव और जिन आदि देवों के मंडप और मंडोवर वितान आदि में उपर्युक्त ३२ देवकन्याएं नृत्य करती दिखाती है। ईशान कोण से प्रदक्षिणाकार देवकन्याओं के स्वरूप इस प्रकार क्रमशः उत्कीर्ण करने चाहिए ऐसा विधान किया है।

३२ देवकन्याओं के नाम – क्रमशः

१. मेनका	५. शुभगामिनी–शुभांगिनी
२. लीलावती	६. हंसावली
३. विधिविता	७. सर्वकला
४. सुंदरी	८. कर्पूर मंजरी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

९. पद्मिनी
१०. गूढ़शब्दा–पद्मनेत्रा
११. चित्रिणी
१२. चित्रवल्लभा (चित्ररूपा–पुत्रवल्लभा)
१३. गौरी
१४. गांधारी
१५. देवशाखा (देवज्ञा)
१६. मरीचिका
१७. चंद्रावली
१८. पत्रलेखा (चंद्ररेखा)
१९. सुगंधा
२०. शत्रुमर्दिनी
२१. मानवी (माननी, मानिकी)
२२. मानहंसा
२३. सुस्वभावा (सुस्वभावी)
२४. भावचंद्रा (भावमुद्रिका)
२५. मृगाक्षी
२६. उर्वशी
२७. रंभा (उत्तान)
२८. भुजघोषा (मंजुघोषा)
२९. जया
३०. विजया (मोहिनी)
३१. चंद्रवक्त्रा (उत्ताना)
३२. कामरूपा (तिलोत्तमा)

देवांगनाओं के स्वरूप लक्षण

१. मेनका :

मेनका षड्गखेटं च नृत्यति च पदस्तले

हाथ में खड्ग-ढाल धारण करके, बायां पैर ऊपर किये, नृत्य करती हुई मेनका।

मेनका लीलावती विधिचिता सुंदरी

२. लीलावती :

आलस्य च लीलावती

आलस्ययुक्त होती है लीलावती।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३. विधिचिता :

विधिचिता स्वदर्पण

हाथ में दर्पण लेकर मुखदर्शन करती या बिंदी लगाती हुई विधिचिता।

४. सुंदरी :

सुंदरी नृत्य मुक्ता च

नृत्य करती हो, वह सुंदरी है।

शुभकामिनी हसाउली सर्वकली कर्पूरमंजरी

५. शुभगामिनी -(शुभांगिनी):

शुभा कंटक (गृक) निर्गता

पैर का कंटक निकालती स्त्री। (शुभांगिनी)

६. हंसावली :

पाद शृंगार कर्त्री च हंसा कमल लोचना
गाथा उच्चारणा वाथ।। सर्व
पठान्तरः कर्ण शृंगार भूषिता

पैर का शृंगार करती हुई, झांझर पहनती हुई, कमल जैसे लोचनयुक्त, गाथा का उच्चार करती हुई होती है हंसावली।

७. सर्वकला :

नृत्यंति च सर्वकला वरदा दक्षा जणिज्ञ
मस्तके वामहस्ते च चिंतनमुद्रा संयुतम्

दायाँ हाथ वरदमुद्रायुक्त, बायां हाथ नृत्यमुद्रा में मस्तक पर रखकर नृत्य करती हुई होती है नृत्यांगना। (सर्वकला)

पाठान्तर :

ते सह भूआणा मध्ये धिषु धिषु धिग् धिग् जायति
परंपुर बहि चतुर्मुखे द्विव्य सुरनर नृत्यंति भावना सहजाम्

कई पुरानी प्रतियों में ऊपर जैसे बिना अर्थ के भी श्लोक हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

८. कर्पूर मंजरी :

नग्न भावे कृतस्नाना नाम्ना कर्पूरमंजरी

नग्न (या मग्न) भाव से स्नान करती या मग्न भाव से नृत्य करती हुई होती है कर्पूर मंजरी।

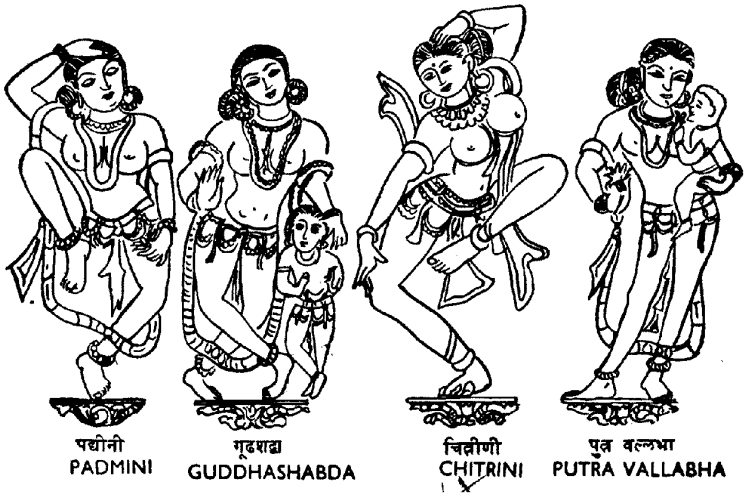

९. पद्मिनी :

पद्महस्ते च नृत्यांगी पट्टे पद्मं च पद्मिनी

बांये हाथ में पद्म लिये नृत्य करती हुई। कमल पद्म के पटवाली। (पद्मिनी)

१०. गूढ़शब्दा (पद्मनेत्रा) :

अभयदा शिशुयुक्ता पद्मनेत्रा-सा उच्चते

अभय मुद्रावाली, उसके कक्ष में बालक है। (ऐसी गूढ़शब्दा)

११. चित्रिणी :

कपाले वामहस्ता च नृत्यभावा च चित्रिणी

नृत्य भाव से जिसका बायां हाथ कपाल-मस्तक पर है। (ऐसी चित्रिणी)

१२. चित्ररूपा (चित्रवल्लभा, पुत्रवल्लभा) :

चित्ररूपा स पुत्रांगी

जिसने अपनी कमर पर पुत्र धारण किया है, वह। (चित्ररूपा पुत्रवल्लभा)

१३. गौरी :

गौरी च सिंहमर्दिनी

सिंह का मर्दन करनेवाली। गौरी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गौरी GUARI | गांधारी GANDHARI | देवशाखा DEVA SHAKHA | मरिचिका MARICHIKA

१४. गांधारी :

उत्तमांगे करन्यस्ता गांधारी नामनर्तिका

उत्तम अंगवाली, रम्य नृत्य करती हुई। गांधारी

१५. देवशाखा (देवज्ञा) :

गोलचक्रं नृत्यकर्त्री देवशाखा सा चोच्यते

गोलाकार (चक्र में) नृत्य करती अंगवाली। देवशाखा

१६. मरीचिका :

धनुर्बाणम्यं संधाता वामदृष्टि मरीचिका

बायीं ओर दृष्टि रखकर धनुष-बाण ताकती देवांगना। मरिचिका

चंद्रावली CHANDRAVALI | पत्रलेखा PATRALEKHA | सुगंधा SUGANDHA | शत्रुमर्दिनी SHATRUMARDINI

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१७. चंद्रावली :

अंजली बद्धा नर्तकी च चंद्रावली सुलोचना

सुंदर लोचनयुक्त, अंजली मुद्रावाली, सन्मुख दृष्टिवाली देवांगना । चंद्रावली

१८. पत्रलेखा (चंद्ररेखा):

दक्षिण हस्तकमले ताडपत्रं च धरित्रीका
ललाटे चंद्ररेखा च सनाम विस्तरे सदा

उसके दाहिने हाथ में लेखनी है, ताड़पत्र धारण करके लेखन करती है
तथा उसके ललाट में चंद्र की रेखा है, ऐसी सदा विस्तारवाली। पत्रलेखा

१९. सुगंधा :

सुगंधा च चक्रधर नृत्यं च कुर्वीत

चक्र को माथे पर धारण करके नृत्य करती देवांगना । सुगंधा

२०. शत्रुमर्दिनी :

असिपुत्र धरा नृत्या शोभते शत्रुमर्दिनी

हाथ में छुरी धारण करके नृत्य से शोभायमान। शत्रुमर्दिनी

मानंनी MANANI | मानहंसा MANAHANSA | सुस्वभावा SUSVABHAVA | भावचंद्रा BHAVCHANDRA

२१. मानवी (माननी):

हारहस्ता च नृत्यांगी मानवी कुल सुंदरी

दोनों हाथों में हार धारण करके नृत्य करती अंगवाली, कला की कुल सुंदरी । माननी

२२. मानहंसा :

पृष्ठ वंशोभ्दवा नृत्या मानहंसा च सुंदरी

अपनी पीठ दिखाकर नृत्य करती हुई, जिसका मुख पीछे रहता है, ऐसी नृत्यांगना । मानहंसा

२३. सुस्वभावा :

ऊर्ध्वपादे चतुर्भंगी स्वभाव करौ मस्तके

दाहिना पैर ऊपर रखकर, दो हाथ मस्तक पर रखकर, विविध अंग-भंग वाली नृत्यांगना । सुस्वभावा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२४. भावचंद्रा (भावमुद्रिका):

हस्तपादौ योगमुद्रा भावचंद्रा सुनर्तकी

हाथ-पैर योग-मुद्रायुक्त रखकर नृत्य करती हुई। भावचंद्र

MRUGAKSHI मृगाक्षी | URVASHI उर्वशी | RAMBHA रंभा | MANJUGHOSHA मंजुघोषा

२५. मृगाक्षी :

मृगाक्षी सकला नृत्या

सर्व कला से नृत्य करती हुई। मृगाक्षी

२६. उर्वशी :

दक्षहस्ते दैत्यशिखा दैत्यखंगन हन्ति च

दाहिने हाथ से दैत्य की शिखा खींचकर उसे खड्गसे मारती स्त्री। उर्वशी

२७. रंभा (उत्तान):

हस्तद्वयेत छूरिके धृत्या नृत्यं च कुर्वत
ऊर्ध्वीकृत दक्षपादं नाम्ना रंम्भा नर्तकी ॥

दोनों हाथ में छुरी धारण करके दाहिना पैर ऊपर रखकर नृत्य करती हुई। रंभा

२८. मुजघोषा (मंजुघोषा):

हस्तद्वयेन खड्गे च नृत्यावर्त च कुर्वीत
भुजघोषंति नाम्ना सा नृत्यं करोति सर्वदा ॥

दोनों हाथों में खड्ग धारण करके गोल भ्रमर-नृत्य करती नृत्यांगना। मुजघोषा

२९. जया:

शिरसि कलशं धृत्वा जयानृत्यं कुर्वीत।

मस्तक पर कलश धारण करके नृत्य करती हुई। जया

३०. मोहिनी (विजया):

पुरुषालिंगनयुक्ता मोहिनी नाम्ना नर्तकी।

पुरुष को आलिंगन करती हुई। मोहिनी

'मोहिनी' के अगले पाठ में इन्द्र और रंभा का स्वरूप कहा है। परंतु इस श्लोक के अंतिम पाठ के अनुसार 'मोहिनी' को पुरुष से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

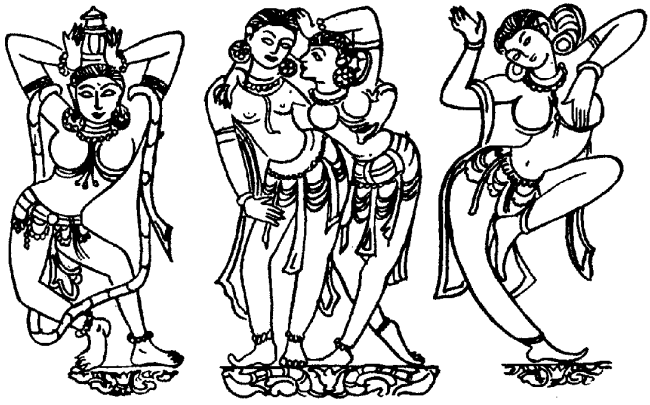

जया JAYA | मोहिनी MOHINI | चंद्रवक्रा CHANDRAVAKRA

आलिंगनबद्ध करने का विधान है। एक दूसरी प्रति में 'नरयुक्ता संमोहिनी', ऐसा स्पष्ट कहा है। हालांकि यहां मोहिनी स्वरूप के आठ भेद हैं, लेकिन वे भाव तो एक ही दिखाते हैं।

३१. चंद्रवक्रा (उत्ताना):

लसत्सुंदरांगी नृत्या चोर्ध्वपादा चंद्रवक्रा ॥

एक पैर ऊपर रखकर, लचीले अंग से नृत्य करती हुई। चंद्रवक्रा

३२. कामरूपा (तिलोत्तमा):

कास्य मंजिरा पुष्पबाण वाली कामरूपा तिलोत्तमा।

शंखवादिनी SHAKHAVADINI | केशगुफीणी KESH GUNPHANI | कामरुपा KAMRUPA

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अधोदृष्टि मताकार्या नृत्य भावेन नर्तकी
ज्ञायते सर्व लोकेस्मिन स्थूलदेहा (च) महीतले
एते जंघा वितानादौ दिव्यस्थाने चतुर्मुखे
दिग्पाला यक्ष गंधर्व भास्करादि ग्रहस्तथा ॥

श्लोक नं०–३३ :

सर्वलोक में जानी-पहचानी देवांगनाएँ पृथ्वी पर स्थूल देह में नृत्य-मुद्राओं में देखने को मिलती हैं। इन नृत्यांगनाओं की दृष्टि नीची रखनी चाहिए। प्रासाद के दिव्य स्थान में, चतुर्मुख प्रासाद के मंडोवर के जंघामंडप में, चौकी और गुम्बर-वितान आदि में दिग्पाल, लोकपाल, यक्ष, गांधर्व और सूर्यादि नौ ग्रह उत्कीर्ण करने चाहिए। जबकि मुनि, तापस, व्याल आदि के स्वरूप पानीतार (जलान्तर) में उरेहने चाहिए।

बन्सीवादिनी BANSIVADINI | बन्सीपात्रधारीनी BANSI PATRADHARINI | मृदंगवादिनी MRUDANGAVADINI

विणावादिनी VINAVADINI | खंजिरीवादीनी KHANJIRIVADINI | मंजिरावादिनी MANJIRAVADINI

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

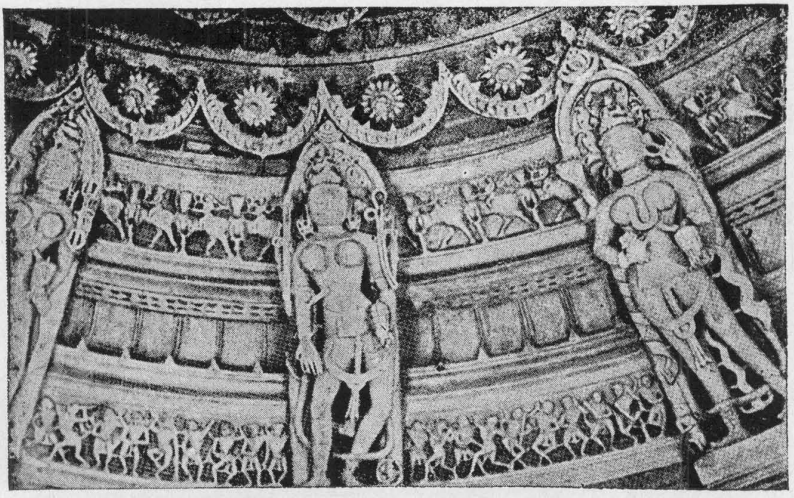

देवदेवाङ्गनादि : स्वरूप सहित कौल और गजतालु (घवालुं) के थरयुक्त वितान (गुम्बज)

मूर्तिनिर्माण कर्ता गुजरात के सुप्रसिद्ध शिल्पकलाविद श्री चंदुलाल भ. सोमपुरा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

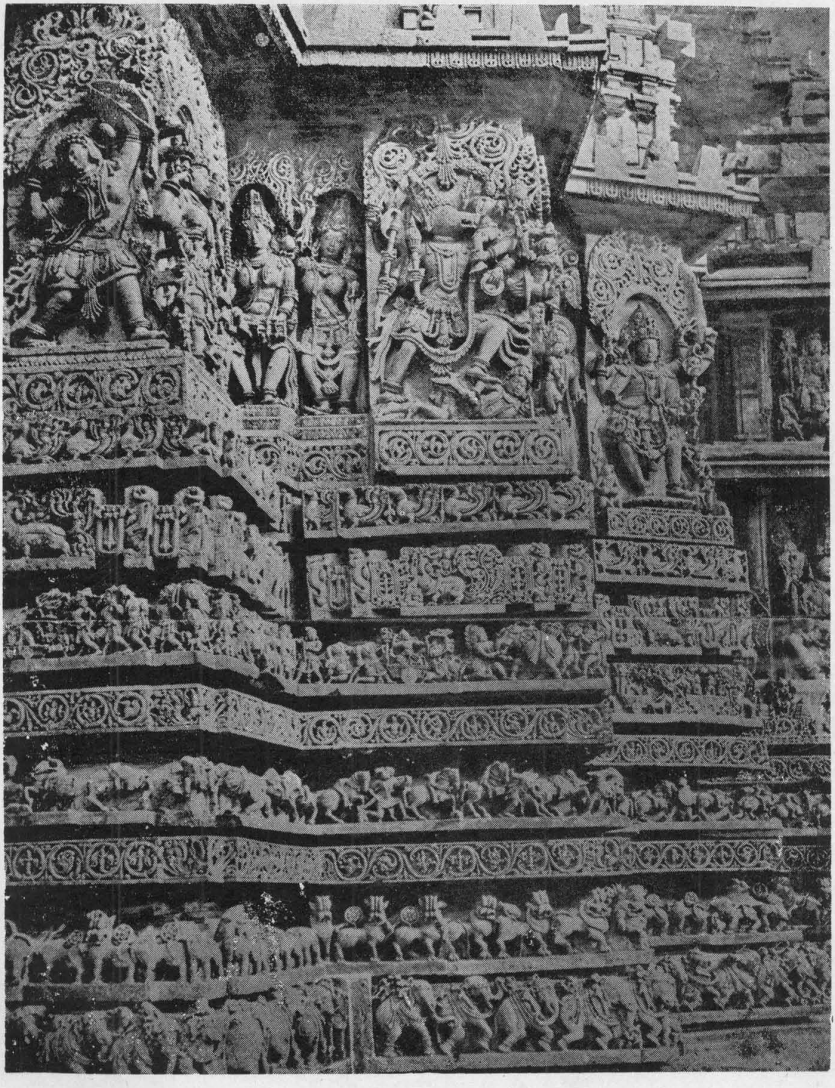

कर्णाटक-वेलुर के कलापूर्ण मंदिर के हस्त-अश्वगज सिंहयुक्त और देवस्वरूपयुक्त मंडोवर की जंघा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कांस्य मंजि बंशी वीणा शंख मृदंग खंजरी
विविधा वादित्र वश्या च खचित नृत्य नायका ॥१३२॥

कांसा, मँजीरा, बंसी, वीणा, शंख, ढोल या खंजरी बजाती, विविध वाजिन्त्रवादिनी देवांगनायें भी कई-कई प्राचीन शिल्पों में दिखायी पड़ती हैं।

शास्त्रों के पाठों में भी, अति प्राचीन मंदिरों में पायी जाती भिन्न-भिन्न स्वरूप, हाव-भाव, अंगभंगी तथा विविध वाजिन्त्रोंवाली देवकन्याओं के स्वरूपों के वर्णन हमें मिलते हैं। पहले हम देवांगनाओं के ३२ स्वरूपों से भिन्न, वाजिन्त्र बजाती आठ देवकन्याओं के स्वरूप प्रस्तुत करते हैं, बाद में ३२ देवांगनाओं से वे किस तरह मिलती जुलती हैं, उसका निरूपण करेंगे।

देवकन्याओं के आठ स्वरूप : वाजिन्त्र धारिणियां :

१. मृदंगवादिनी : मृदंग बजाने में मग्न देवांगना
२. वीणावादिनी : वीणा बजाने में मग्न देवांगना
३. खंजरीवादिनी : खंजरी ,, ,, ,,
४. मंजीरावादिनी : मंजीरे ,, ,, ,,
५. शंखवादिनी : शंख ,, ,, ,,
६. बंशीवादिनी : बंशी ,, ,, ,,
७. केशगुंफन (करती) : केशगूंथने में मग्न देवांगना
८. बंसीपात्र धारिणी : बायें हाथ की बंसी मस्तक पर धरकर तथा दाहिने हाथ में पात्र लिये अंगभंगीवाली देवांगना।

प्राचीनकाल के भिन्न-भिन्न समयों में लिखी गई अशुद्ध हस्तलिपियों में ३२ देवांगनाओं के नाम इस प्रकार दिये गये हैं। उसमें कई तो केवल नृत्यांगनाएं ही हैं, जबकि कई वाजिन्त्रधारिणी कन्याएं हैं।

शिल्पशास्त्र में वर्णित ३२ देवांगनाओं के सिवाय शिल्पियों द्वारा अपनी मर्जी या कल्पना से उरेही हुई देवांगनाओं के विविध प्रचलित स्वरूपों की नामावली यहां दी गई है, उसमें देवांगना-स्वरूपों के साम्य-भेद को भी दर्शाया गया है।

वाजिन्त्र–वादिनियों के स्वरूप : देवांगना स्वरूप में पाये जाने वाले प्रचलित स्वरूप :

		देखिये, देवांगन स्वरूप में,	क्रम सं.
१. मोहना	: बंसीनाद करती	,, बंशीवादिनी	६
२. मंजुला	: पायल, नूपुर, मंजीरे बजाती	,, हंसावली	६
३. गार्गी	: ढोलक बजाती	,, मृदंगवादिनी	१
४. मुग्धा	: मुरली बजाती	,, वंशीवादिनी	६
५. श्यामा	: सितार ,,		
६. खंजना	: खंजरी ,,	,, खंजरी वादिनी	३
७. सूरपाली	: शहनाई ,,	(प्रभातकन्या या विवाहित कन्या की सखी)	
८. रागिनी	: रणसिंग ,,		
९. झंकारी	: झालर ,,	देखो, खंजरी वादिनी	३
१०. तूर्या	: एकतारा ,,		
११. रंजना	: रावणहथ्था (एक तंतुवाद्य)		
१२. भीलड़ी (भील कन्या)	: ढोल ,,		
१३. तरंगा	: जलतरंग बजाती		
१४. सरिता	: बीना बजाती	देखो, वीणावादिनी	२
१५. बाला	: नरधा (ढोल जैसा)		
१६. गार्गीणी	: मृदंग बजाती	,, मृदंगवादिनी	१
१७. मुग्धा	: शंखनाद करती	,, शंखवादिनी	५
१८. ऋक्ष्मणी	: जलकुंभयुक्त (पनिहार)	,, जया	२९

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१९. पद्मा	: पूजा-आरती करती (पुजारिणी)	,, चंद्रावली	१७
२०. पूर्णिमा (पूर्ण) (तूर्य)	: पिपीहरीनाद करती		
२१. हसुमति	: फूल-हारवाली (मालिन)	,, माननी	२१
२२. कामवती	: माथा गूंथती, चोटी बांधती	,, केश गुंफन–७, विधि चिता	३
२३. रत्नावली	: तोता-मैनावाली	(दक्षिण प्रदेश में मूर्तियों के स्कंध पर ऐसे पक्षी रहते हैं।)	
२४. करुणा	: पखाल-मंजीरा बजाती	देखो, मंजीरावादिनी	४
२५. कलावती	: हाथ में कंकणवाली नर्तकी (सभी कंकण पहने होती हैं)	,, सुंदरी	
२६. कुंदन	: कबूतर को दाना चुनाती		
२७. मेनावली	: पक्षीयुक्त (दक्षिण प्रदेश की मूर्ति)		
२८. अंजना	: बिंदिया (तिलक) लगाती		
२९. बनरेखा	: पत्रलेखन करती	,, पत्रलेखा-चंद्रलेखा	९
३०. शृंखला	: छुरिका नृत्य करती	,, रंभा	२७
३१. शोभना	: तीन पुत्रवाली	,, पुत्रवल्लभा	१२
३२. झरना	: पायल पहनती	,, हंसावली	६

अप्सराएं स्वर्ग में देवों का मनोरंजन करती हैं। उनकी अनुकृति देवालयों के शिल्पों में की जाती है। ये अप्सराएं देवांगना, देव-कन्या, सुरसुंदरी, नृत्यांगना, अलशा आदि भिन्न-भिन्न नामों से पहचानी जाती हैं।

पश्चिम भारत के नागरादि शिल्प ग्रंथ 'क्षीरार्णव' और 'दीपार्णव' में उनके ३२ नाम और स्वरूप लक्षणों के साथ वर्णित हैं। जबकि दूसरे ग्रंथों में सिर्फ २४ ही शास्त्रीय नाम मिलते हैं। लेकिन नागरादि शिल्पग्रंथों में बहुत स्पष्टता से ३२ स्वरूप वर्णित हैं, इसलिए ऐसा मानने में कोई दिक्कत नहीं है कि २४ स्वरूप अपूर्ण ही हैं। हस्तलेखों की अशुद्धि के कारण ऐसा होना संभव है।

पूर्व भारत में कलिंग उड़ीसा के शिल्पों में तो देवांगनाओं की संख्या केवल १६ ही दी गयी है।

द्रविड शिल्पग्रंथों के स्वरूपों के बारे में कोई वर्णन नहीं मिलता। जो द्रविड शिल्पग्रंथ मिले हैं, उनमें कई देवांगनाओं के स्वरूपों का उल्लेख नहीं है; इसका मतलब यह हुआ कि द्रविड शिल्पग्रंथ पूर्ण नहीं मिलते, या वहां देवांगनाओं की प्राधान्य नहीं था।

दक्षिण कर्णाटक, मैसूर राज्य के बेलुर और सोमनाथपुरम् के हयशाल शिल्प मंदिरों में देवांगनाओं की बहुत सुंदर मूर्तियां दिखाई देती हैं। इसलिये दक्षिणापथ के शिल्पग्रंथ द्रविड से भिन्न शैली के हैं, ऐसा उनकी कृति पर से लगता है। उनके यम-नियमों के ग्रंथ भी होने चाहिए। वे अब तक देखने में नहीं आये, पर उनका शिल्प अदभुत है।

पूर्व भारत के कलिंग, उड़ीसा, भुवनेश्वर, कोणार्क और जगन्नाथ पुरी के मंदिर भव्य हैं। उनकी कलाकृतियां भी सुंदर हैं। उनमें देवांगनाओं के स्वरूप बहुत मिलते हैं।

मध्यप्रदेश के शिल्पस्थानों में खजुराहों के समूह-मंदिर हैं। उनमें भी देवांगनाओं के स्वरूप शिल्पित किये गये हैं।

उत्तर भारत में ऐसे कई अलभ्य शिल्प-स्थापत्यों में सुंदर देव-स्वरूप पाये जाते हैं। उन मंदिरों की रचना नागरादि शिल्पों से मिलती है। फिर भी कई विषयों में वे उनसे भिन्न हैं। ऐसे सुंदर प्रासादों के शिल्पग्रंथ अब भी प्राप्त नहीं हुए हैं। विधर्मियों के विनाशक उपद्रवों से ऐसा अमूल्य साहित्य लुप्त हो गया है।

पूर्व भारत के कलिंग, उड़ीसा में शिल्प के ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। कई प्राकृत भाषा में प्रकाशित हुए हैं। नौवीं शताब्दी का ग्रंथ–'शिल्प प्रकाश'–संस्कृत में है। उसका संशोधन करके अंग्रेजी अनुवाद श्रीमती एलिस बोनर ने प्रकाशित किया है। उसमें देवांगना-अलस्या के १६ स्वरूपों का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

कलिंग, उड़ीसा आदि के शिल्पों में देवांगनाओं को अलस्या या देवकन्या कहते हैं। वे स्वरूप भुवनेश्वर, कोणार्क, पुरी के मंदिरों और उन प्रदेशों के प्रासादों में दिखाई देते हैं। 'शिल्प-प्रकाश' के प्रथम अध्याय में श्लोक २९७ से ४०० तक उनके नाम वर्णित हैं।

उड़िया शिल्प में भुवनेश्वर, पुरी या कोणार्क में देवांगना-अप्सरा के स्वरूप कम हैं मगर है। द्रविड प्रदेश में तो बिलकुल नहीं हैं, ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सद्भाग्य से दक्षिणापथ के दक्षिण कर्णाटक प्रदेश के हयसाल मंदिरों में अप्सराएँ हैं, इतना ही नहीं बल्कि ये देव या देवांगना स्वरूप गुजरात–राजस्थान के देवस्वरूपों से भी अधिक सुंदर हैं; लेकिन वे स्थूलकाय हैं और वे बेल-पत्तों से आवृत्त होते हैं।

मध्य प्रदेश–खजुराहो के समूह-मंदिरों में भी देवांगनाओं के सुंदर शिल्प देखने को मिलते हैं। उत्तर भारत में ऐसे सुंदर देवस्वरूप हैं, लेकिन विधर्मियों के उपद्रवों के कारण प्रासादों के वे सब शिल्पग्रंथ नष्ट हो गये हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देवांगनाओं के कई नाम:

भागवत के छठे स्कंध में नर-नारायण के तपोभंग के लिये अप्सराओं के स्वरूप का वर्णन है।

प्राचीन संस्कृत काव्यों में 'पुत्रलिका' के रूप में इनका वर्णन किया गया है। वह इस तरह है:

१. 'हर्ष चरित्र' में: कनक पुत्रिका-पत्रभंग पुत्रिका
२. 'कादंबरी' में: कर्पूर पुत्रिका
३. 'तिलक मंजरी' ग्रंथ में: **चंदन पेक**, प्रति यातना, यंत्रपुत्रिका, मणिपुत्रिका, चित्रपुत्रिका, चित्रपट पुत्रिका, दुहितृका
४. 'उदय सुंदरी' कथा में: लेख्य पुत्रिका, क्रीड़ा पुत्रिका
५. 'मालती माधव' में: दंतपांचालिका, पांचालिका

इस तरह संस्कृत साहित्य में देवांगना या पुतलियों के लिये पुत्रिका शब्द रूढ़ हो गया।

रागरागिनियों के चित्रात्मक रूप भारतीय कलाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्षणों के साथ दिये गये हैं।

शालभंजिका: नृत्यमुद्रा मे ऊपर आम्रवृक्ष की डाली को सामान्यत: शालभंजिका कहा गया है।

बुद्ध की माता मायादेवी के ऊपर आम्रशाखा दिखाई गई है, उसे शालभंजिका रूप कहा है।

'हर्षचरित्र' में मिट्टी में से बनाई हुई स्त्रीमूर्ति को '**अंजलिका**' कहा गया है। और 'कादंबरी' में मिट्टी के खिलौने को मृदंग (मृत+अंग) कहा है। उसका अर्थ 'मृत्पुत्रिका' दिया गया है।

संस्कृत साहित्य में पुत्रिका या पुतली के नाम से जो देवकन्या वर्णित है, उसके नाम और लक्षण शिल्पाकृतियों से ठीक मिलते-जुलते हैं।

राजा विक्रम की लोककथाओं में वर्णित ३२ पुतलियों की कहानियों से ये मूर्तियाँ बिलकुल भिन्न हैं।

उड़ीसा में १६ देवांगनाओं को १६ 'अलस्या' कहा है। उनके स्वरूप और लक्षण कलिंग के शिल्पग्रंथ 'शिल्प प्रकाश' में दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं:

भावानुसारती नाम्ना कन्याबंधः स उच्यते
अलसा, तोरणा, मुग्धा, मानिनी डालमालिका ।।
पद्मगंधा दर्पणा च विन्यासा ध्यान कर्षिता
केतकी भरणा दिव्या मातृभूतिः तथैवच
चामरा गुंठना मुख्या नर्तकी शुकसारिका
नूपुरपादिका रम्या मर्दला बातिशोभना ।।
एता षोडश मुख्यास्थुरलसा बंध-भेदता ।।

शिल्प प्रकाश : प्रथम प्रकाश (१)

१. अलस्या–आलसी :
लीलावती जैसा स्वरूप।

२. तोरणा :
सुगंधा से उलटे हाथ दायीं ओर मुख का मरोड़, दायां पैर सीधा और बायां आंटी लगाया हुआ।

३. मुग्धा :
दायीं ओर मुख करके, दायें हाथ से मुख को स्पर्श करके, बायां हाथ नीचे मोड़कर किया हुआ।

४. मानिनी :
विधिचिता जैसी ही दर्पणयुक्त, फिर भी दायां हाथ विधिचिता से ऊंचा रहना चाहिए।

५. जलमालिका :
दायीं ओर मुख करके, बायां हाथ ऊंचा, दायां हाथ स्कंध तक मोड़ा हुआ।

६. पद्मगंधा :
बायीं ओर मरोड़ के, केश गुंफन करते समय, दायाँ हाथ नीचे और बायाँ हाथ ऊपर मोड़कर, हाथ कमलयुक्त।

७. दर्पणा :
विधिचिता जैसा ही स्वरूप। लेकिन उसके बायें हाथ में दर्पण है और दाहिना हाथ माथे पर है। बायां पैर सीधा और दाहिना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१ अलस्या

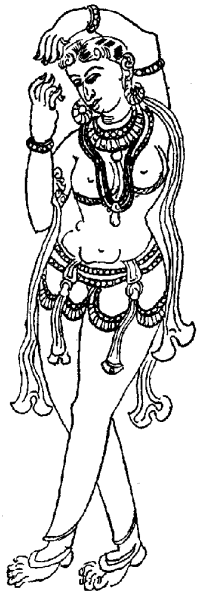

२ तोरणा

३ मुग्धा

४ मानिनी

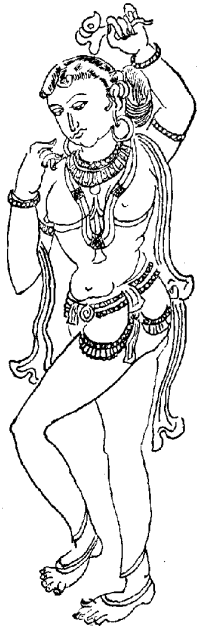

५ जलमालिका

६ पद्मगंधा

७ दर्पणा

८ विन्यासा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बायीं ओर मुड़ा हुआ होता है ।

८. **विन्यासा :**
दोनों हाथों की हथेलियां और दाहिना पैर, बायीं ओर मुड़ा हुआ होता है ।

९. **केतकी भरणा :**
मुख बायीं ओर मुड़ा हुआ, विधिचिता जैसा । दाहिना हाथ माथे पर और बायां हाथ मुख तक मुड़ा हुआ ।

१०. **मातृभूति :**
सारा अंग दाहिनी ओर झुका हुआ और दो हाथ में बालक लिए हुए ।

११. **चामरा :**
दायीं ओर मुख किये, बायें मुड़े हुए हाथों में चामर ली हुई मूर्ति का दाहिना हाथ पैर तक सीधा ।

१२. **गुंठना :**
पीठ दिखाती हुई, बालों की लंबी चोटीवाली, बांया पैर किसी दूसरी शिल्पाकृति पर टिकाये हुए, और दाहिना पैर सीधा होता है । बायां हाथ मस्तक के ऊपर, दायें स्कंध तक होता है ।

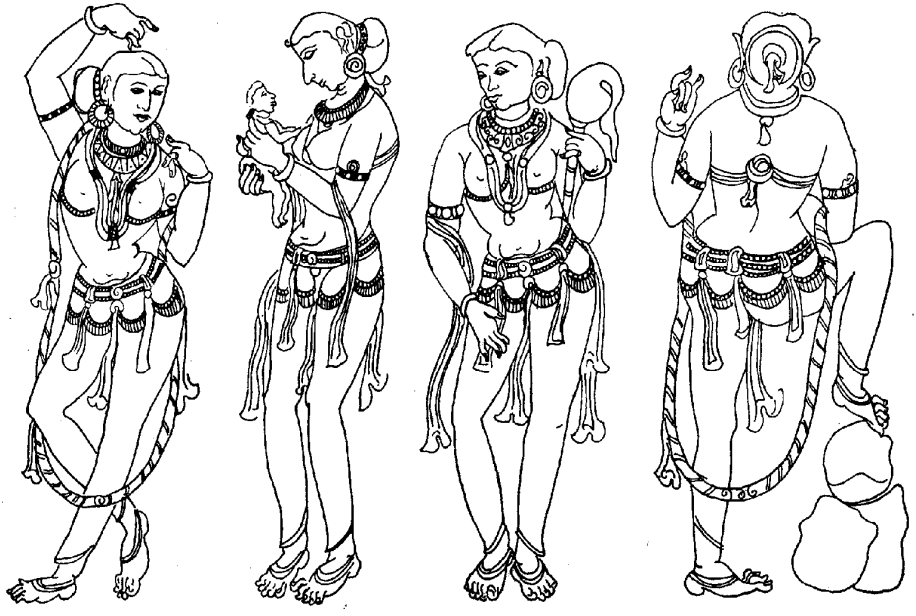

९ केतकी भरणा १० मातृभूति ११ चामरा १२ गुंठना

१३. **नर्तकी :**
बायीं ओर मुख, दो हाथ माथे पर, दाहिना पैर सीधा और बायां पैर कटि से मुड़ा हुआ ।

१४. **शुकसारिका :**
दाहिना हाथ स्कंध की ओर किये हुए, उस पर शुक (तोता) बिठाया हुआ । बायां पैर ऊंचा और दायां पैर स्थिर ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१५. नूपुरवादिका :
हंसावली जैसा स्वरूप। पैरों में घुंघरू बांधती, दाहिना हाथ स्कंध तक मुड़ा हुआ।

१६. मर्दला :
गले में ढोलक डालकर बजाती और दाहिना हाथ गजहस्त मुद्रा में।

१३ नर्तकी १४ शुकसारिका १५ नूपुरवादिका १६ मर्दला

गुजरात के शिल्पग्रंथों में वर्णित न होते हुए भी, कुशल शिल्पियों द्वारा भिन्न-भिन्न काल में बनायी हुई देवांगनाओं के स्वरूप यहां दिये गये हैं। शिल्पियों द्वारा अपनी कल्पना के अनुसार बनायी गई ये देवांगनाएं, अंतिम दो शताब्दियों में बनी हुई दिखाती हैं। वास्तव में इन मूर्तियों के पीछे कोई शास्त्राधार नहीं है। शिल्पीगण लोकभाषाओं में इन्हें 'पुतली' कहते हैं। इनके नाम और लक्षण प्राकृत भाषा में मिलते हैं।

इन देवांगनाओं की संख्या भी ३२ है। इस तरह सारी पुतलियों के नाम और उनके लक्षण प्राकृत में मिले हैं। उसमें वर्णित देवांगनाएँ सर्व प्रकार के आभूषण धारण करती हैं। उसमें प्रादेशिक भिन्नता के कारण कई जगह मस्तक पर मुकुट नहीं पाये जाते हैं। मस्तक खुले बालवाला होता है।

ये सभी देवांगनाएँ दो सौ वर्षों तक के प्राचीन मंदिरों में, इसी स्वरूप में देखने को मिलती हैं। पूर्व भारत के कलिंग, उड़ीसा आदि के शिल्पों में और भुवनेश्वर, कोणार्क, जगन्नाथपुरी आदि प्रदेशों के प्राचीन मंदिरों में वे दिखाई देती हैं। नौवीं सदी के 'शिल्प प्रकाश' नामक कलिंग के शिल्प ग्रंथ में अप्सरा को अलसा कहा गया है। उसमें से सोलह स्वरूपों की खोज करके श्रीमती ग्रेलिस बोनर ने अंग्रेजी में एक मूल्यवान ग्रंथ प्रकाशित किया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भारतीय शिल्पसंहिता

(उत्तरार्ध)

देवस्वरूप

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रारंभ

सरस्वती विश्वकर्मा श्रीगणेश

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क़ंदारिया की स्थापत्य-कला का एक सुंदर नमूना । महादेव मंदिर
खजुराहो, मध्य प्रदेश

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

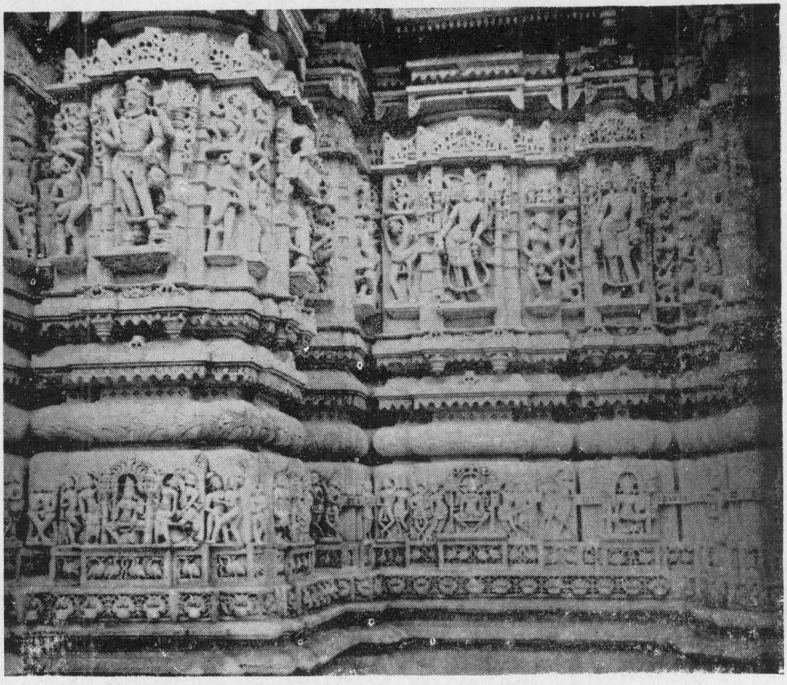

राणाकपुर (राजस्थान) के पार्श्वनाथ जैन मंदिर का सज्जापूर्ण मंडप

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आमुख :

प्रतीकोपासना के पहले लोग स्वजन-पूजन के द्वारा भगवद्भक्ति करते थे। ऐसा वेद और ब्राह्मण के ग्रन्थों में बताई गई यज्ञीय क्रियाओं में जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे मालूम पड़ता है। इस प्रकार वेदकाल के बाद, यज्ञरूप में प्रचलित भक्तिमार्ग देवप्रतीकों की उपासना में परिणत हो गया। वेदसूक्तों में वर्णित देवताओं के स्वरूप के अनुसार पाषाण अथवा धातुद्रव्यों के द्वारा देवताओं के साकार स्वरूप निर्मित हुए और उनकी पूजा प्रचलित हुई ।

साकार प्रतिमाओं का ध्यान करते करते मनुष्य प्रभु के निराकार निरंजन स्वरूप को प्राप्त करता है और अन्त में प्रयत्न के द्वारा आत्मानुग्रह की सिद्धि पाता है, इसलिये प्रतिमा का आवाहन पूजन आदि करना आवश्यक है। मूर्तिपूजा से पूजक की मनःशुद्धि होती है, उसको आत्मसन्तोष भी मिलता है। अनन्यभाव से प्रभु का आवाहन-पूजन करके उसमें तन्मय होनेवाले भक्त पर भगवान प्रसन्न होते हैं और वे भक्तों की कामना पूरी करते हैं। ऐसी मान्यता प्रचलित होने से मूर्तिपूजा का प्रचार हुआ।

वेद भारत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। ऋग्वेद आदि में देवताओं के नामों का उल्लेख मिलता है, शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता में और कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में यज्ञयागादि प्रसंगों पर सुवर्णप्रतिमा की स्थापना के बारे में विधान मिलता है, देवप्रतिमा के साथ साथ देवालय (मन्दिर) निर्माण का उल्लेख अथर्ववेद में है। द्योत और गृह्यसूत्रों में प्रतिमाओं और उनके पूजन के विषय में विशेष चर्चा मिलती है। सूत्रकाल में मूर्तिपूजा का विशेष प्रचार एवं प्रसार हुआ है। बोधायन गृह्यसूत्रों में देवों के पूजन–अर्चन के बारे में विस्तारपूर्वक चिंतन किया गया है ।

शिव

भारत और पूर्वीय देशों में शिव-रुद्र की उपासना का विशेष माहात्म्य है। शिव-रुद्र के स्वरूपवर्णन में ऋग्वेद कहता है कि 'उनके अवयव मजबूत हैं, उनके होंठ सुन्दर हैं, धुँधला पीला चमकीला रूप है, सुवर्ण के अलंकार वे पहनते हैं और रथ में सवारी करते हैं'।

दूसरे वेदों में इससे भिन्न–बिल्कुल अलग वर्णन इस प्रकार मिलता है: शिव-रुद्र का पेट श्याम है, पीठ लाल है, कण्ठ नील-हरा है, शरीर का रंग लाल है, वे चमड़ा ओढ़ते हैं, पर्वत पर रहते हैं, धनुष्यबाण धारण करते हैं, कभी कभी वे वज्र भी धारण करते हैं, अपने पास मांसभक्षी कुत्ते रखते हैं'। अथर्ववेद की वाजसनेय संहिता में यह वर्णन मिलता है। वेदों की संहिताओं में शिव का त्र्यम्बक नाम मिलता है। उसका अर्थ है तीन आँखोंवाला। पृथ्वी, अन्तरीक्ष और पाताल ये तीन उनकी आँखें हैं। रुद्र के लिये अग्नि नाम भी मिलता है। अथर्ववेद में भव, शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, महादेव, ईश आदि शिव के नाम मिलते हैं, वेदों में शिव के लिये पशुपति नाम बारबार आता है। उनकी प्रार्थना करने से रोग और भय से मुक्ति मिलती है और कल्याण होता है। अथर्ववेद में शिव को 'अन्धकघातक' और अन्य वेदों में 'त्रिपुराघातक' कहा है । संकटकाल में रुद्र का ध्यान करने से संकट से मुक्ति हो जाती है।

शिवजी स्मशान में रहते हैं, वहाँ की भस्म अपनी देह पर लगाते हैं, मुण्डमाला धारण करते हैं, कपालपात्र में भिक्षा माँगते हैं, कुत्ते पास में रखते हैं, चमड़ा पहनते हैं, साँप का अलंकार धारण करते हैं, इस प्रकार के शिव-रुद्र के आचार कहे हैं, इसीलिये ये अनार्यों के देव हैं ऐसा कुछ विद्वान कहते हैं। वे पीछे से आर्यों के देव माने गये और पहले जो रुद्र थे वे पीछे से शिव गिने गये।

निरंजन निराकार लिंग स्वरूप की पूजा जगत के प्रत्येक भाग में होती होगी। यूरोप के एवं एशिया के देशों में कई जगह शिवजी के योनिलिंगस्वरूप के अवशेष मिले हैं। सारी सजीव सृष्टि योनि और लिंग के संयोग से पैदा होने के कारण वह स्वरूप सृष्टि का आदिकरण माना जाता है। इसी भावना से उसकी पूजा भी होती है। प्रजोत्पत्ति के लिये इन दोनों की इकाई जरूरी है, जगत के मूल में पुरुष और प्रकृति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगंबर शिवनृत्य

शिवनृत्य

नामक ये ही दो तत्त्व हैं, इसीलिये शिवजी की 'अर्धनारीश्वर' मूर्ति प्रख्यात है। शिवजी के सयोनि लिंग एवं मूर्ति इन दोनों स्वरूपों की पूजा जगत में होती है। चारपाँच हज़ार वर्ष पहले के मोहें-जो-दड़ो और हरप्पा स्थानों में से इसके प्रतीकरूप अवशेष मिले हैं।

शिवजी के प्रतीक के रूप में बाण-लिंग पूजे जाते हैं और विष्णु के प्रतीक के रूप में शालिग्राम की पूजा होती है, लेकिन बाण-लिंग जितना व्यापक हुआ है उतना वह व्यापक नहीं बना है।

शिवलिंग के वैसे कई प्रकार हैं, उनमें व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त ये तीन मुख्य प्रकार हैं।

१) स्वयम्भू लिंग–जो कि कुदरती रीति से भूमि में से निकलता है, और वह पत्थर का होता है।

२) बाणलिंग–जो कि मुरगे के अण्डे के आकार के होते हैं और वे शास्त्रीय पवित्र नदियों में से प्राप्त होते हैं, ये भी कुदरती होते हैं।

(ये दोनों प्रकार के लिंग अव्यक्त माने जाते हैं।)

३) राजलिंग–घटितलिंग–मानुषलिंग–यह लिंग अमुक प्रकार से गढ़कर तैयार किया जाता है, चौड़ाई से लगभग तिगुनी उसकी ऊँचाई होती है, नीचे के चतुरस्त्र भाग को ब्रह्मभाग और बीच के अष्टास्त्र भाग को विष्णुभाग कहते है, ऊपर का लिंग भाग है, जिसकी पूजा होती है। यह भी अव्यक्त लिंग का ही एक प्रकार माना जाता है।

४) उपर्युक्त घटित–गढ़े हुए राजलिंग के मुखलिंग, एकमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख एवं पंचमुख नामक पाँच प्रकार हैं, जिन्हें क्रम से (१) तत्पुरुष, (२) अघोर, (३) सद्योजात, (४) वामदेव और (५) ईशान कहते हैं। इसे व्यक्ताव्यक्त लिंग कहते है।

५) घटित लिंगवाले तीसरे प्रकार में अष्टोत्तरशत (१०८) एवं सहस्त्रलिंग (१०००) भी होते हैं। लिंग में चारों ओर खड़ी पंक्तियाँ बनाकर उनमें अनेक लिंग के आकार बनाये जाते हैं, उसे धारालिंग अथवा नलिका लिंग भी कहते हैं। उसमें खड़े गोल कटाव (दांते) होते हैं। इसे अव्यक्त लिंग कहते है।

मुखलिंग में कहीं कहीं चारों ओर आभूषण तथा आयुधों के साथ ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सूर्य के स्वरूप होते हैं, क्रिस्ताब्द के पूर्वकाल के ऐसे प्राचीन लिंग मिलते हैं।

पूर्व में बालीद्वीप में कमल पर बना हुआ अष्टमुखलिंग का स्वरूप भी मिला है।

शैव आचार्यों में पाशुपत, लकुलीश, कापालिक, कालमुख और वीरशैव आदि आचार्य प्रसिद्ध हैं। उनके पंथ भी बने हैं। उनमें से कुछ तो तत्त्वज्ञानी और ग्रन्थकार हुए हैं। लकुलीश तो शिव के २८ वें अवतार माने जाते हैं। उन्होंने आगम भी लिखे हैं। क्रिस्ताब्द के प्रारम्भ की कुछ शिवमूर्तियाँ लकुलीश के साथ गढ़ी मिलती हैं। ऐसी मूर्तियों में पीछे के भाग में लिंग और आगे के भाग में आसन पर बैठी हुई

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लकुलेश की मूर्ति होती है, उस मूर्ति के सिर पर चारों ओर फैली हुई अस्तव्यस्त जटा, एक हाथ में मातुलिका (फल) दूसरे हाथ में दण्ड और गोद में ऊर्ध्वलिंग बताया गया है। ये सारे प्रकार व्यक्ताव्यक्त लिंग के हैं। शिव के और जो बारह स्वरूप हैं और अन्य भी कुछ स्वरूप मिलते हैं, वे शिव, विष्णु और ब्रह्मा के संयुक्त स्वरूप हैं।

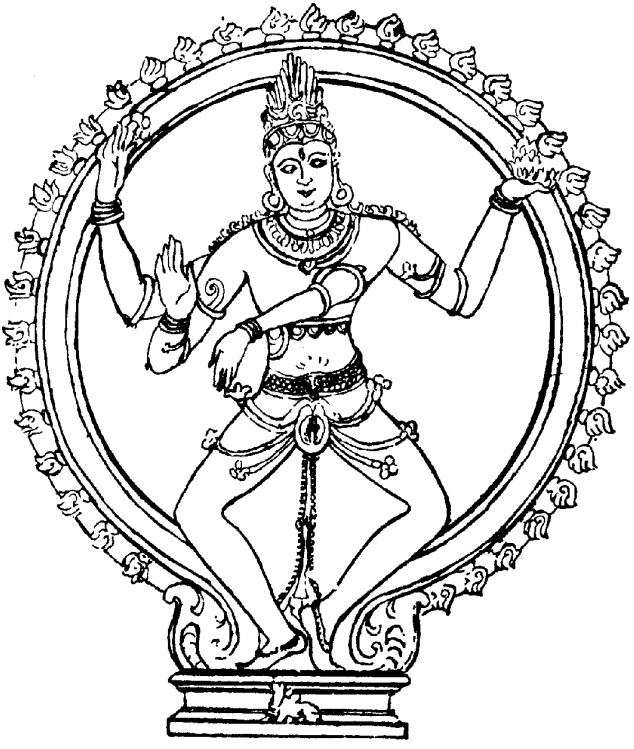

शिव तांडव

व्यक्त प्रकारों में उत्तर भारत में शिव-रुद्र की मूर्तियों के बारह स्वरूप मिलते हैं। जब कि द्रविड़ में शिव-रुद्र के अठारह स्वरूप दिखाई देते हैं। लिंगोद्भव, भिक्षाटन, नटराज, अर्धनारीश्वर आदि जो स्वरूप हैं वे कथानक के प्रासंगिक स्वरूप कहे हैं। शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य और चन्द्र के संयुक्त–मिलेजुले करीब दस स्वरूप हैं। उमामहेश, शिशुपाल के साथ, त्रिपुरान्तक, अघोरेश्वर, त्रिपुरादाहशिव, पंचवक्त्र शिव, दक्षिणामूर्ति, ललाटतिलक आदि भव्य मूर्तियाँ भी मिलती हैं। भैरव और क्षेत्रपाल के स्वरूप भी शिव के स्वरूपों में समाविष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्मा

वैदिक साहित्य में ब्रह्मा को सृष्टिनिर्माण के कर्ता के रूप में बताया है, विश्वकर्मा को सृष्टिकर्ता माना है। विश्वकर्मा सूर्यदेव का ही स्वरूपविशेष है। विश्वकर्मा ही सृष्टि के उत्पादक हैं। वेद में एक सूक्त के मंत्र में प्रजापति शब्द है। यह सूक्त सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में लिखा गया है। उसमें प्रजापति ने सारी सृष्टि का सर्जन किया है ऐसा विधान है।

ऋग्वेद के सूक्त में एकबार ईश्वरवाचक हिरण्यगर्भ शब्द आया है। अथर्ववेद और ब्राह्मणग्रन्थों में बारबार इस शब्द का प्रयोग मिलता हैं, तैत्तिरीय संहिता में हिरण्यगर्भ और प्रजापति एक ही बताया गया है, वेदों के पिछले वाङ्मय में हिरण्यगर्भ शब्द ब्रह्मा का पर्यायवाचक ही है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुराणों में ब्रह्मा ने सारी सृष्टि का निर्माण किया है, ऐसा कहा है, उन्होंने पहले प्रजापति का सर्जन किया और उन्होंने अपने मानस-पुत्रों को प्रजा का निर्माण करने की आज्ञा दी, इसलिये वे प्रजापति कहलाये।

ब्रह्मा और प्रजापति के कथानकों में साम्य होने के कारण उपर्युक्त वैदिक देवता प्रजापति और पौराणिक ब्रह्मा ये दोनों एक ही देवता के स्वरूप हैं, इसमें कोई शक नहीं।

विष्णु

ब्राह्मी संस्कृति के स्वरूप में सात देवों का बहुत महत्त्व है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य, वरुण, इन्द्र और अग्नि ये वे सात देव हैं। शिव के सिवाय अन्य देवों का इतना महत्त्व नहीं है। वेद में उनका वर्णन अन्य अर्थ के अनुसन्धान में है। अथर्ववेद में एक जगह यज्ञ को गर्मी और प्रकाश देने के लिये विष्णु की प्रार्थना की थी ऐसा लिखा है। ऋग्वेद में विष्णु के स्वरूप का वर्णन नहीं है, सूर्य को ही विष्णु का मूल स्वरूप माना गया है, सूर्य के बारह नामों में एक विष्णु का भी नाम है।

असुरों के नाश के लिये इन्द्र के साथ विष्णु की मित्रता हुई थी, ऐसा वेद में लिखा है, विष्णु की यज्ञावतारकथा में लिखा है कि अश्विनी-कुमारों ने यज्ञ को घोड़े का मस्तक बैठा दिया, इससे हयग्रीव अवतार हुआ, वे मधुकैटभ को मारकर वेद वापस ले आये, अथवा यों कहिये कि उनके श्वासोच्छवास से वेद बाहर आये। वैदिक वाङ्मय में इन्द्र और वरुण के आगे विष्णु का स्थान गौण है। पौराणिक काल में शिव और विष्णु का महत्त्व बढ़ गया और इन्द्र एवं वरुण का स्थान गौण हो गया।

विष्णु के प्रासंगिक दस अवतार हुए थे, पुराणों में तदुपरांत दूसरे बीस अवतारों की कथाएँ हैं, ऋषभदेव, कपिल, दत्तात्रेय, पृथु, हयग्रीव, नरनारायण, धन्वन्तरि और मोहिनी (स्त्री रूप) आदि। शेषशायी लक्ष्मीनारायण चतुर्मुख विष्णु के स्वरूप हैं। अनन्तविष्णु, त्रैलोक्यमोहन, विश्वरूप और वैकुण्ठ ये विष्णु के महास्वरूप हैं।

पुराणों में गजेन्द्रमोक्ष की कथा आती है, उसमें यह आता है कि (जल में से) मगर के मुँह में फँसे गजेन्द्र को विष्णु ने मुक्त किया–छुड़ाया। इसके बाद गजेन्द्र ने विष्णु को वरदराज नाम दिया। पुंडरीक की भक्ति के कारण विष्णु का अवतार हुआ, जो विठोबा के नाम से प्रसिद्ध हुए। पंढरपुर में विठोबा–रुक्मिणी के नाम से वे आज भी पूजे जाते हैं। खड़ी मूर्ति है, दोनों हाथ कमर पर हैं और हाथों में शंख और चक्र हैं। मस्तक पर लम्बा खड़ा मुकुट हैं।

तिरुपति के बालाजी–व्यंकटेश प्रसिद्ध है। वह शिव और विष्णु का संयुक्त स्वरूप है, वह हरिहर की मूर्ति है, उनके दायें हाथ के ऊपर साँप है, ऊपर के दो हाथों में शंख और चक्र हैं, नीचे के दो हाथों में एक हाथ कमर पर है और एक हाथ वरद–अभयदाता है, नीचे की ओर मारुति और गरुड वाहन हैं।

बालकृष्ण, गोवर्धनधारी, कालियामर्दन, वेणुगोपाल आदि विष्णु के बालस्वरूप हैं।

धर्म–ब्रह्मा ने सृष्टि उत्पन्न की और उसकी रक्षा के लिये अपने शरीर में से वृषभ–कल्याण पुरुष पैदा किया। उसे धर्म कहते हैं। सत्ययुग आदि चार युगों में कालक्रम के अनुसार ४, ३, २, १ उसके पैर थे, कलियुग में धर्म का एक ही पैर रहा हैं।

यानक, स्थापन, आसन, शयन ये मूर्तियों के चार प्रकार हैं, वाहन पर बैठी हुई मूर्ति को यानक, खड़ी मूर्ति को स्थानक, बैठी हुई मूर्ति को आसन और सोयी हुई मूर्ति–शेषशायी और निर्वाण अवस्था–को शयन कहते हैं। जिस हेतु से मूर्ति की पूजा की जाती है, उस परसे योग, भोग, वीर और अभिचारक ऐसे चार प्रकार भी होते हैं। मूर्ति के साथ परिकर–परिवार किन्नर, विद्याधरयुगल, कमल और कलश से मूर्ति पर जल का अभिशेष करते हुए हाथी, छत्र, शंख अथवा देवदुन्दुभि बजाते हुए गान्धर्व भी होते हैं। नीचे के सिंहासन में सिंह अथवा हाथी होता है। बौद्ध और जैनों में मृगयुग्म अथवा धर्मचक्र दिखाई देता है।

दैवी शक्ति

शक्ति सम्प्रदाय में दुर्गा को प्रधानता रहती है। नवदुर्गाएँ, सप्तमातृकाएँ, द्वादश गौरीस्वरूप, दश महाविद्याएँ, षोडश मातृकाएँ, आणिमादी सिद्धियाँ, चौसठ योगिनियाँ, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, लक्ष्मी, भूदेवी, श्री देवी, अम्बा, भुवनेश्वरी, अन्नपूर्णा, गायत्री, गंगा, यमुना, शीतला, तुलसी आदि देवियों के स्वरूप होते हैं। उनमें चामुण्डा, चण्डी, रक्तचामुण्डा आदि देवी के उग्र स्वरूप भी बताये गये हैं।

देवों और दानवों के बीच महायुद्ध होते थे, भोले शम्भु के आशीर्वचन से वे (दानव) स्वैरविहारी होकर त्रास फैलाते थ, देवों को भी सताने लगते थे, ऐसी स्थिति में शिव के परम तेज में से किसी विशिष्ट शक्ति का प्रादुर्भाव होता था, उस महाशक्ति के द्वारा दानवों का संहार होता था, ऐसी महिषासुरमर्दिनी आदि उग्र देवियाँ शुम्भ, निशुम्भ आदि दैत्यों का विनाश करती थी।

प्रकीर्णक देवों में सूर्य के बारह स्वरूप, गणपति के स्वरूप, कार्तिकेय (स्कन्द) विश्वकर्मा, ऋषिमूर्तियाँ, बुद्धजिनप्रतिमाएँ ये सारे मूर्ति के सामान्य स्वरूप हैं। यज्ञमूर्ति, वृषभ, हनुमान के स्वरूप, धर्म मूर्ति आदि स्वरूप भी कहे गये हैं।

प्राचीन काल में वेदों में इन्द्र, वरुण, अग्नि और सूर्य इन देवों को सर्वोच्च स्थान मिला है, पुराणकाल में पीछे से कथाओं के अनुसन्धान में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देवों की संख्या बढ़ी। पहले जैसा कहा गया है तदनुसार वेदों में ब्रह्म का उल्लेख नही हैं, उनमें रुद्र-शिव, प्रजापति और हिरण्यगर्भ का उल्लेख मिलता है। वेदों में आठ दिग्पालों का भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। उनमें केवल इन्द्र, वरुण, अग्नि और सूर्य जैसे प्रत्यक्ष देवों की स्तुति मिलती है। वर्षा के देव के रूप में वरुण को न मानकर इन्द्र को माना है। दक्षिण दिशा के स्वामी यम को मृत्यु के देव और उत्तरदिशा के स्वामी धनदकुबेर को क्रम से दक्षिण और उत्तर दिशा के दिग्पतियों का स्थान मिला है। क्षेत्रपाल, राक्षस, भैरव और शिवसहचरों को नैऋत्य में स्थान मिला है। पवन–वायु जैसे प्रत्यक्ष देव को वायव्यकोण में और शिवस्वरूप ईशान को ईशानकोण में स्थान मिला है। इस प्रकार आठ दिशाओं के अधिपतियों को दिग्पालों के रूप में पुराणों में स्थान मिला है। आकाश और पाताल के अधिपति के रूप में क्रम से ब्रह्मा और अनन्त (नाग) को दिग्पति मानकर पुराणों ने दस दिग्पालों की गिनती की है।

ऋग्वेद में इन्द्र की स्तुति हैं, इन्द्र वैदिक युग के प्रधान देवता हैं। ऋग्वेद के चौथे भाग में इन्द्र-सम्बन्धी सूक्त हैं, इन्द्र मेघ की गर्जना करता हैं, वेदों में इन्द्र को देवताओं का स्वामी–परमेश्वर बताया गया है।

ऋग्वेदकालीन 'त्रिमूर्ति' में इन्द्र है, लेकिन पुराणकाल में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की महत्ता बढ़ने पर ऊपर बताये त्रिदेव की महत्ता क्षीण होती गई, फिर भी स्वर्ग के अधिपति के रूप में इन्द्र का महत्त्वपूर्ण स्थान सुरक्षित रहा, स्वर्ग के अधिपति के रूप में इन्द्र के असुरों और दानवों के साथ कई युद्ध हुए हैं।

शतपथ-ब्राह्मण और तैत्तिरीय संहिता में इन्द्र, अग्नि और सूर्य को तीन देवों में सर्वोत्तम स्थान मिला है।

दिग्पाल

अग्निवेदों में इन्द्र के बाद अग्नि को दूसरा स्थान मिला है। उनकी स्त्री स्वाहा है, जिसको सात जिव्हाएँ हैं। सुप्रभेदागम में उसका रक्तवर्ण कहा है। वरद, अभय, शक्ति और स्त्रुक् ये चार आयुध उसके चार हाथों में हैं। एक मुख, तीन नेत्र, बकरा अथवा भेड़का वाहन बताया है। शिल्पशास्त्र में उसका सुवर्णवर्ण, लम्बी दाढ़ी, यज्ञोपवीत और दोनों हाथों में माला और कमण्डलु, ऐसा वर्णन मिलता है।

वैदिक ग्रन्थों में अग्नि के वर्णन में उसके दो सिर, चार सींग, तीन पैर और सात हाथ बताये हैं।

यम–दक्षिण दिशा का अधिपति है, उसे पितृराज भी कहते हैं। धर्मराज भी उनका नाम है, भैंसे का उसका वाहन है, उसकी स्त्री का नाम धूमोर्णा है। विष्णुधर्मोत्तर में लिखा है कि उसके चार हाथ हैं, प्रत्येक हाथ में क्रमशः दण्ड, खड्ग, त्रिशूल और माला है। उनके एक तरफ चित्रगुप्त कागज और लेखिनी के साथ खडा है, बायीं ओर भयंकर 'काल' हाथ में पाश (फाँसा) लेकर स्थित है। रूपमण्डनग्रन्थ में लिखा है कि उसका श्यामवर्ण है, चार हाथों में लेखिनी, पुस्तक, मुर्गा और दण्ड धारण किया है और भैंसे के वाहन पर यमस्वरूप स्थित है।

निर्ऋति–वैदिक देव निर्ऋति का विशेष उल्लेख नहीं मिलता। वह भूतप्रेत आदि का अधिपति है। पुराणों में ग्यारह रुद्रों में वह गिना गया है। उससे कहीं राक्षस भी कहा है। अंशुभेदागम में उसके बारे में लिखा है कि वह महाकाय है, उसका नीलवर्ण है, दाढीवाला विकराल उसका मुख हैं, हाथों में खड्ग और ढाल है, और चारों ओर सात अप्सराएँ हैं। सुप्रभेदागम में श्यामवर्णी निर्ऋति का नर वाहन बताया है। नैऋत्यकोण के स्वामी निर्ऋति के वर्णन में रूपमण्डनकार लिखते हैं कि उसके चार हाथों में खड्ग, ढाल, आरा और शत्रु का मस्तक है, लम्बी दाढ़ी और भयंकर चेहरा है और कुत्ते का उसका वाहन है।

वरुण–पश्चिम दिशा के स्वामी और वर्षा के देवता हैं, उनके चार हाथों में पाश, माला और कमण्डलु हैं। मगर का वाहन है। इन्द्र, अग्नि और सूर्य के साथ उनका स्थान है।

वायुदेव–वायव्यदिशा के स्वामी हैं, हरिण उनका वाहन है और दो हाथों में ध्वजा, कमण्डलु और माला हैं।

कुबेर–धनद–सोम उत्तर दिशा के स्वामी हैं, वे यक्षों के राजा हैं। सिलोन में वैश्रवण और बौध्द में जंभल नाम से उनकी पूजा होती है। अंशुभेदागम में उनका वर्णन मिलता है–श्यामवर्ण मूर्ति, चार हाथों में वरद, अभय, गदा और अंकुश ये चार आयुध हैं, बगल में शंखनिधि और पद्मनिधि की मूर्तियाँ होती हैं।

शिल्परत्न में वर्णन मिलता है कि वे मनुष्यों द्वारा खींचे जानेवाले रथ पर बैठे हैं, मुँह में से दाँत दिखाई देते हो ऐसी स्त्री, विभव, वृद्धि और रत्नपात्र धारण किये हैं, गौर वर्ण है, वरद, गदा, पद्म और. . . धारण किये हैं, विष्णुधर्मोत्तर में दाढ़ीमूँछवाले, पीली आँखोंवाले, गदा और शक्ति धारण किये हुए नरवाहन कुबेर बताया है।

ईशान–ईश शिव का स्वरूप विशेष है, वह जटामुकुटधारी है, त्रिशूल और कपाल हाथ में हैं, कमल का आसन है। ऐसा वर्णन अंशु-भेदागम में मिलता है। शिल्परत्न में बताया है कि उनका वृषभ–बैल का वाहन है, जटामुकुट में चन्द्र है, तीन नेत्र हैं, सर्प का आभूषण है, दो हाथों में त्रिशूल और वरद हैं। रूपमण्डन में वरद, त्रिशूल, सर्प और बीजोरु (फल) है, और नन्दी-बैल का वाहन है।

पाताल के दिग्पाल–अनन्त (नागदेव) काले वर्ण के हैं, कमल उनका आसन है, हाथ में सर्प है। अन्य मत में अनन्त–नाग नभि के नीचे सर्पाकृति और ऊपर मनुष्याकृति है, विष्णु के आयुध उनके आयुध हैं, ऊर्ध्वलोक–आकाश के स्वामी ब्रह्मा का हंस का वाहन है, उनका सुनहला वर्ण है, उनके चार मुख हैं, पुस्तक और कमल धारण किया है।

ग्रह–सूर्य के स्वरूप का पहले वर्णन हो चुका है, चन्द्र क्षीरोद समुद्र से निकले हैं और वे शिव के मुकुटभूषण हैं। मंगल, पृथ्वी के पुत्र हैं,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शक्ति का उनका आयुध है। बुध चन्द्रमा के पुत्र हैं। गुरु, देवताओं और ऋषियोंके गुरु–बृहस्पति हैं, वे बुद्धि के स्वामी हैं। शुक्र दैत्यों के गुरुदेव हैं और सर्व शास्त्रों के ज्ञाता एवं प्रवक्ता हैं। शनि, सूर्य के पुत्र हैं, यमराज के बड़े भाई हैं। राहु, सिंहिका के पुत्र हैं, राहु, बिना सिर का शरीर–धड़ मात्र है, चन्द्र–सूर्य का वे ग्रहण करते हैं, बहुत पराक्रमी हैं। केतु–केवल सिर मात्र हैं, बहुत भयंकर हैं।

भोले शिव दानवों के उग्र तपसे प्रसन्न होकर अयोग्य व्यक्तियों को भी वर दे देते थे, फलस्वरूप देवों और दानवों के बीच जब युद्ध छिड़ जाता तो वे देवों को खूब सताते थे, ऐसे अवसर पर अपने शरीर में से परमतेजरूपी शक्ति पैदा करते थे, वह देवी के रूप में प्रकट होकर दानवों के संहार का काम करती थी। कभी कभी तो विष्णु दूसरा स्वरूप लेकर दानवों को मौत के घाट उतार देते थे।

जैन तीर्थंकर और उनके यक्ष–यक्षिणी आदि

चौबीस तीर्थंकरों के वर्ण, लांछन, प्रतीक आदि अलग अलग होने के कारण प्रत्येक की अलग प्रतिमा आसानी सेपहचानी जा सकती है। जैन देवों की बैठी और खड़ी कार्योत्सर्ग प्रतिमाएँ बनती हैं, उन मूर्तियों के चारों ओर अलंकृत परिकर होता है। प्रत्येक जैनतीर्थंकर को एक यक्ष और एक यक्षिणी होती है, उनके स्वरूप अलग अलग बताये हैं। वैसे ही षोडश विद्यादेवियों का स्वरूपवर्णन भी मिलता है। तीर्थंकर वीतराग बताये गये हैं, वे भक्त को किसी प्रकार का फल नहीं देते, उनकी भक्ति से यक्षयक्षिणी प्रसन्न होते हैं। जैनी माणिभद्रयक्ष और घण्टाकर्ण यक्ष को फलदाता मानकर उनका विशेष आदर करते हैं। वे क्षेत्रपाल और पद्मावती माता को भी मानते हैं।

जैनप्रासाद के चारों ओर आठ प्रतिहारों के स्वरूप बनाने का विधान है। उसमें अष्ट मंगल और तीर्थंकरों की माताओं को उनके जन्म के पहले जो स्वप्न आये थे, उनके प्रतीक माने जाते हैं, जैनों के शाश्वत तीर्थ–मेरुगिरि, अष्टापद, नन्दीश्वरद्वीप और समवसरण के स्वरूप बताये हैं, जहाँपर तीर्थंकर भगवान बिराजते हैं।

वैदिक सम्प्रदाय में त्रिपुरुष–ब्रह्मा, विष्णु और शिव–में ब्रह्मा की मूर्ति का पूजन शायद ही कहीं होता है। शिव के अव्यक्त स्वरूप-लिंग की पूजा, शहरों और देहातों में, जंगलों में भी उनके मन्दिर बनवाकर होती है। उनके व्यक्ताव्यक्त स्वरूप–मुखलिंग का पूजन बहुत कम मात्रा में होता है, अव्यक्त स्वरूप–शिवमूर्तिप्रतिमा–का पूजन प्रायः दक्षिण में दिखाई देता है। विष्णु के स्वरूपों का पूजन सभी प्रदेशों में होता है।

कुछ देवों के अमुक स्वरूपों की प्रधानता अमुक प्रदेशों में पाई जाती है। अलग अलग रूप प्रचलित हो गये हैं और वहाँ उन्हीं स्वरूपों की पूजा होती है। उदाहरण के रूप में द्रविड़ प्रदेशों में (तिरुपति) व्यंकटेश बालाजी, वरदराज, रंगनाथ आदि विष्णु के स्वरूपों की ही पूजा होती है। महाराष्ट्र में विठोबा, त्रिपुरुषमूर्तिदत्तात्रय आदि विष्णुस्वरूप ही पूजे जाते हैं। पूर्व में–उडीसा में श्रीकृष्णस्वरूप की प्रधानता है, श्रीकृष्ण, बलराम (बन्धु युगल) और बहन सुभद्रा की मूर्तियों की स्थापना होती है, उनका एकसाथ पूजन होता है। जगन्नाथजी के मन्दिर में ऐसा ही है।

राधा और कृष्ण की मूर्तियों का पूजन ज्यादातर उत्तर भारत में दिखाई देता है। इस प्रथा का जन्मस्थान मथुरा है। कार्तिकस्वामी–स्कन्द–षण्मुख की मूर्तियों की स्थापना–पूजा द्रविड़ में होती है, उत्तरभारत में इसका नामोनिशाँ नहीं है।

बंगाल, आसाम में विशेषरूप से दुर्गा-देवी का अर्चन–पूजन होता है, हिमालय प्रदेश में प्रायः शिवलिंग की पूजा होती है। उपर्युक्त भिन्न भिन्न प्रदेशों में ऊपर बताये हुए देवदेवियों के विशिष्ट स्वरूपों का प्राधान्यतः पूजन होता है, फिर भी वहाँ अन्य देवदेवियों के मन्दिर हैं और उनकी भी पूजा-अर्चा होती है।

केराला–मलबार में शिवजी के तीसरे पुत्र 'अय्यप्पा' की मूर्ति की पूजा होती है, वहाँके स्त्रीपुरुष उनके व्रतनियमों का पालन करते हैं। अय्यप्पा की मूर्ति का स्वरूप इस प्रकार है... खड़े पैरवाली, घुटनों से मुडी हुई बैठी मूर्ति, जिसके घुटने कपड़े से बँधे है, दो हाथ हैं, जिनमें से एक दायें हाथ से अभयमुद्रा की है, दूसरा बायाँ हाथ हाथी की सूँढ की तरह फैला हुआ है। इस अय्यप्पा देव की उत्पत्तिकथा से ही नहीं नाम से भी सारा उत्तरभारत पूरा अपरिचित है। ये शिवजी के तीसरे पुत्र केराला–मलबार में आदर के साथ पूजे जाते हैं। शिवजी और विष्णु के मोहिनीरूप से उनका जन्म हुआ है ऐसी कथा वहाँ प्रचलित है।

आजसे करीब ३० वर्ष पहले प्रतिमा-विधान-विषयक भिन्न भिन्न ग्रन्थों में से पाठान्तर और मतमतांतर के ३००० श्लोक इकट्ठा किये थे, इतने श्लोकों का एक बड़ा ग्रन्थ प्रकाशित करने का कार्य बहुत कठिन है, ऐसा समझकर यहाँ केवल उसका आवश्यक हिस्सा कुछ अनिवार्य मूल श्लोकों के साथ दिया गया है।

स्थपति
पद्मश्री **प्रभाशंकर ओघड़भाई सोमपुरा**
शिल्पविशारद

सं. २०३० कार्तिक शुद्ध
ता. २९–१०–७३

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्कः षोडशम्

ब्रह्मा

वैदिक संप्रदाय में रजस, सत्व और तमस गुण प्रकृति वाले मुख्य तीन देव माने गये है। सृष्टि के कर्ता ब्रह्मा सत्व प्रकृति के माने गये है। विश्व के पालक विष्णु रजस प्रकृति के माने गये है और सृष्टि के पापकर्म का संहार करने वाले शिव तमस प्रकृति के माने जाते है।

ब्रह्मा के और भी कई नाम है। आत्मम्–स्वयम्, धाता–विधाता, विश्वश्रुक, पितामह, सृष्टा, कमलासन, हिरण्यगर्भ, विरंचि, चतुरानन आदि।

स्वयंभू–स्वयम् नाम से पता चलता है कि वे किसीसे उत्पन्न नहीं हुए है। बल्की उन्होंने स्वयम् ही सृष्टि उत्पन्न की है। पौराणिक कथा के अनुसार वे हिरण के रूप में थे इसलिये ये हिरण्यगर्भ माने गये है।

ज्योति, कमलासन, चतुरानन, स्वयं प्रकाशित कमल पर बैठे हुए, चार मुखवाले ब्रह्मा विष्णु के नाभि-कमल में से उत्पन्न होकर, वहीं बिराजमान हैं। यहां वे महत्त्व की दृष्टि से गौण हो जाते हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों में विश्वकर्मन् और प्रजापति दोनों एक ही रूप है। विश्वकर्मन् सूर्य देवता का विशेषण है। वे सृष्टि के उत्पादक हैं।

मैत्रावली संहिता में प्रजापति की कथा इस प्रकार है: एकबार प्रजापति के मन में कन्या की अभिलाषा हुई। तद्नुसार उन्हें कन्या प्राप्त हुई और उसने हिरनी का रूप लिया। और प्रजापति ने हिरन का रूप लिया। इससे क्रोधित होकर रुद्र ने बाण का निशाना साध लिया। उस समय प्रजापति ने उनको वचन दिया कि यदि आप मुझे अभयदान देंगे तो मैं आपको पशुओं के स्वामित्व का पद दूंगा। इसलिये रुद्र पशुपति माने गये। यही कथा ब्राह्मण ग्रंथों में थोड़े-बहुत परिवर्त्तन के साथ दी गई है।

सृष्टि के कर्ता होने के नाते ब्रह्मा को पितामह कहे जाते हैं। उन्होंने शतरूपा, सावित्री, ब्रह्माणी और सरस्वती नामक कन्याओं के रूपदर्शन के लिये चारों दिशाओं में चार और ऊपर पांचवां मुख धारण किया था। किसी कारण से शंकर ने उनके पांचवें मुख का शिरच्छेदन कर दिया था। ऐसी पौराणिक कथा है।

ब्रह्मा अपूज क्यों रहे, उसके लिये भी एक अद्भुत कथा है। जब उन्होंने कहा कि लिंग के आदि और अंत का रहस्य पाने का वे प्रयत्न करते थे, तो उससे सावित्री लज्जित हुई और यज्ञदीक्षा के समय वह वहाँ समय पर न आ सकी। ब्रह्मा ने गायत्री नामक एक दूसरी पत्नी उत्पन्न कीं। इससे क्रोधित होकर सावित्री ने ब्रह्मा को श्राप दिया। तबसे ब्रह्मा का पूजन नहीं होता है। हमारे यहां ब्रह्मा के बहुत ही थोडे मंदिर और मूर्तियां मिलती हैं, शायद इसका यही कारण रहा हो। फिर भी कर्मकाण्ड आदि विधियों में ब्रह्मा का पूजन होता ही है। बहुत कम जगह पर उनके मंदिर मिलते हैं और बहुत ही कम मात्रा में उनकी मूर्तियां पूजी जाती हैं, खेड़ब्रह्मा (ईडर) खंभात के पास नगरा, दुदारी, वसंतगढ़, महाबलीपुरम् आदि स्थानों पर प्राचीन मंदिर और मूर्तियाँ पायी जाती हैं। फिर भी अन्य देव-देवी की अपेक्षा ब्रह्मा का पूजन, अर्चन विधि-विधान के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से बहुत कम होता है।

ब्रह्मा की अकेली मूर्ति के अलावा संयुक्त मूर्तियां भी मिलती हैं। शिव-पार्वती के विवाह में उन्होंने पुरोहित का कार्य किया था। उनकी त्रिमूर्ति में संयुक्त मूर्ति बड़ी प्रसिद्ध है।

विविध ग्रंथों में ब्रह्मा के स्वरूप-वर्णन इस तरह दिये गये है:

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रंथ	मुख	दायें	बायें	वाहन	हाथों के आयुध
१. मत्स्यपुराण	चार (छः हाथ)	सरस्वती	सावित्री	हंस	कमंडल स्रुव स्रुव दंड धृतपात्र, चारवेद
२. अग्निपुराण	,, (डाढ़ी)	सावित्री	सरस्वती	हंस	अक्षमाला, स्रुव, धृतपात्र, कमंडल
३. विष्णुधर्मोत्तर	चार	(सावित्री के साथ पद्मासन में बैठे हुए प्रजापति)			
,, दूसरा मतः	,,	(बद्ध पद्मासन में ध्यानस्थ ब्रह्मा)	—	सात हंस का रथ,	अक्षमाला, स्रुव, कमंडल योगमुद्रा
,, तीसरा मतः	,,	(लोकपाल ब्रह्मा)		हंस	माला, पुस्तक, कमंडल, कमल
४. बृहद् संहिता	चार			कमल	कमंडल और स्रुव
५. मानसार	,,	(छः हाथयुक्त)			कमंडल, वरद, स्रुव, अभय माला
६. शारदातिलक	,,			हंस	कमल, माला, वरद, अभय
७. अभिलाषितार्थ चिन्तामणि और ८. शिल्परत्नम्	चारमुख छःहात	सरस्वती सावित्री		हंस	चार वेद और घी का पात्र, वरद, स्रुव, कमंडल
९. समरांगण सूत्रधार	चारमुख				अक्षमाला, वरद, दंड, कमल
१०. देवतामूर्ति प्रकरण ११. और रूपमंडन	चारों दिशाओं की ओर मुख, उनके जटामुकुट में अर्धचंद्र.				तीन-तीन आंख और आयुध विश्व

ब्रह्मा के चार स्वरूप इस प्रकार भी हैं :

१.	विश्वकर्मा (विरंचि)	द्वापर में	माला, पुस्तक, कमंडल और स्रुव
२.	कमलासन	कलियुग में	माला, स्रुव, पुस्तक और कमंडल
३.	पितामह	त्रेतायुग में	माला, पुस्तक, स्रुव, और कमंडल
४.	ब्रह्मा	कृतयुग में	पुस्तक, माला, स्रुव और कमंडल

सभी ग्रंथों में भिन्नता है, फिर भी थोडा-सा साम्य भी कहीं कहीं पाया जाता है।

ब्रह्मा की मूर्ति में प्रादेशिक भिन्नता भी पायी जाती है। दक्षिण में ब्रह्मा की मूर्ति ललितासन में बिना डाढ़ी की और डाढ़ीयुक्त भी मिलती है। कई जगह ब्रह्मा का विचित्र स्वरूप भी पाया जाता है। एक हाथ में पाश और एक हाथ कमर पर भी होता है।

खेड़ ब्रह्मा में लायी गयी ब्रह्मा की मूर्ति का वाहन नंदी और अश्व है।

गुजरात में ब्रह्मा की अनेक मूर्तियां खड़ी और बैठी हुई भी पायी गयी हैं। एक ही मुख के ब्रह्मा और कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा भी पाये गये हैं।

द्रविड़ कंबल दोड्डबसाया में ब्रह्मा की पाँचमुख और चार हाथ वाली एक विलक्षण मूर्ति पायी गई है।

पूर्व में मुसीशुपे (मोसेपोटामिया?) में ब्रह्मा ललितासनयुक्त, दाढ़ी, पाँच मुख और दस हाथवाले हैं। उसमें त्रिशूल और नाग भी है। दक्षिण में एक ही पंक्ति में बनाये गये चारों मुखवाली ब्रह्मा की मूर्तियां पायी जाती है।

बौद्ध धर्म में हिन्दु देव-मूर्तियों का तिरस्कार पाया जाता है। बौद्धों की प्रसन्न तारादेवी अपने हाथ में ब्रह्मा का मस्तक लिये और पैरों के नीचे इन्द्र, विष्णु और रुद्र को कुचलती हुई वर्णित है।

बौद्धों की विद्युत-ज्वाला करालीदेवी भी एक हाथ में ब्रह्मा का मस्तक लिये, पैरों नीचे विष्णु, रुद्र को कुचलती हुई वर्णित है। तांत्रिक ग्रंथों में (माला में) ऐसी भ्रष्ट मूर्ति का वर्णन है।

बौद्ध संप्रदाय में जबसे तांत्रिकता आयी, तबसे ऐसी अनेक मूर्तियाँ बनने लगी थी। हिंदु धर्म के देवताओं का इतना तिरस्कार करने से ही शायद बौद्ध धर्म भारत में अधिक प्रचलित न हो सका और उसे भारत के बाहर चले जाना पड़ा।

जैन संप्रदाय में अन्य धर्मों के देवों के प्रति इतना तिरस्कार पाया नहीं जाता। शायद इसीलिये उनका धर्म भारत के सभी प्रान्तों में आज भी विद्यमान है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ब्रह्मा की कई युग्म मूर्तियां भी पायी गयी हैं। युगल आसनस्थ बैठी हुई ब्रह्मा की मूर्ति की गोद में सावित्री उत्कीर्ण मिलती है। और ब्रह्मा की खड़ी मूर्ति के पैरों के पास सावित्री और सरस्वती दोनों शिल्पित की जाती हैं। उसके हाथों में कमल और कमंडल दिये जाते हैं। शिवप्रसाद की प्रदक्षिणा के तीनों ओर के भद्र के गवाक्ष में ब्रह्मा-सावित्री, और दूसरे दो गवाक्षों में विष्णु-लक्ष्मी और उमा-महेश्वर की आलिंगनयुक्त मूर्तियां खडी होती हैं।

प्राचीन काल में ब्रह्मा के मंदिरों का भी निर्माण होता था। इसलिये चार दिशा के आठ प्रतिहारों के स्वरूप और ब्रह्मा के आठ देवायतन का वर्णन मिलता है। आठ प्रतिहारों के नाम इस प्रकार है: पूर्व में सत्य-धर्म, पश्चिम में विजय-यज्ञभद्रक, उत्तर में भव-विभव और दक्षिण में पुरुषकार होते हैं।

ब्रह्मापतन में मध्य में ब्रह्मा, पूर्व में धरणीधार, अग्निकोण में गणेश, दक्षिण में मातृका, नैऋत्य में सहस्राक्ष, पश्चिम में जलशायी, वायव्य में पार्वती-रुद्र, उत्तर में ग्रह, ईसान में कमला।

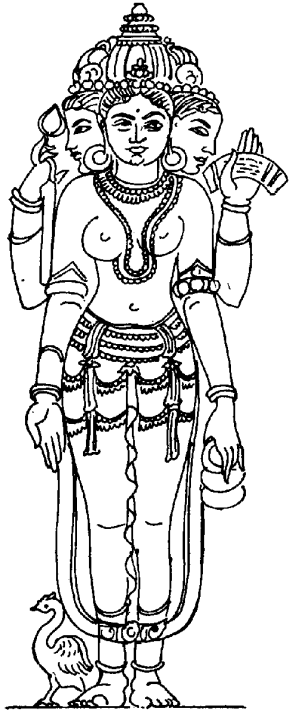

सावित्री

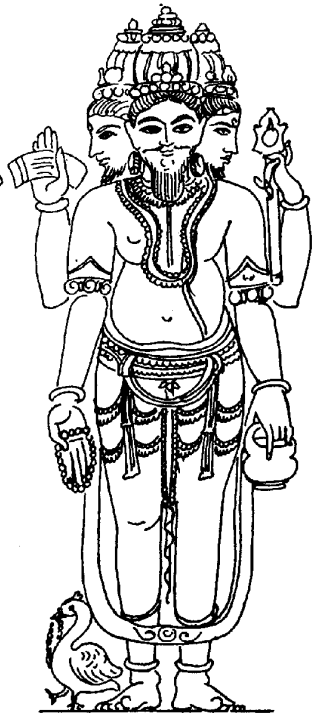

ब्रह्मा

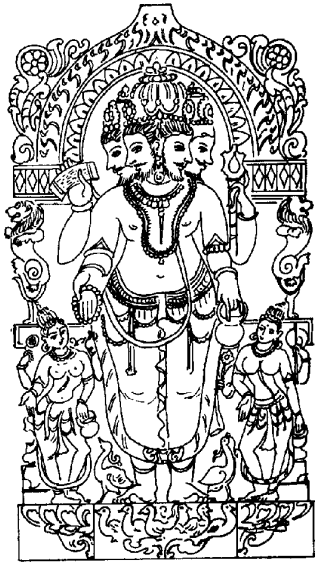

सावित्री ब्रह्मा सरस्वती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्क : सप्तदशम्

विष्णु

प्रकाशरूप विष्णु जगत को संकटमुक्त करते हैं, इसलिये वे सृष्टि के पालनकर्ता देव माने गये हैं। इसीलिए उन्होंने मत्स्य, कूर्म,

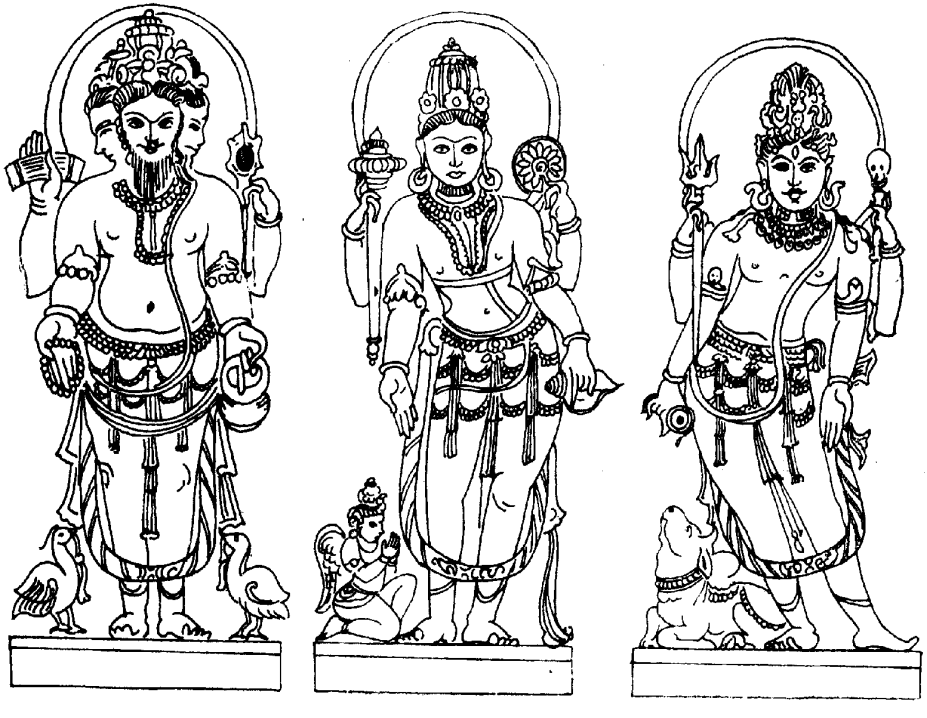

ब्रह्मा विष्णु महेश

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वराह, वामन, त्रिविक्रम, यज्ञ और हयग्रीव जैसे अवतार धारण किये। वैदिक वाङ्मय में यह सब मिलता है। पोराणिक कथाओं में थोड़ी बहुत कथा क्षेपक के रूप में आयी है, उससे सभी नये अवतारों का स्वामित्व भी विष्णु को प्राप्त होता है। बौद्ध और कल्की इस में एकदम नये अवतार हैं। परशुराम, कृष्ण आदि बहुत पहले के अवतार हैं।

द्वादशादित्य में विष्णु का एक नाम आदित्य मे दिया गया है। सूर्य भी विष्णु के ही अंश हैं।

इस पृथ्वी के उद्धारक वराह, प्रजापति का ही एक रूप हैं, ऐसा तैतिरिय संहिता में कहा गया है। समुद्र में से पृथ्वी को बाहर निकलने वाले वराह की भी गिनती दशावतार में की गई है। रामायण, महाभारत और पुराणों में ऐसी कथा मिलती है। दूसरे दो अवतारों का वर्णन ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है। 'शतपथ ब्राह्मण' में जलप्रपात से बचाने के लिये वायु, मत्स्य और प्रजापति का एक ही रूप है, ऐसा महाभारत में कहा गया है। मत्स्यपुराण में वह विष्णु का अवतार ही बन गया।

शतपथ ब्राह्मण में प्रजोत्पति की इच्छावाले प्रजापति, आदित्य, जलतत्व के कच्छरूप, नष्ट होते हुए साधनों का फिर से प्राप्त कराते हैं।

विष्णु की चौबीस-केशवादि मूर्तियाँ चार हाथों वाली होती हैं। उनके हाथों में विद्यमान शंख, चक्र, गदा और पद्म, इन चारों आयुधों के लोभ-विलोभ के क्रम से चौबीस विष्णु के स्वरूपों के नाम कहे गये हैं।

आरण्यक में विष्णु के यज्ञ अवतार की कल्पना को मूल बताया है। अश्विनी कुमारों ने यज्ञ का मस्तक यथास्थान फिर से ठीक बैठा दिया और यज्ञ करनेवाले देवों ने स्वर्ग वापस पा लिया। यज्ञ को घोड़े का सिर यथास्थान दिया, ऐसी कथा विष्णु पुराणों में मिलती है। इसलिये 'हयग्रीव' अवतार का मूल इसी कथानक में है।

विष्णु-रुद्र की पूजा लिंग के रूप में होती है, उसी तरह विष्णु की शालिग्राम के रूप में पूजा होती है। शालिग्राम कौन से तीर्थ में से प्राप्त करने चाहिए, उनका आकार, उनके ऊपर के चक्र, उनका वर्ण (रंग) और उनकी आकृति आदि के गुणदोष शिल्पग्रंथों में और पुराणों में विस्तार के साथ वर्णित हैं।

विष्णु के चौबिस अवतारों में से कौन-से अवतार की मूर्ति का स्वरूप शालिग्राम का है, इसका निर्णय अमुक वर्ण या चक्र आदि के चिन्हों से होता है।

विष्णु नाम को ध्यान में लेते हुए जो भिन्न-भिन्न आयुध हाथ में दिये गये है, ये उस प्रकार है:

अन्य ग्रंथका क्रम	विष्णुनाम	दायें नीचे	दायें ऊपर	बायें ऊपर	बायें नीचे
१	केशव	पद्म	शंख	चक्र	गदा
२	नारायण	शंख	पद्म	गदा	चक्र
३	माधव	गदा	चक्र	शंख	पद्म
४	गोविंद	चक्र	गदा	पद्म	शंख
५	विष्णु	गदा	पद्म	शंख	चक्र
६	मधुसूदन	चक्र	शंख	पद्म	गदा
७	त्रिविक्रम	पद्म	गदा	चक्र	शंख
८	वामन	शंख	चक्र	गदा	पद्म
९	श्रीधर	पद्म	चक्र	गदा	शंख
१०	ऋषिकेश	गदा	चक्र	पद्म	शंख
११	पद्मनाभ	शंख	पद्म	चक्र	गदा
१२	दामोदर	पद्म	शंख	गदा	चक्र
१३	संकर्षण	गदा	शंख	पद्म	चक्र
१४	वासुदेव	गदा	शंख	चक्र	पद्म
१५	प्रद्युम्न	चक्र	शंख	गदा	पद्म
१६	अनिरुद्ध	चक्र	गदा	शंख	पद्म
१७	पुरुषोत्तम	चक्र	पद्म	शंख	गदा
१८	अधोक्षण	पद्म	गदा	शंख	चक्र
१९	नरसिंह	चक्र	पद्म	गदा	शंख
२०	अच्युत	गदा	पद्म	चक्र	शंख
२१	जनार्दन	पद्म	चक्र	शंख	गदा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२२	उपेन्द्र	शंख	गदा	चक्र	पद्म
२३	हरि	शंख	चक्र	पद्म	गदा
२४	कृष्ण	शंख	गदा	पद्म	चक्र

कई ग्रंथों में विष्णु के नाम के क्रम-इधर-उधर हुए हैं, और कई जगह आयुधों में भी भिन्नता मिलती है। लेकिन यहां आयुधों को यथा-योग्य क्रम में रखने का प्रयत्न किया गया है।

विष्णु की मूर्ति स्थानक, आसन और शयन तीनों रूपों में मिलती हैं। आसनस्थ विष्णु की गोद में बैठी उनकी पत्नी लक्ष्मी के साथ, उनकी बहुत-सी मूर्तियां मिलती हैं। लक्ष्मी के अलावा ऋक्मिणी, सत्यभामा और श्री पृथ्वी भी होती है। जलशायी विष्णु की शयन-मूर्ति में विष्णु के साथ लक्ष्मी होती है।

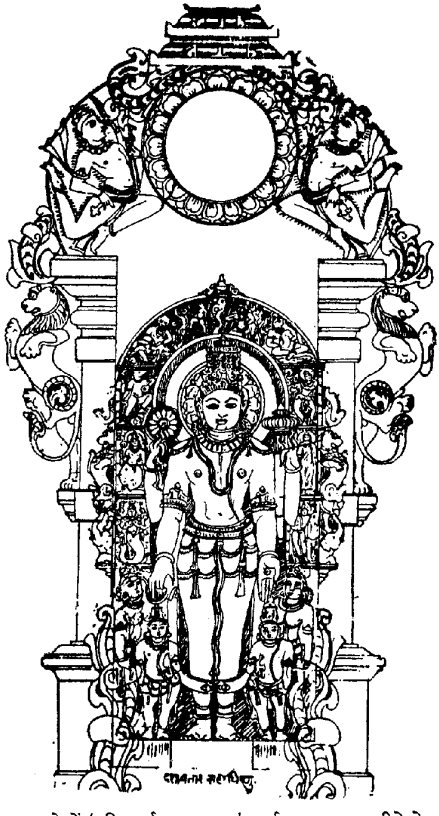

ग्रंथों में वर्णित आयुधों को धारण कराने में 'दक्षिणार्धः करक्रमात' अर्थात दाया हाथ नीचे के हाथ से ऊपर की ओर जाकर, बाया हाथ ऊपर के हाथ से नीचे के हाथ का क्रम रखा गया है। यह क्रम 'देवतामूर्ति', प्रकरण 'रूपमंडन', 'निर्णय सिंधु' और 'अभिलाषचिंतामणि' में वर्णित है।

उपरोक्त ग्रंथ में यह क्रम है:

२	शंख	चक्र	३
१	पद्म	गदा	४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य ग्रंथों में दूसरे प्रकार से यह क्रम दिया गया है।

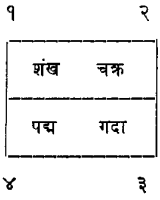

'दक्षिणोर्धकरक्रमात' अर्थात दायें ऊपरी हाथ से बायें ऊपरी हाथ और फिर बाया नीचा और दायां नीचा हाथ लेने का क्रम 'स्कंधऽ–पुराण', 'पद्म पुराण', 'वृद्धहरितस्मृति', 'तंत्रसार', 'शिल्परत्न', 'श्रीतत्वनिधि' आदि ग्रंथों में वर्णित हैं। यह क्रम समझकर आयुध धारण कराने से मूर्ति-विधान शास्त्रीय बनता है।

विष्णु किरीट-मुकुट, कुंडल, वनमाला जैसे आभूषण धारण करते हैं और उनका वाहन गरूड़ होता है। गरूड़ वीरासन मुद्रा में अंजली-युक्त हाथों की मुद्रा धारण किये बैठता है। गरूड़ चार हाथ वाला होता हैं। उसकी नासिका शुक जैसी होती है, उसके दो पंख होते हैं। चार हाथोंवाले गरूड़ के दो हाथ अंजलीबद्ध होते हैं। बाकी दो हाथों में से एक में छत्र और दूसरे में घट-कुंभ रहता है।

'विष्णु धर्मोत्तर' और 'हेमाद्रि' में दो हाथों वाली विष्णु मूर्ति को लोकपाल विष्णु कहा गया है। उनके दो हाथों में गदा और चक्र होते हैं।

विष्णु के अवतार

चौबीस विष्णुमूर्तियों के उपरांत उनकी बहुत–सी अवतार मूर्तियाँ भी पायी गई हैं। सामान्यतः दस अवतार माने गये हैं। फिर भी पुराण और भागवत में १९ से २२ अवतारों की संख्या भी मिलती है। प्रासंगिक रूप-प्रावाद्योंको भी अवतार ही मान लिया गया हैं। गीता में कहा है कि:

परित्राणाय साधुना विनाशायच दुष्कृताय्
धर्म संस्थापनार्थ ये संम्भवामि युगे युगे ॥ गीता ॥ १–८

इस तरह अवतार कल्पना के अनुसार साधु और धर्म के नाश के लिये विष्णु अवतार धारण करके पृथ्वी पर विविध स्वरूप में आते है। देव–दैत्य के बारह युद्ध हुए, तब किसी भक्त विशेष की आत्मा और प्राणों की रक्षा के लिये, या विश्व के उद्धार के लिये विष्णु भगवान को अवतार धारण करना पडता हैं।

'विष्णु धर्मोत्तर' में हंस, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, त्रिविक्रम, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, व्यास, दत्तात्रेय, पृथु, मोहिनी, कपिल, हयग्रीव, धन्वंतरी, ऐसे १९ स्वरूप वर्णित हैं। इसमें बुद्ध और कल्की का उल्लेख नहीं है, जो कि विष्णु के ही अवतार माने जाते हैं।

भागवत में विष्णु के अवतारों का यह क्रम दिया गया है: कुमार, वराह, नारद, नर नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ या सुयज्ञ, वृषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वंतरी, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण (२०); बुद्ध और कल्की अवतार भावी के गर्भ में वर्णित है। इस तरह भागवत में २२ अवतार बताये गये हैं।

कई जगह अवतारों के कई नाम नहीं दिये गये हैं। जैसे, नारद और हयग्रीव, वरदराज (गजेन्द्र मोक्षक) हंस, यह नाम दिये गये हैं।

शिल्प में सामान्यतः यह दस नाम प्रचलित हैं: मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वराह, वामन, भार्गवराम (परशुराम) राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की।

अब हम यह सभी का स्वरूप वर्णन देखें।

दशावतार श्लोक

१. मत्स्य

नाभि से नीचे का भाग मत्स्याकार है, और ऊपरी हिस्सा चार हाथवाला पुरुषाकार है। कोई दो हाथ के भी होते हैं। सर पर किरीट-मुकुट, कुंडल आदि अलंकार, दो हाथों में शंख और चक्र होते हैं। शतपथ में जलप्रलय में से बचानेवाले मत्स्य प्रजापति का ही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक मात्र रूप माना गया है। चार बालक रूप वेद धारण करते है।

२. कुर्मावतार

नाभि से नीचे कूर्माकृति और ऊपर पुरुषाकृति है। दो हाथों में कमल और गदा होती है। सर पर किरीट मुकुट जैसे अलंकार धारण किये होते हैं। कई जगह उनके साथ लक्ष्मी, सरस्वती और गरुड़ भी होते हैं। कई-कई जगह समुद्र-मंथन का दृश्य उकेरा जाता है। मंदरमेरु पर्वत पर आवेष्ठित वासुकि नाम की डोरी से, एक ओर देव और दूसरी ओर दानव खड़े समुद्र मंथन करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है कि प्रजापति–कच्छ ने जलप्रलय में नष्ट हो गई चीजें फिर से प्राप्त करवा दी थीं।

मत्स्य

कुर्मावतार

३. वराह अवतार

वराह अवतार, आदि वराह और नरवराह की भी मूर्तियां बनती हैं।

नृवराह

दो पैर वाली मनुष्याकृति पर वराह (सूअर) के मुख जैसा इसका स्वरूप है। पांच फणों वाले शेषनाग पर एक पैर रखा होता है। दो हाथ वाली मूर्ति का एक हाथ कमर पर रखा होता है। स्कंध पर भू देवी भी होती है। चार हाथ वाली मूर्ति में एक हाथ कमर पर रखा हुआ होता है। हाथ में गदा, शंख और चक्र धारण किये होते हैं। दांत में पृथ्वी को धारण किये होते हैं।

आदिवराह

वराह प्राणी के अगले पैर के पास मुंह के नीचे कूर्म, और उसके ऊपर शेष का मानवरूप दो हाथ जोड़कर स्तुति की मुद्रा में होता है। उसके माथे पर सात फणा रहती हैं। शेष की बायीं ओर पृथ्वीदेवी की छोटी त्रिभंग मूर्ति कूर्म पर खड़ी रहकर एक हाथ से वराह के मुख का स्पर्श करती है। पैर के पास शंख, चक्र, गदा और पद्म होते हैं। वराह की पीठ पर भिन्न-भिन्न पंक्तियों में अनेक देवस्वरूप उत्कीर्ण होते हैं। जैसे समुद्रमंथन, रामवनवास आदि। पैर के पास दिग्पाल और पुच्छ के नीचे कुंभ होता है। 'तैतेरिय संहिता' और 'शतपथ ब्राह्मण' में पानी में से पृथ्वी को बाहर निकालने का वर्णन है। उसे पृथ्वी के उद्धारक प्रजापति का रूप माना गया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४. नृसिंहावतार

शरीर मानव का और मुख सिंह का, तीक्ष्ण दांत, और चार हाथ, ऐसा भयंकर स्वरूप होता है। हिरण्यकश्यप को गोद में लेकर दो हाथों से उसे चीरते हुए, बाकी दो हाथों में गदा और चक्र धारण किये होते हैं। गले तक के लंबे बाल और जीभ मुख से बाहर निकली हुई होती है। आठ हाथोंवाले नृसिंह की करंड मूर्ति दो हाथों से हिरण्यकश्यप को चीरती हुई, बाकी दो हाथों में चक्र, शंख, पाश, अंकुश, वज्र और गदा धारण किये होती है। कई मूर्तियों के पैर के पास गंधर्व-मिथुन, लक्ष्मी, गरुड़ आदि होते हैं। किसी-किसी मूर्ति की दायीं ओर नारद और बायीं ओर प्रहलाद होते हैं। कई बार अष्ट दिग्पाल, लोकपाल भी उकेरे जाते हैं। कई जगह श्री और सरस्वती भी होती हैं।

वराहवतार

नृसिंहावतार

५. वामन

तात्विक दृष्टि से तीन डग में ही उन्होंने समस्त विश्व को नाप लिया था; इस कथानक के आधार पर उनके स्वरूप की कल्पना की जा सकती है। वामन ठिगने, श्रोतीय ब्राह्मण जैसे, यज्ञोपवीत धारण किये हुए और लंगोटीधारी होते हैं। उनके दोनों हाथों में कमंडल और छत्र होता है। सर पर शिखा है। वामन को दंड धारण करने का आदेश है। त्रिविक्रम वामन रूप है।

६. परशुराम

जामदग्नेय राम ने परशु-धारण की प्रतिज्ञा की थी; उनको दो हाथ होते हैं। उनके परशु धारण करने का आदेश 'रूपमंडन' में किया गया है। जबकि समरांगण सूत्रधार में उनके चार या आठ हाथ कहे हैं। सरपर जटा और कमर पर कटिका कंदोरा होता है। आंखे क्रोधपूर्ण लाल होती हैं। अग्नि पुराण में चार हाथ कहे हैं, उसमें धनुष, बाण, खड्ग, और परशु धारण करवाये हैं।

७. राम

भारत के लोक हृदय में बसे हुए दशरथ-पुत्र राजा राम के प्रति सभी भारतीयों के हृदय में अत्यन्त भक्तिभाव है। उनकी खड़ी आसनस्थ प्रतिमा के दो हाथों में धनुष-बाण हैं। 'अग्नि पुराण' में उनके चार हाथ कहे हैं; धनुष-बाण के उपरांत शंख और खड्ग भी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राम के आयुध माने गये हैं। 'समरांगण सूत्रधार' में राम को दो-चार और आठ हाथ के भी बताया हैं। उनमें शंख, चक्र, गदा आदि आयुध धारण करवाने का वर्णन है।

वामनावतार

परशुराम

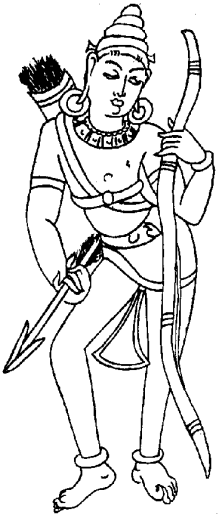

रामावतार

८. बलराम

शेषनाग के अवतार माने जानेवाले बलराम श्रीकृष्ण के भाई है। बलराम का स्वरूप संघर्ष का कहा जाता है। वे गौर वर्ण के और तामसी प्रकृति के माने जाते हैं। उनके दो हाथों में हल और मुशल होते है। चार हाथों वाले बलराम को हल और मुशल के उपरांत शंख और चक्र भी धारण कराये जाते हैं। उनकी मूर्ति के माथे पर सप्तमुखी नाग की छाया रहती है। उनके साथ उनकी पत्नी रेवती भी होती है। कई बार चार हाथोंवाली मूर्ति के ऊपरी दो हाथों में हल-मुशल और नीचे के एक हाथ में मद्यपात्र, और दूसरा कमर पर होता है। उनकी पत्नी रेवती के हाथ में कमल और कमंडल होता है। दस अवतारों में बलराम का स्थान कृष्ण को दिया गया है।

९. बुध्द

'रूपमंडन'कारने बुद्ध का वर्णन करते हुए कहा है कि उनका वर्ण रक्त है, वे पद्मासन में हैं, आभूषण और केशत्यागी हैं, काषाय वस्त्र धारण किये हुए हैं और दो हाथवाली अभय, और बाह्य मुद्रा में, प्रसन्न मुखमुद्रायुक्त होते हैं। दशावतार में जो बुद्ध के अवतार का उल्लेख है, वह बौद्धधर्म के संस्थापक तथागत बुद्ध का नहीं है, ऐसा कई विद्वानों का मत है; लेकिन उनका वर्णन तो तथागत से मिलता जुलता ही है।

१०. कल्की

विष्णु के दसवें अवतार कल्की, हाथ में खड्ग लिये, अश्वारूढ़ हैं। पुराणों में वर्णन है कि जब घोर कलियुग शुरू होगा और अधर्म प्रवर्तमान होगा, तब धर्म की स्थापना के लिये शंभल गांव में ब्राह्मण के यहां यह कल्की अवतार होगा। 'पंचरात्र ग्रंथ' में उनके चार हाथों में खड्ग, शंख, चक्र और गदा के आयुध वर्णित हैं। अन्य ग्रंथों में शंख, चक्र, तलवार और ढाल भी बताये गये हैं।

उपरोक्त सुप्रसिद्ध दशावतार के सिवाय, भागवत और पुराणों के अनुसार दूसरे भी १५ अवतार विष्णु भगवान ने लिये हैं। भक्तों का दु:ख दूर करने के लिए प्रासंगिक रूप से भगवान अनेक बार प्रकट हुए हैं। ऐसे अवतार भिन्न-भिन्न ग्रंथों में भिन्न-भिन्न रूपों में वर्णित हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बलराम–कृष्णावतार

बुधावतार

कल्की

अथदशावतार

मत्स्य कूर्म्मों स्वस्वरूपो नृवराहो गजांम्बुजम्
विभ्रत श्यामो वराहास्यो दंष्ट्रागे तुधृताधरो ॥१॥
नृसिहः सिह वक्त्रोऽति दंष्ट्रालः कुटिलोरुकः
हिरण्योरः स्थूलासक्त विदारणकरद्वयः ॥२॥
वामनः सशिखःस्यामो दंडी छत्राम्बुपात्रवान्
जटा जिव धरो रामो भार्गवः परशुंवधत् ॥३॥
रामः शरेषु धृक् श्यामः शर्शीर मुशलो बल
बुद्ध पद्मासनो रक्त स्त्यका भरण मूर्धला ॥६॥
कषाय वस्त्रो ध्यानरथो द्वि भुजोऽङ्कोर्ध्व पाणिकः
कल्की खड्गी हयारुढो व्ययतारा हरें रिमे ॥५॥ इति दशावतार विष्णु स्वरूप।

इस तरह दशावतार

अब हम यहां उन १५ अवतारों का स्वरूप वर्णन देखें:

१. ऋषभदेव

आदिकाल में नाभिराजा और मारुदेवी के घर ऋषभदेव ने जन्म लिया था, ऐसी कथा भागवत के पांचवें स्कंध में है, और ऋषभदेव की कथा के चार-पांच अध्याय उसमें हैं। सभी आश्रमों के श्रेष्ठ मार्ग उन्होंने दिखाये थे। उग्र तप का आचरण भी उन्होंने किया और जगत को व्यवहार मार्ग की ओर जाने के लिये भी बोध दिया। इसीलिए उनकी गिनती अवतारी पुरुष में हुई। ऋषभदेव की स्वतंत्र मूर्ति दिखाई नहीं देती। उनकी कल्पना तपस्वी के रूप में हो सकती है। जैन धर्म में ऋषभदेव के प्रथम तीर्थंकर माने गये हैं। बुद्ध को भी अवतारी पुरुष माननेवाले हिन्दू धर्म ने, जैन और बौद्ध दोनों धर्मों के प्रति सहिष्णुता का भाव रक्खा है, ऐसा कहा जा सकता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२. कपिल

गीता में कहा है कि वे बड़े तपस्वी थे। भागवत में उन्हें सांख्य-शास्त्र के प्रणेता माने हैं। उनके पिता कर्दम और माता हुति थे। पाताल में जब वे तप कर रहे थे, तब सागर पुत्रों ने उनको सताया था; तब कपिल मुनि ने उनकी ओर क्रोध से देखा था और वे सभी भस्म हो गये थे। गुजरात में सरस्वती के पास उनका स्थान माना गया है।

'विष्णु धर्मोत्तर' में उनका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा गया है कि पद्मासन युक्त, चार भुजावाले हैं; उनके नीचे के दो हाथ योगमुद्रा में हैं और ऊपर के दो हाथों में वे शंख और चक्र धारण किये हैं। वे जटा-मुकुट और यज्ञोपवीतधारी, तथा लंबी डाढ़ीवाले होते हैं। अन्य मत से उनके आठ हाथ वर्णित हैं, जिसमें अभय, चक्र, खड्ग, हल, कमरपट, शंख, पाश और दंड होते हैं।

३. दत्तात्रेय

अत्रि-ऋषि और अनुसूया के पुत्र। देवों ने अनुसूया के सतीत्व की परीक्षा करने के लिये नग्नावस्था में ही उससे भिक्षा ग्रहण करने का आग्रह किया; तब अनुसूया ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को बालक बनाकर, मातृभाव धारण करके उन्हें भिक्षा दी। इसीसे तीनों देव बड़े प्रसन्न हुए, और सती के यहां दत्तात्रेय बनकर अवतरित हुए।

'मार्कण्डेय पुराण' में एक दूसरी भी कथा है। अत्रि ऋषि ने पुत्र प्राप्ति के लिए उग्र तपश्चर्या की थी, तब ऋषि के मस्तक से त्रैलोक्य दाहक ज्वाला उत्पन्न हुई थी; उसे शांत करने के लिए तीनों देवों को अनुसूया के यहां जन्म लेना पड़ा।

'अग्नि पुराण' में दत्तात्रेय के दो हाथ कहे हैं, जबकि 'दत्तात्रेय-कल्प' में चार हाथ कहे हैं। दो हाथ व्याख्यान मुद्रा में, तीसरे में कमल, और चौथा घुटने पर ढाल कर, आंखें मुंदे बैठे होते हैं।

बदामी की गुफा में दत्तात्रेय की मूर्ति है। योगासन में बैठे हुए, वे चार हाथोंवाले होते हैं। ऊपरी दो हाथों में चक्र और शंख, नीचे के दोनों हाथ एक के ऊपर एक रहते हैं, और कई बार एक हाथ व्याख्यान मुद्रा में भी रहता है। मूर्ति की बैठक के नीचे नंदी, गरुड़ और हंस के तीन वाहन भी पाये जाते हैं। कभी पिछली पीठिका में दशावतार भी उत्कीर्ण होते हैं।

उत्तर भारत या गुजरात में दत्तात्रेय की प्राचीन मूर्ति नहीं मिलती है। महाराष्ट्र में बहुत से लोग दत्तात्रेय को मानते हैं। फिर भी वहां मध्यकाल के पहले की मूर्तियां नहीं दिखाई देतीं। लेकिन महाराष्ट्र की कल्पनानुसार उनके तीन मुख, छः हाथ, दो पैर हैं, उनके परिपार्श्व में चार कुत्ते और कामधेनु गाय हैं। पिछले दो सौ वर्षों के अरसे में ऐसे शिल्प उत्कीर्ण किये गये हैं।

४. हंस

सनकादि ने अपने पिता ब्रह्मा को तत्वज्ञान संबंधी कुछ प्रश्न पूछे। उनका समाधान ब्रह्मदेव भी न कर पाये। इसलिए ब्रह्मा ने, ईशचिंतन किया, उस समय हंस के रूप में प्रगट होकर ईश्वर ने प्रश्नों के उत्तर दिये। भागवत की इस कथानुसार हंस भी एक अवतार माना गया। 'श्रीतत्वनिधि' ग्रंथ में हंस-मूर्ति ध्यान में बैठी हुई, श्वेतवर्ण वाली, दो हाथ में शंख-चक्र धारण किये खड़ी वर्णित है। कक्ष में प्रिया स्त्रीरूप भी है।

५. कुमार

सनक, सुनंदन, सनातम् और सनत कुमार, इन चारों ब्रह्मपुत्रों ने अखंड ब्रह्मचर्य व्रत लेकर बड़ी कठिन तपश्चर्या विनष्ट की थी और देवत्व के मार्ग को पुनः जीवित किया था। इसलिये उनकी गिनती भगवान के अवतार के रूप में की गई है। उनका वर्णन बाल-स्वरूप में मिलता है। लेकिन उनका मूर्ति-शिल्प आज कहीं भी नहीं पाया जाता।

६. यज्ञ या सुयज्ञ

भागवत में यज्ञ-सुयज्ञ का वर्णन मिलता है। वे विश्व के दुःख दूर करनेवाले विष्णु के अंशावतार माने गये हैं। 'मत्स्यपुराण' में कहा गया है कि यज्ञ धर्म से उत्पन्न हुए हैं। इनकी भी मूर्ति कहीं नहीं दिखाई देती।

७. नारद

भागवत में नारद को भी अंशावतार माना गया है। नारद ने सात्वत तंत्र का उपदेश दिया था। शिल्पशास्त्र में उनके स्वरूप का कोई उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी 'नय संग्रह' में उनका वर्णन करते हुए कहा है कि उनके दो हाथों में अक्षमाला और कमंडल हैं, और बाये स्कंध पर वे बीना धारण किये हैं। उनका स्वरूप 'भक्त संग्रह' में भी वर्णित है।

८. पृथु

बहुत प्राचीनकाल में वेन नामक राजा के अनिष्ट आचरण से प्रजा को बहुत कष्ट हुआ था। ऋषिओं ने उन्हें उपदेश दिया फिर भी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वह नहीं सुधरा। इसलिये प्रजा ने ही उसका वध करके एक पुरुष उत्पन्न किया। उसने प्रथम, लोगों को कृषि विद्या सिखाकर, प्रजा को सुखी बनाया। अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रंथों में उनके राज्याभिषेक से संबंधित आख्यायिकाएं हैं। उन्हें पुराणों ने प्रभु के अंशावतार के रूप में माना है। 'विष्णुधर्मोत्तर' में पृथु का स्वरूप चक्रवर्ती राजेन्द्र जैसा बताया गया है।

९. त्रिविक्रम

विष्णु के २४ भेदों में भी त्रिविक्रम का स्वरूप दिया गया है। वामन और त्रिविक्रम के स्वरूपों में किंचित भेद है। हाथ में छाता, दंड, कमंडल और संन्यासी जैसा खुले सर वाला वामन का स्वरूप है।

'विष्णुधर्मोत्तर' में उनके ८ हाथ बताये हैं। दंड, पाश, शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए हैं। दोनों हाथों से शंख बजाता हुआ उनका मुख ऊर्ध्व होता है।

चार हाथ वाले वर्णन में कहा गया है कि एक हाथ से शंख बजाते हैं। और बाकी दो हाथों में अभय या चक्र और वरदमुद्रा होती है। दायां पैर नीचे और बायां पैर ऊर्ध्व आकाश में रहता है।

महाबलीपुरम के त्रिविक्रम अष्ट भुजायुक्त है। उनके हाथों में तलवार, गदा, बाज, चक्र, शंख, सुचिमुद्रा, ढाल और धनुष होते हैं। दायां पैर स्थिर और बायां पैर आकाश की ओर होता है। अगलबगल श्री और लक्ष्मी रहती हैं। त्रिविक्रम के माथे पर मुकुट रहता है।

मोढेरा के सूर्यमंदिर के त्रिविक्रम का स्वरूप इस प्रकार है: अतिभंग में विश्वरूप धारण करके वे खड़े हैं: उनके पैरों के पास वामन और बलिराजा दक्षिणा लेते हुए खड़े हैं। अजमेर के म्यूज़ियम में ऐसी ही एक मूर्ति है, जिसके चार हाथ, पद्म, गदा, चक्र और शंख धारण किये हैं। दाहिना पैर नीचे पृथ्वी का, और बायां पैर ऊँचे आकाश का रूपक व्यक्त करता है। त्रिविक्रम के माथे पर किरीट मुकुट होता है।

१०. हयशिर्ष

वैदिक वाङमय में वर्णित है कि अग्नि, इन्द्र, यज्ञ और वायु इन चार देवों ने मिलकर एक यज्ञ शुरू किया था। उसका दैवी यश अकेले यज्ञ ने ही ले लिया था। इससे बाकी के तीनों ने युक्ति से यज्ञ का शिरच्छेदन कर दिया था। और बाद में उसको अश्व का मस्तक जोड दिया गया था। ऐसा हयशिर्ष का स्वरूप है।

दूसरी एक कथा इस प्रकार है कि दैत्य का वध करने और मधु कैरभ को मारकर वेद वापस लाने के लिये भगवान को यह अवतार लेना पड़ा था।

'अग्नि पुराण' में हयग्रीव के चार हाथ बताये हैं। उनमें शंख, चक्र, गदा और वेद हैं। उनका बाया पैर शेषनाग पर और दाहिना पैर घूर्मपर होता है। वे अश्वमुख होते हैं।

'विष्णु धर्मोत्तर' के अनुसार उनके पैर पृथ्वी पर होते हैं। वे आठ हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, बाण, खड्ग, ढाल और धनुर्धारी होते हैं। वेदों के माथे पर उनका हाथ होता है। वे अश्वमुख, नीलवर्ण, और संकर्षण का अंश होता है।

हयग्रीव परम ज्ञानी, सर्वविद्या के उपासक माने जाते हैं। द्रविड़ देश में वे बहुत प्रचलित हैं। उत्तर भारत में उनकी मूर्तियों के मंदिर नहीं हैं।

११. नरनारायण

ये धर्म के पुत्र हैं। इन्होंने बद्रिकाश्रम में उग्र तप किया था, इसीसे इन्द्र ने इनके तपोभंग का प्रयत्न किया था। लेकिन उसमें वे असफल रहे। 'महाभारत' और 'देवी भागवत' में इनकी कथा है। श्रीकृष्ण और उनके मित्र की भी नरनारायण के रूप में कल्पना की जाती है। 'चमुर्वर्ग चिंतामणी' में उनका स्वरूप वर्णन करते हुए लिखा है कि, उनका वर्ण भूरा है, और उनके चार हाथ हैं, उनमें से दाहिने हाथों में शंख चक्र और बायें हाथों में गदा और पद्म या वीणा रहती है। दाहिनी ओर पद्मधारी मुष्टि है। जटामंडलयुक्त वे, अष्टट–चक्र रथ पर एक पैर टिकाये होते हैं, और उनका दूसरा पैर घुटनों से नारायणी के पास टिका होता है। बद्रीफल की टोकनी पास में रखी हुई होती है। किरीट मुकुट, केयूर, मकर–कुंडल आदि आभूषणधारी नरनारायण की बहुतसी मूर्तियां पायी जाती हैं।

१२. धन्वन्तरी

देवों और दैत्यों ने अमृत पाने के लिए समुद्र मंथन किया था, तब उसमें से जो चौदह रत्न निकले थे, उनमें अमृत से भरा घड़ा लेकर धन्वन्तरी भी प्रकट हुए थे। पुराणों में उनका वर्णन मिलता है। 'विष्णु धर्मोतर' में उनके स्वरूप–वर्णन में कहा गया है कि सुंदर मुखाकृतिवाले धन्वन्तरी के दोनों हाथों में अमृतकुंभ होता है। 'शिल्परत्नम' में उनको चार हाथों वाले बताया हैं। जिनमें कमल, अभय, अमृतकुंभ और शस्त्रयंत्र होते हैं। धन्वन्तरी ने पीत वस्त्र धारण किया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हयग्रीव

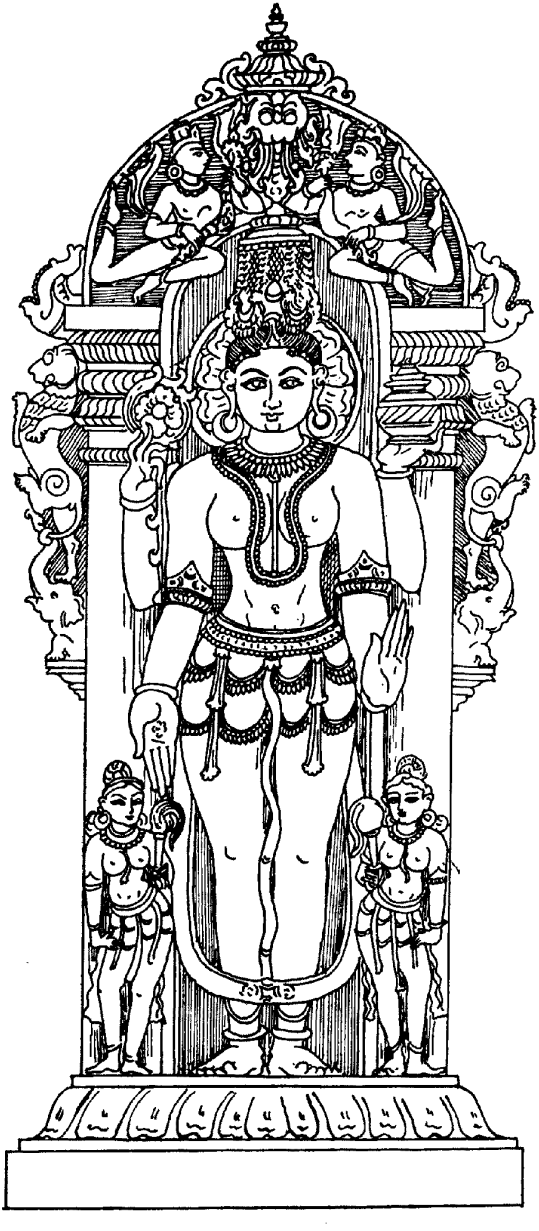

लक्ष्मी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१३. मोहिनी

समुद्र मंथन से धन्वन्तरी की तरह ही मोहिनी भी प्रकट हुई थी। क्योंकि अमृतकुंभ लेकर जब दैत्य भागे थे, तब सभी देवों ने विष्णु की प्रार्थना की थी। तब विष्णु ने मोहिनी का सुंदर स्त्रीरूप धारण करके दैत्यों को मोहित किया था और देवों को अमृत दिलाया था। भागवत में उसका वर्णन करते हुए कहा गया है : उसका वर्ण श्याम है, सुंदर यौवनयुक्त स्वरूप, रंगीनवस्त्र, और सर्वालंकार धारिणी मोहिनी 'विष्णु धर्मोत्तर' के अनुसार हाथों में अमृत–कुंभ के साथ प्रगट हुई थी।

१४. श्रीकृष्ण

विष्णु का यह अवतार बड़ा महत्वपूर्ण माना गया है। कृष्णावतार में उन्होंने अनेक अलौकिक लीलाएँ की थीं। वासुदेव ही कृष्ण हैं। उनके पिता वसुदेव है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम माने जाते हैं। उसी तरह कृष्ण लीला पुरुषोत्तम माने जाते हैं। राम के समान ही कृष्ण की पूजा की भी महत्ता है। भागवत, हरिवंश आदि पुराणों में श्रीकृष्ण के जीवन की लीला वर्णित है। बालकृष्ण, गौ–गोपाल, गोवर्धन–धारी, वेणु–गोपाल और कालियामर्दन आदि उनकी जीव–लीला के कई प्रसंग हैं। श्रीकृष्ण को तो दशावतार में भी स्थान है। कई जगह बलराम को भी वहां स्थान दिया गया है।

१५. व्यास

उन्होंने वेदों की व्यवस्था की थी, और शिष्यों को वेदाध्ययन करवाया था। महाभारत, पुराण आदि उन्होंने ही लिखवाये थे। कई विद्वान मानते हैं कि पुराणों में व्यास का स्वरूप इस तरह वर्णित हैं : व्यास कृष्ण वर्ण हैं, जटा धारी और दुर्बल शरीरवाले हैं। व्यास के पास उनके चार शिष्य सुमतु, जैमिनी, पैल और वैशम्पायन बैठे हैं।

विष्णु के दशावतार और पुराणों में वर्णित उनके प्रासंगिक रूप–अवतार के वर्णन के बाद अब हम विष्णु के प्रादेशिक रूपों का अवलोकन करें।

१. वरदराज

द्रविड़ प्रदेश में इनकी विशेष पूजा होती है। मद्रास, तांजोर और मैसूर में इनके बहुत मंदिर हैं। गजेन्द्र का मोक्ष करनेवाले विष्णु की कथा भागवत में है। द्रविड़ प्रदेश में वरदराज को बडी श्रद्धा के साथ पूजा जाता है। गजेन्द्र मोक्ष के शिल्पपट्ट (पेनल्स) गुजरात में बहुत मिलते हैं। विष्णुस्वरूप वरदराज के मंदिर उत्तर भारत में अभी तक नहीं पाये गये। वरदराज की मूर्ति के ऊपरी दो हाथो में चक्र और शंख हैं। नीचे का बायां हाथ वरदमुद्रा और दायाँ हाथ कटिहस्त मुद्रा में होता है।

२. व्यंकटेश

यह बालाजी के नाम से द्रविडमें पूजे जाते हैं। सुप्रसिद्ध तिरुपति व्यंकटेश्वर का मंदिर मद्रास के पास है। उसकी चार भुजाओं के ऊपरी दो हाथो में शंख–चक्र और नीचे के हाथ अभय और कठयंबलित मुद्रा में कमर पर रखे हुए होते हैं। उनका वाहन गरुड़ और मारुती है, चिह्न पद्म है। हाथों में शिव का चिह्न भुजंग वलय होता है। इस स्वरूप की उत्तर भारत में कोई प्राचीन मूर्ति नहीं मिली। लेकिन अब चालीस वर्षों में उनकी धातुमूर्ति के मंदिर उत्तर भारत में हुए हैं।

दक्षिण में श्रीरंगजी के नाम से रंगनाथ धाम पहचाना जाता है। वहां विष्णु की योगासन–ध्यानस्थ मूर्ति है।

३. विठ्ठल : विठोबा

यह विष्णु का अपभ्रंश नाम है। महाराष्ट्र में इसे बहुत माना जाता है। पंढरपुर में इसका मुख्य मंदिर है। भक्त पुंडरिक की भक्ति के कारण भगवान को अवतार लेना पड़ा, ऐसी दंतकथा पंढरपुर के विठ्ठल महात्म्य में है। दो हाथ कमर पर रखे हुए चार हाथवाले यह देव हैं। ऊपरी दो हाथों में कमल और शंख हैं। अन्य आभूषणों में मुकुट, हार, माला, कुंडल आदि पहने होते हैं। उनके कक्ष में रुक्मिणी खड़ी मूर्ति कमल वरदमुद्रा में है। पंढरपुर में ऐसी श्याम वर्ण की मूर्ति बहुत पायी जाती हैं। बंबई के पास शहाड के विठ्ठल मंदिर में भी सुंदर मूर्ति है।

१. बालकृष्ण

बाल स्वरूप कृष्ण की घुटनों के बल चलती हुई बहुत सी धातुमूर्तियाँ पायी जाती हैं। उसे लालजी भी कहते हैं। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में कृष्ण के ऐसे बालस्वरूप को ही मानते हैं। रामानंदी साधु भी इसी स्वरूप को मानते हैं। "वैरवानस आगम" में उसे 'नवनीत नट' का नाम दिया गया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कालिया मर्दन

KALIYA-MARDAN.

CELLING.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कालिया मर्दन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बलराम–रोहिणी

राधाकृष्ण

२. वेणुगोपाल

यह भी श्री कृष्ण का ही बाललीला का स्वरूप है। पैरों में आंटीं लगाकर त्रिभंग स्वरूप में बंशी बजाती कृष्ण की ऐसी मूर्ति गोपाल कृष्ण के नाम से पहचानी जाती है।

जब कृष्ण राधा के साथ होते हैं तब वे राधाकृष्ण के नाम से पुकारे जाते हैं। वैखानस आगम और विष्णु धर्मोत्तर पुराण में विविध भेद दिये गये हैं।

३. गोवर्धनधारी

श्री कृष्ण की बाललीला का समय चमत्कारिक प्रसंगों का है। इंद्र पूजा के नष्ट करनेके लिए और अतिवृष्टि से गोकुल को बचानेके, लिए कृष्ण ने अपनी अंतिम अंगुली पर गोवर्धन पर्वत धारण किया था, ऐसी कथा है। दो हाथ धारी कृष्ण विभंगत्र स्वरूप मे, पैर में आटी डाल कर, बाये हाथ से पर्वत धारण किये खडे हैं। दाये हाथ में लकड़ी है। बाजू में गायें और गोप बाल है। उन्होंने भी लकड़ियों से पर्वत को टिकाया हुआ है। चार हाथों के गोवर्धनधारी कृष्ण का स्वरूप इस प्रकार है। ऊपरी एक हाथ से गोवर्धन पर्वत धारण कर रखा है। अन्य हाथो में मुरली, शंख और चक्र हैं। इस प्रकार की मूर्तियां भी देखी जाती हैं। किरीट मुकुट और अन्य अलंकार युक्त कई स्वरूप भी गोवर्धनधारी के हैं। साथ में गौ है।

४. कालियामर्दन

श्री कृष्ण की बाललीला का ही यह एक स्वरूप हैं। यमुना में कालिया नामक नाग लोगों के लिए बड़ा घातक था। इसलिये कृष्ण बाललीला के बहाने यमुना में जाकर नाग को बाहर ले आये और उसके माथे पर नृत्य करते हुए बंशी बजाने लगे। कई जगह इस स्वरूप में कृष्ण के चार हाथ दिखाये हैं। एक हाथ से कालिया नाग की पूंछ पकडकर शंख, चक्र और वेणु के साथ वे खडे हैं। उनके साथ उनके चारों ओर कालिया नाग की आठ पत्नियां कृष्ण की स्तुति करती हैं। ऐसे शिल्प दीवाल पर या छत में उकेरे होते बहुत देखने में आते है।

विष्णु की आठ भुजा, चार भुजा और दो भुजा की मूर्तियां नगर के द्वार, देवमंदिर या घर में रखने के लिए मत्स्य पुराण में कहा गया है।

For Private And Personal Use Only

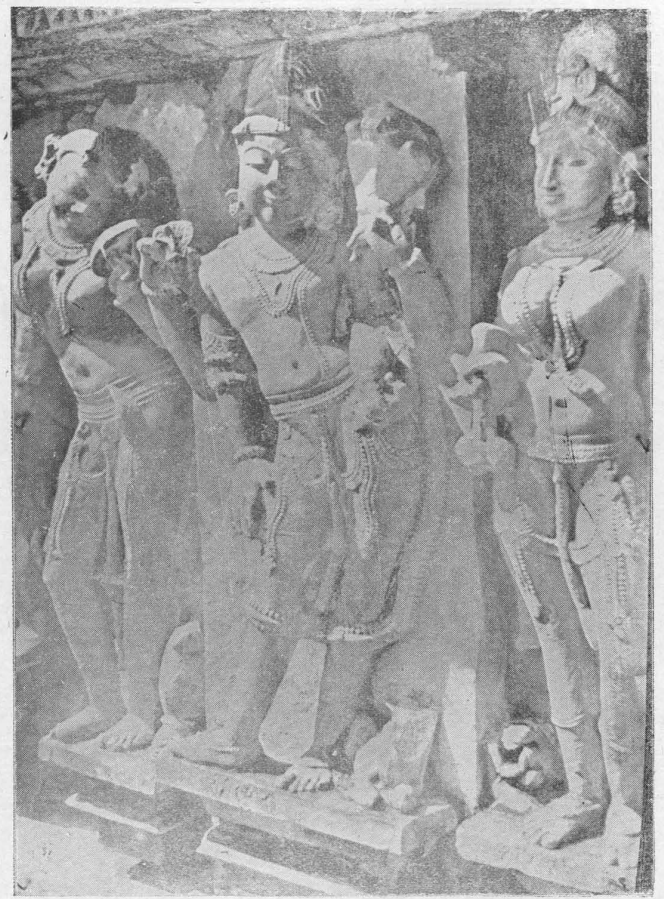

स्पदर्पणा देवांङ्गना, शिवपार्वती खजुराहो, मध्य प्रदेश

विष्णुलक्ष्मी, खजुराहो प्रासाद, मध्य प्रदेश

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra
www.kobatirth.org
Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir
For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूर्यमूर्ति-कोणार्क (उड़ीसा)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१. अष्टभुज विष्णु :

दायें चार हाथों में खड्ग, गदा, बाण और पद्म तथा बायें चार हाथों में धनुष, ढाल, शंख और चक्र होते हैं। ऐसी मूर्ति नगर के द्वार पर रखनी चाहिए।

गोवर्धनधारी कृष्ण

कालीया मर्दन कृष्ण

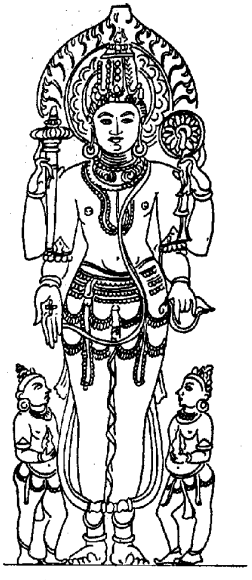

विष्णु

२. चतुर्भुज विष्णु :

दायें हाथों में गदा-पद्म और बायें हाथों में शंख-चक्र होते हैं। ऐसी मूर्तियां राजभवन या श्रीमंतों के महालयों में रखनी चाहिए।

३. द्विभुज विष्णु (कृष्णावतार) :

बायें हाथ में गदा और दायें में शंख या चक्र होता है। पैर के पास पृथ्वी और बायीं ओर पद्मधारी लक्ष्मी होती है। वाहन गरुड होता है। ऐसी मूर्तियां घरों में रखनी चाहिए।

४. योगेश्वर विष्णु :

श्वेत कमल पर पद्मासन में बैठे हुए विष्णु के चार हाथ होते हैं। ऊपर के दो हाथों में शंख-चक्र होते है। बाकी दो हाथ योग-मुद्रायुक्त होते हैं। अर्धमीलित चक्षु, करंड मुकुट, सर्व आभूषण युक्त शरीर पर यज्ञोपवीत भी रहता है। उनके पीछे ब्रह्मा और शिव भी रहते हैं। पैर के पास गदा और कमल होता है।

कई जगह विष्णु के चार मुख भी वर्णित किये गये हैं। 'देवता मूर्ति प्रकरण', 'रूपमंडन', 'विष्णु धर्मोत्तर', आदि ग्रंथों में उनके चार, छः, आठ, बारह, चौदह और बीस भुजाओं के भी स्वरूप वर्णित हैं। वे गरुड़ पर बिराजमान हैं। उनके चार मुख इस प्रकार हैं : सन्मुख मनुष्य का नरसिंह का, बाया वराह का और पीठ का मुख दृष्यमान नहीं है। फिर भी उसे स्त्री मुख कहा गया है।

'देवता मूर्ति प्रकरण' (अनंत) तथा 'रूपमंडन' और 'अपराजितसूत्र' में विष्णु को चतुर्मुख, और बारह भुजा युक्त वर्णित किया गया है। दायें हाथों में गदा, तलवार, चक्र, वज्र, अंकुश, वरदमुद्रा और बायें हाथों में शंख, ढाल, धनुष, कमल, दंड, पाश होते हैं। श्वेत वर्ण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और गरुड़ का आसन होता है। यह वर्णन 'रूपमंडन' और 'विष्णु धर्मोत्तर' में मिलता है।

किरीट-मुकुट, कुंडल आदि सर्व आभूषण युक्त तथा योगमुद्रा या ज्ञानमुद्रायुक्त अनंत भगवान की चौदह हाथों की मूर्तियों का आधार नहीं मिलता है।

१. अनंत विष्णु :

'विष्णु धर्मोत्तर' ग्रंथ में उनका वर्णन इस प्रकार है : चार भुजा, मस्तक पर सर्प का फन, दायें दो हाथो में कमल और मुशल तथा बाये दो हाथों में हल एवं शंख या सुरापात्र होता है। इस तरह बलराम का स्वरूप अनंत रूप है। वे शेषनाग के अवतार माने जाते है। वे सर्व आभूषणयुक्त हैं और मस्तक पर के सर्प के फन पर पृथ्वी है।

२. त्रैलोक्य मोहन :

अग्निपुराण में उन्हें अष्टभुज और चतुर्मुख कहा है। दायें हाथों में चक्र, बाण, मुशल और अंकुश है, जब कि बायें हाथों में शंख, धनुष, गदा और पाश हैं। गरुड़ का वाहन और उनके दोनों ओर लक्ष्मी तथा सरस्वती हैं।

'विष्णु धर्मोत्तर', 'देवता मूर्ति प्रकरण' और 'रूपमंडन' में उन्हें सोलह भुजा के कहा गया है। दायीं भुजाओं में गदा, चक्र, अंकुश, बाण, भाला, चक्र, वरदमुद्रा और बायीं भुजाओं में श्रृग, कमंडल, कमल, शंख, सारंग, पाश या मुग्दर, बाकी दो हाथोंकी योगमुद्रा होती हैं। वे सर्व अलंकारयुक्त होते हैं। उपरोक्त चार मुख।

योग-मुद्रा के दो हाथों के सिवा चौदह भुजा के स्वरूप को त्रैलोक्य मोहन भी कहा है।

३. विश्वरूप :

'अग्निपुराण' और 'रूपमंडन' में बीस भुजा और चार मुख वर्णित हैं। दायीं भुजाओं में चक्र, तलवार, मुशल, अंकुश, पद्म, मुग्दर, पाश, शक्ति, त्रिशूल और बाण होते हैं। बायीं भुजाओं में शंख, धनुष, गदा, पाश, तोमर, नागर, फरसी, दंड, छुरिका और ढाल होतें है। गरुड़ासीन इस स्वरूप के अगलबगल लक्ष्मी और सरस्वती हैं। उपरोक्त चार मुख।

'रूपमंडन' में दो हाथ योगमुद्रा के लिये वर्णित हैं।

'रूपमंडन' में वर्णित चार भुजा और बीस भुजाओं के आयुधो में अन्तर है।

योगमुद्रा, पताका, वज्र, फल और पुष्पमाला, यह अन्य आयुधों की जगह, 'रूपमंडन' में वर्णित हैं।

दस हाथ की भी कई मूर्तियाँ दिखाई देती हैं, लेकिन उनके लिए शास्त्रों का आधार नहीं मिलता। वरद, अभय और योगमुद्रायुक्त चार हाथों की ये मुद्रायें वैकुंठ के अन्य चार आयुधों की जगह हैं। इस मूर्ति के नीचे पृथ्वी देवी होती है।

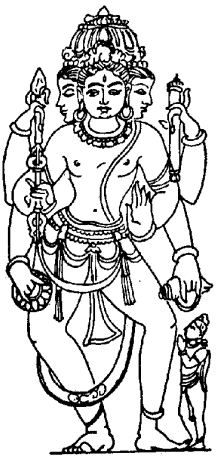

श्री अनंत भगवान

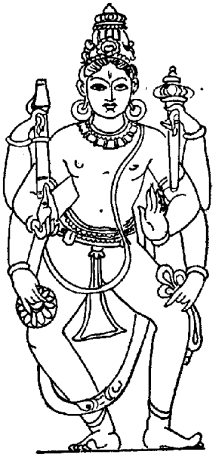

श्री त्रैलोक्य मोहन

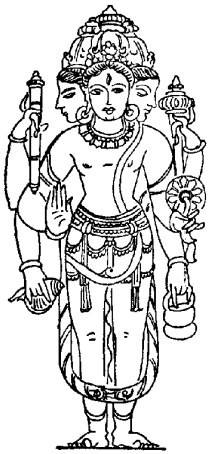

श्री त्रैलोक्य भगवान (अन्यमत)

हरिहर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

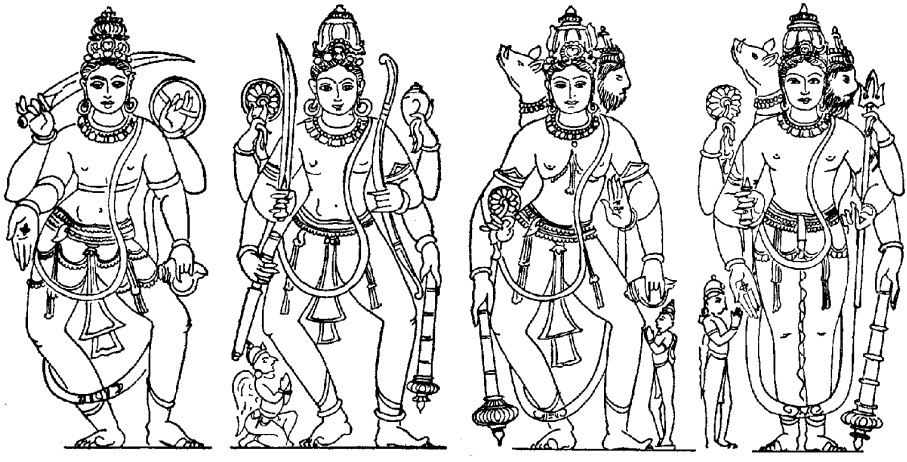

कृष्णकार्तिकेय पुरुषोत्तम वैकुंठ विश्वरूप

'देवता मूर्ति प्रकरण' में बीस भुजा के विश्वरूप के आयुधों में भी अन्तर मिलता है। दो हाथों में पताका और दो हाथ योगमुद्रायुक्त होते हैं।

४. वैकुंठ :

'रूपमंडन' में उन्हें चारमुख और आठ भुजा के कहा गया है। दायीं भुजा में चक्र, बाण, तलवार, गदा और बायीं भुजा में शंख, ढाल, धनुष, कमल हैं। 'मानसोल्लास' और 'विष्णुधर्मोत्तर' में उन्हें चार हाथों के कहा है।

गरुड़ पर सवार यह मूर्ति सर्वालंकार युक्त होती है।

चतुर्मुख-गरुड़ासन :

विष्णु के ये चार स्वरूप अनंत, त्रैलोक्य मोहन, विश्वरूप और वैकुंठ की सुंदर मूर्तियाँ 'अपराजित', 'सूत्रधार', 'देवता मूर्ति प्रकरण' और 'रूपमंडन' के वर्णन के आधार पर गुजरात और राजस्थान में बहुत देखी जाती हैं।

'अग्निपुराण' या 'विष्णुधर्मोत्तर' के ग्रंथों के पाठ के अनुसार मूर्तियाँ शिल्पित अभी तक नहीं पायी गयीं।

शेषशायी विष्णु :

विष्णु को शयन प्रतिमा शेषशायी या जलशायी कहा जाता है। शेषनाग पर शयन करने से शेषशायी और क्षीरसागर--जल में शयन करने से उन्हें जलशायी कहा है। अनंत काल तक शयन करने से वे अनंतशायी भी कहे गये हैं। पृथ्वी के उद्धार के लिये महाप्रलय तक शेष पर्यंक पर उन्होंने समुद्र-निवास किया, ऐसी पुराणों में कथा है।

क्षीर समुद्र में शेषशायी बायीं ओर शयन करते हैं। माथे पर पाँच या सात फण, हैं, लक्ष्मी जी पैर दबाती हैं। चारों भुजाओं में, बायीं ओर शंख-चक्र और दायीं ओर गदा-पद्म धारण किये होते हैं।

नाभि कमल से उद्भवित ब्रह्म स्तुति करते हैं। नाभि-कमल के कारण वे 'पद्मनाभ' कहे गये हैं। कई जगह एक हाथ माथे के नीचे रखा हुआ मिलता है। कमलकी नाल में मधु-कंटभ नामक राक्षस हैं ऐसा भी कई मूर्तियो में पाया जाता है।

शेषशायी भगवान की मूर्ति के चारों ओर देवता स्तुति करते हैं। आसपास ऋषि-मुनि, हंसारूढ़ ब्रह्मा, वृषारूढ़ उमा-महेश आदि होते हैं, ऐसी मूर्ति में नाभि-कमल से निकलते ब्रह्मा नहीं होते हैं।

ब्रह्मदेश में जलशायी मूर्ति के नाभि-कमल के तीन विभाग होकर ऊपर के पक्ष पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश होते हैं।

लक्ष्मी-नारायण :

गरुड़ पर या आसन पर बैठे हुए विष्णु का दायां पैर लटकता होता है और बाये पैर पर लक्ष्मी जी बिराजमान होती हैं, जिनका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

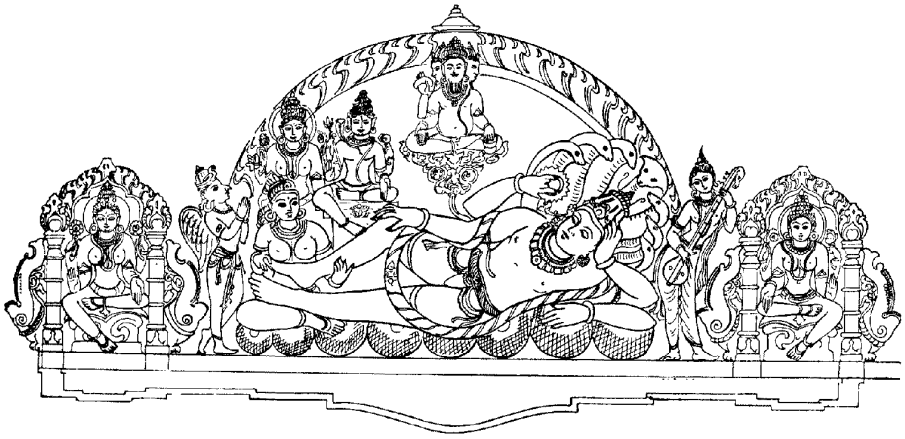

शेषशायी विष्णु

दायां हाथ विष्णु के गले पर आलिंगनयुक्त होता है और बायें हाथ में कमल है। विष्णु-नारायण के चार हाथ होते हैं। उनमे शंख, पद्म, गदा और चक्र होते हैं। आयुध के साथ ही उनका बायां हाथ लक्ष्मीजी की कमर पर आलिंगनयुक्त मुद्रा में होता है। लक्ष्मी-केशवकी मूर्ति भी लक्ष्मी-नारायण जैसी ही होती है, लेकिन केशव के आयुध कम होते हैं।

इसी प्रकार की ब्रह्मा-सावित्री और उमा-महेश की युगल मूर्तियां भी दिखाई देती हैं। इन तीनों देवों की खड़ी परस्पर आलिंगनबद्ध मूर्तियाँ भी पायी गई हैं। ऐसी युग्ममूर्तियाँ प्रासाद के प्रदक्षिणा-मार्ग की जंघा में या देव-प्रासाद के भद्र के गवाक्ष में मिलती हैं।

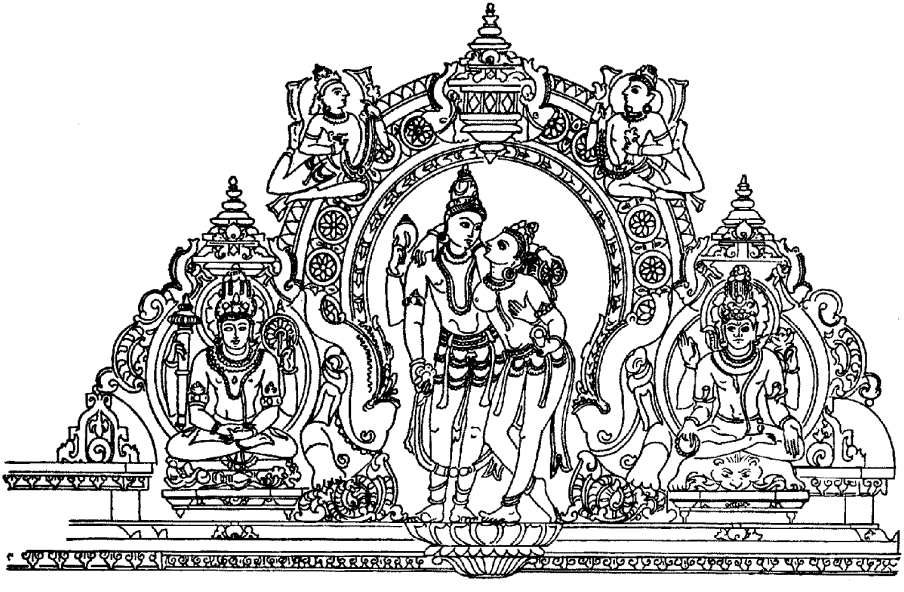

योगेश्वर विष्णु विष्णु–लक्ष्मी योगेश्वर शिव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विष्णु के स्वरूप-वर्णन के अंत में कहा गया है :

नमोस्त्वनंताय सहस्र मूर्तये, सहस्र पदाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्र नाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्र कोटि युग धारिणे नमः ।

हजारों स्वरूपवाले, हजारों चरणवाले, हजारों नेत्रवाले, हजारों मस्तकवाले, हजारों पैरवाले, हजारों बाहुवाले, अंत रहित, हजारों नामवाले, सहस्र कोटि युगों की धारण करनेवाले शाश्वत परम पुरुष को नमस्कार हैं।

शालिग्राम :

जैसे शिव का अव्यक्त स्वरूप लिंग है, वैसे ही विष्णु का प्रतीक शालिग्राम है। लेकिन जैसे शिवलिंग के मंदिर हैं, वैसे शालिग्राम के स्वतंत्र मंदिर नहीं पाये जाते।

शालिग्राम गोल, चपटे होते हैं। चक्र की आकृतिवाले और छिद्रवाले भी होते हैं। गंडकी नदी से वे प्राप्त होते हैं। शालिग्राम की शिला में सुवर्ण का अंश होने से उसे हिरण्यगर्भ भी कहा जाता है।

शालिग्राम के ऊपर अंकित चिह्न चक्र, वर्ण आदि के माध्यम शास्त्रकार पहचान जाते हैं कि वे कौन से विष्णु भगवान का प्रतीक है। शालिग्राम जितना छोटा होता है, उतना ही वह अधिक पूज्य माना जाता है।

शालिग्राम के गुण-दोष उसके चिह्न या आकृति पर से समझे जाते हैं। शालिग्राम की प्रतिष्ठा करने का निषेध है। विष्णुमंदिर में मूर्ति के पास शंख और शालिग्राम दोनों रखे जाते हैं। रामानुज संप्रदाय में शालिग्राम के पूजन-अर्चन की बड़ी महिमा है।

गरुड़ :

श्री विष्णु का वाहन गरुड़ है। उसके चार भुजाएं होती हैं। एक हाथ में छत्र और दूसरे में पूर्णकुंभ होता है। दो हाथ अंजलिमुद्रायुक्त होते हैं। उसका वर्ण मरकत मणि-जैसा होता है। नासिका शुक जैसी, उसके पैर गिद्ध पक्षी जैसे होते हैं। उसे पंख भी होते हैं और अलंकारों से वह विभूषित होता है। उसकी मुद्रा गरुड़ासन की विरासन होती है।

विष्णु आयतन :

केशव, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न या अनिरुद्ध को मध्य में स्थापन करके पूर्व में नारायण, अग्निकोण में जनार्दन, दक्षिण में पुंडरीकाक्ष। नैऋत्य में पद्मनाथ, पश्चिम में गोविंद, वायव्य में माधव, उत्तर में मधुसूदन और ईशान्यकोण में विष्णु की स्थापना की जाती है।

अगर मध्य में जलाशयी स्वरूप रखा जाय तो अगलबगल दशावतार रखकर, वराह को प्रथम रखना चाहिए।

चार दिशा के आठ प्रतिहार विष्णु-प्रतिहार हैं। पूर्व में चंड-प्रचंड, दक्षिण में जय-विजय, पश्चिम में धाता-विधाता और उत्तर में भद्र-सुभद्र हैं। ये आठों वामनाकार बनाने चाहिए। उनके आयुध इस प्रकार हैं : तर्जनी, शंख, चक्र, दंड, पद्म, खेटक गदा, खड्ग, बाण, धनुष।

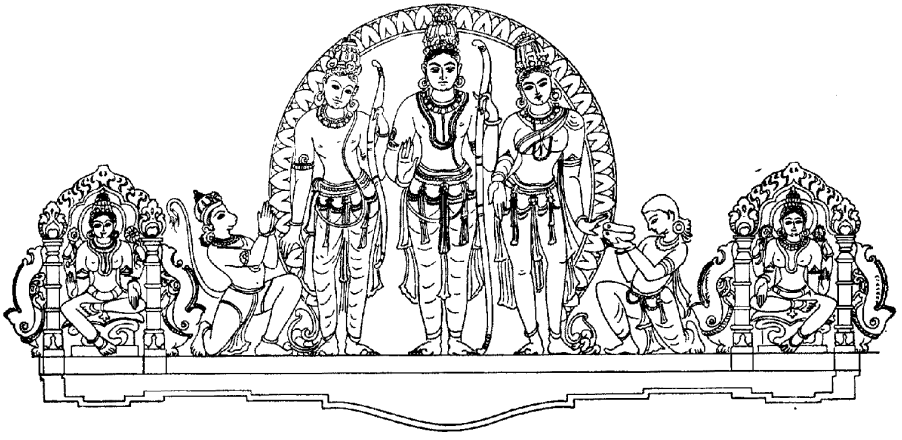

महाभारती हनुमंत लक्ष्मण राम सीता भरत श्रीआर्या

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्क : अष्टादशम्

महेश–शिव–रुद्र

शिव या रुद्र के अनेक नाम हैं। ये नाम विविध कथानक से आये हैं। संहिताओं और उपनिषदों में ये आख्यायिकाएँ दी गई हैं और उन्हीं के आधार पर उनका नामाभिधान किया गया है। वेदों में भी उनके स्वरूप का वर्णन है।

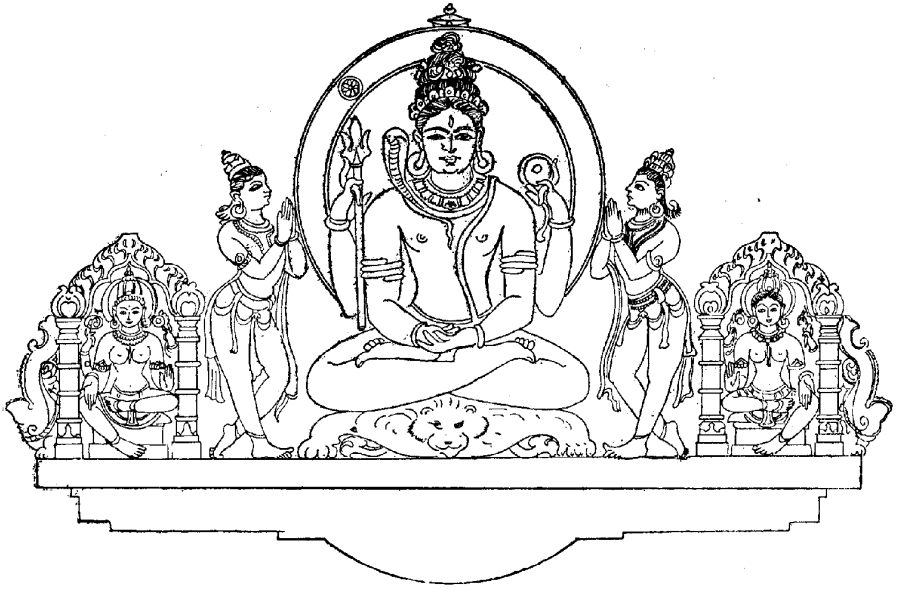

उमा शिव–योगासन पार्वती

पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यौ ये तीन जिनकी माताएँ हैं, वे त्र्यंबक कहे गये। अथर्व वेद में भव, शर्वा, पशुपति, उग्र, रुद्र, महादेव, भीम और ईशान ये आठ नाम शिव के बताये गये हैं। पुष्पराज गंधर्व के महिम्न स्तोत्र में भी यही आठ नाम दिये गये है। उसमें ईशान को ईशान कोण के दिग्पाल के रूप में भी लिया गया है। यो तो शिवजी के हजारों नाम हैं, लेकिन अमर कोश में ४८ नाम दिये गये हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंधकासूर वध

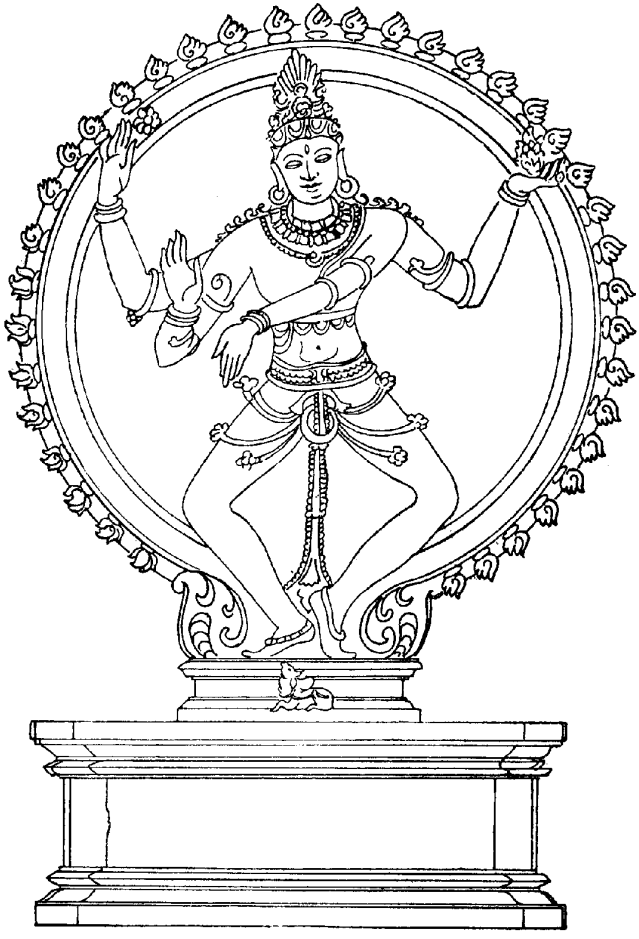

नटराज

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण में कथा है कि कन्या के साथ गमनार्थ प्रजापति ने मृग का स्वरूप धारण किया और उसके पीछे दौड़ तब रुद्र ने पशुपति का रूप लेकर प्रजापति के पाँचवें मुख का बाण से वध किया। इसलिये वे पशुपति के नाम से पहचाने जाते हैं।

त्रिपुर दाह कथानक में असुरों के तीन नगरों का नाश करके असुरों को रुद्र ने मार भगाया। ऐसी कथा संहिता और ब्राह्मण ग्रंथों में है। अथर्व वेद में रुद्र को अंधक घातिन का विशेषण दिया गया है। उसमें अंधकासुर के वध की कथा का बीज है।

वेदों की रचना के काल के पहले शिवपूजा होती थी। प्रागैतिहासिक काल में शिव का स्वरूप निरंजन-निराकार था, वे स्मशान में रहते और वहाँकी भस्म शरीर पर लगाते थे। मुंडमाला धारण किये, खोपड़ी में भिक्षा ग्रहण करके भूत-प्रेतादि के संग रहते थे। सर्पों को अलंकार के रूप में धारण किये ये शिवजी महायोगी से भी बढ़कर थे। उनके ऐसे आचार से अनार्यों ने उनको देव के रूप में स्वीकार किया। बाद में द्रविड़ संस्कृति में भी उनको स्वीकार किया गया। आर्य और अनार्य के घोर विरोध के बावजूद रुद्र के इन्हीं त्यागमय गुणों के कारण आर्यों ने भी रुद्र को स्वीकार किया है।

पश्चिम के कई लोग शिवजी को गंदे देव कहते हैं। लेकिन वे अल्पज्ञ और अज्ञानी लोग रुद्र के स्वरूप को ठीक समझ नहीं सके। हमारे देवदेवियाँ कई गुणों के प्रतीक समझे जाते हैं। रुद्र भी इसी प्रकार के देव हैं: त्यागी, निर्लोभी, निर्लेप।

अपनी निस्वार्थ वृत्ति एवं भोलेपन के कारण ही वे महादेव कहलाते हैं।

देव हो या दैत्य भक्ति से प्रसन्न होकर, वरदान देते समय शंकर को जगत बराबर लगता था। समुद्रमंथन से निकाला हुआ हलाहल विष कौन पीये ? जगत के भले के लिये इस हलाहल विष का पान करके वे नीलकंठ बने।

रुद्र-शिव के प्रतीक लिंग की पूजा, मूर्ति-पूजा के आरंभ काल की पूजा है। तब निरंजन निराकार की पूजा के लिए लिंग-पूजा का प्रारंभ हुआ। सृष्टि सर्जन में प्रजोत्पत्ति आवश्यक होने की वजह से प्रकृति और पुरुष की मान्यता पैदा हुई। प्रकृति माया तथा स्त्री-योनी है। मध्यएशिया में प्रकृति और पुरुष को आदम और हवा के नाम से पूजा जाता था। एशिया और योरप में यह पूजा प्रचलित थी।

योरप के कई देशों में पंद्रहवीं सदी तक यह प्रथा प्रचलित थी। इसीलिये वहाँ लिंग के अवशेष मिलते हैं। इंग्लैन्ड, फ्रांस, इटली, नोर्वे आदि देशों में और अमेरिका के मेक्सिको में लिंगपूजा के प्राचीन अवशेष मिलते हैं।

(सजीव) सृष्टि योनि और लिंग के सहयोग से ही उत्पन्न होती है। जगत के उत्पत्तिकर्ता का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक सयोनि-लिंग है। इसीलिये कर्ता का सर्वश्रेष्ठ प्रतीकपीठिका युक्त शिवलिंग की पूजा बिना झिझक होने लगी। इस प्रकार लिंगपूजा का प्रारंभ हुआ।

लेकिन वैष्णव संप्रदाय में मर्यादा के कारण लिंग की जगह शालिग्राम को दी गई। फिर भी वह लिंगपूजा इतनी व्यापक नहीं हुई क्यों कि शैव संप्रदाय के आचरण में सरलता बहुत है लेकिन वैष्णव संप्रदाय के आचार बहुत ही कठोर हैं।

शिव के भक्त वर्ग में बहुत से विद्वान हुए। इन भक्त गणों में पाशुपत, लकुलिश, कापालिक, कालमुख, वीर शैव, आदि हुए। वे तत्त्वज्ञानी और ग्रंथकार थे। लकुलिश शिव का २८ में अवतार मनाते है।

शिवपूजा के दो प्रकार हैं। व्यक्त और अव्यक्त। व्यक्त -- शिवमूर्ति और अव्यक्त – शिवलिंग।

भारत में सभी जगह ये दो प्रकार प्रचलित हैं। लेकिन द्रविड़ में शिवपूजा का प्रचार विशेष है।

तीसरा प्रकार है, व्यक्ताव्यक्त। लिंग और तीन या पाँच मुख की पूजा को व्यक्ताव्यक्त प्रकार कहते हैं।

प्रथम प्रकार : व्यक्त : शिव के भिन्न भिन्न स्वरूप कहे गये हैं। मूर्ति के भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। उनकी मूर्ति को चार, छः, आठ, दस, बारह या विशेष भुजायुक्त भी बताया गया है। विशेष भुजाओं के एकादश और द्वादश स्वरूप कहे गये है। सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान, इन पंचमुखों के अलावा मृत्युंजय, विजय, किरणाक्ष, अघोराक्ष, श्रीकंठ, महादेव, सदाशिव आदि नाम भी मिलते हैं। द्रविड़ में शिव की प्रासंगिक लीलाओं पर से अठारा स्वरूप बनाया हैं।

सुखासन, सोमस्कंध, चंद्रशेखर, वृषारूढ नृत्यमूर्ति, गंगाधर, त्रिपुरान्तक, कल्याणमूर्ति, अर्धनारीश्वर, भग्नमूर्ति पाशुपत, कंकाल, हरिहर, भिक्षाटन, गणेशानुग्रह, दक्षिणामूर्ति कालारि, लिंगोद्भव, श्रीपंचाश्रीपंचाधर ललाट तिलक, आदि की द्रविड़ प्रदेश में मूर्तियाँ पूजी जाती है।

दूसरा प्रकार : अव्यक्त-लिंग

अव्यक्त, वैसे तो लिंग स्वरूप में व्यक्त ही है, पर उसका स्वरूप निराधार-लंबगोल होने से उसे दूसरे प्रकार में लिया गया है। भारत की पवित्र नदिओं में लिंग मिलते हैं। हरद्वार में गंगा, और गंडकी, नर्मदा प्रभास आदि में भी मिलते हैं। इन पवित्र नदियों में हजारों साल से बहते बहते स्वाभाविक रूप से वे लंबगोल बन जाते हैं। शिल्पशास्त्रों में ऐसे हजारो लिंगो में से उनकी परीक्षा करके बाण लिंग ग्रहण करने का आदेश है।

अमुक वर्ण का और उसमें अमुक प्रकार के रंग के छिटके–टिपकेवाला कुकुट के अंडे के आकार का बाणलिंग शुभ माना जाता है। शेष अशुभ माने जाते हैं।

शुभ लक्षण वाले बाणलिंग की परीक्षा इस प्रकार की जाती है। लिंग का एक बार वजन करके दूसरी और तीसरी बार भी वजन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

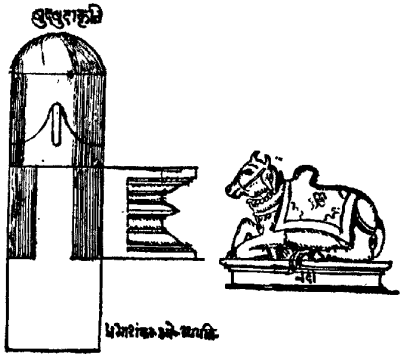

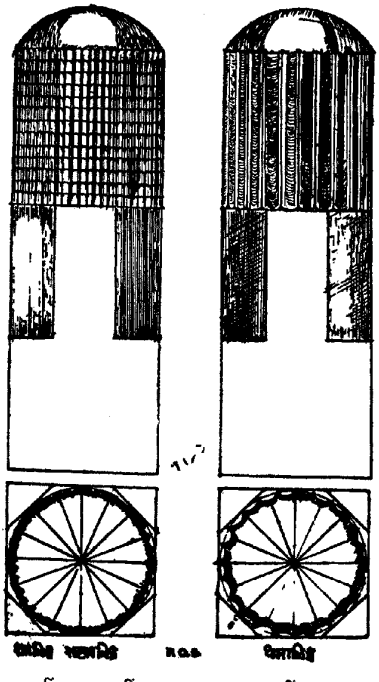

राजलिंग सहस्रलिंग धारालिंग

राजलिंग का स्वरूप विभाग

करना चाहिए। तीनों बार वजन अलग-अलग हो तो उसे शुभ मानना चाहिए क्योंकि 'तुला साम्य व जायते'। जिस से तोल सरीखे न हों उसे ग्रहण करके पूजन करना चाहिए। जब कि सरीखे तोल वाले को त्याज्य बताया गया है।

चार हाथ (आठ फिट) तक के मंदिर को शिवालय माना जाता है। उसमें बाणलिंग की स्थापना करनी चाहिए। चार हाथ से बड़े प्रासादों में राजलिंग (घटित लिंग, घाटघलिंग, मनुष्य लिंग) की स्थापना करनी चाहिए। बाणलिंग के बाद राजलिंग आता है।

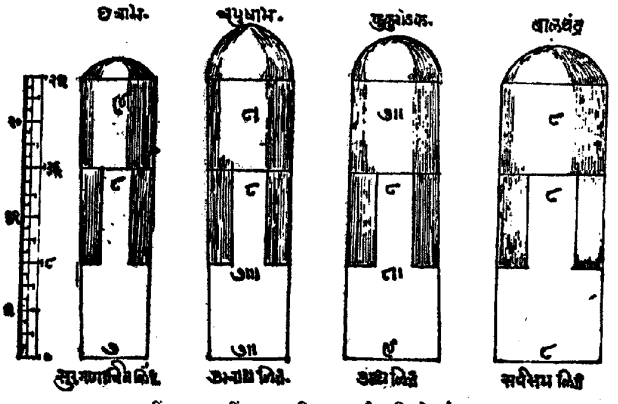

मानुषलिंग–राजलिंग का विभाग और शिरोवर्तन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनुष्य-शिल्पी ने जिसे बनाया है, उसे मनुष्यलिंग कहते हैं। उसे प्रासाद के प्रमाण से बनाया जाता है। राजलिंग की लंबाई से तीसरे भाग की चौड़ाई करनी चाहिए। राजलिंग की ऊँचाई के तीन भाग करने चाहिए। नीचे के चौरस भाग को ब्रह्मभाग, मध्य के अष्टकोण भाग को विष्णुभाग और ऊपर के गोल भाग को शिव भाग कहते हैं। ब्रह्मभाग भूमि में, विष्णुभाग जलाधारी में और ऊपरी शिवभाग प्रगट रहता है।

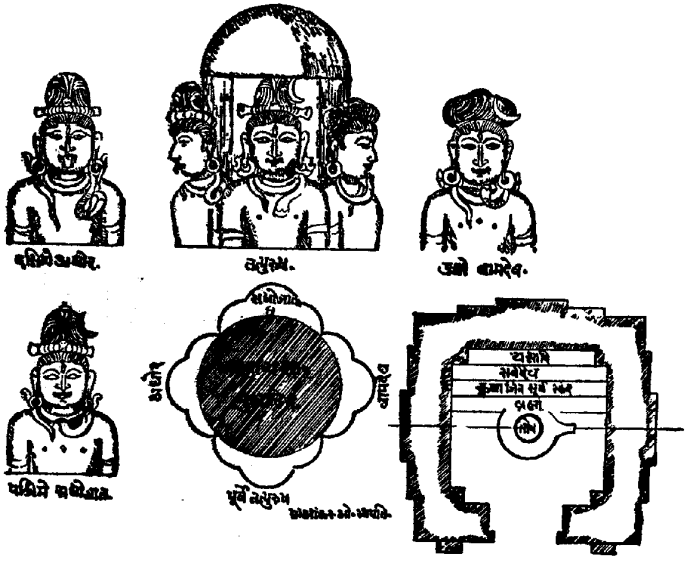

व्यक्ताव्यक्त–मुखलिंग गर्भगृह देव स्थापन विभाग क्रम

राजलिंग या घटितलिंग में शतलिंग, सहस्रलिंग और धारालिंग की आकृति भी होती है।

अर्थात उस में छोटे-छोटे लिंग भी दिखाये जाते हैं। राजलिंग का प्रमाण एक हाथ से नौ हाथ तक का होता है। नौ हाथ से बड़े लिंग देवालय में नहीं, खुले ओटे पर स्थापित करके पूजने को कहा है। नवरत्नलिंग, सप्तधातु, पाषाणलिंग, काष्टलिंग आदि के माप-प्रमाण कहे गये हैं। देवालय के मापों के प्रमाण से लिंग का प्रमाण होता है।

चौथा प्रकार : व्यक्ताव्यक्त :

व्यक्ताव्यक्त मूल लिंग को कहते हैं। लिंग के ऊपर एक, तीन, चार या पाँच मुख की आकृति बनाई जाती है। लेकिन पंच-मुख के लिंग क्वचित् ही मिलते हैं। शिव के अवतार समान लकुलिश की मूर्ति दो हजार साल पहले दिखाई दी थी। ऊँचे लिंग के अगले भाग में बैठे हुए लकुलिश भाग भगवान के एक हाथ में दंड और दूसरे हाथ में बीजारे, माथे पर जटा और गोद में उर्ध्वलिंगयुक्त मूर्तियाँ भी दिखाई देती हैं। लकुलिशजी ने शिव का पाशुपत संप्रदाय चलाया था। वे मूल गुजरात के बडोदे के पास करवण (कायावरोहण) के थे, लेकिन उनका संप्रदाय द्रविड़ में बहुत फैला। उन्होंने आगम ग्रंथ भी लिखे है।

पाषाण परीक्षा

लिंग और मूर्तियों के पाषाण की परीक्षा कैसी करनी चाहिए उसका वर्णन शिल्पग्रंथों में दिया गया है। तीन प्रकार की परीक्षा इस प्रकार है:

१. एक ही वर्ण की (रंग की) नक्कर, चीकट शिला जिसकी आवाज काशी के घंट-सी हो, वह 'पुल्लिंग'।

२. तांबे का कांशिये-जैसी तीक्ष्ण आवाजवाली शिला स्त्रीलिंग, और–

३. जिसमें कोई आवाज ही न हो, वह नपुंसक शिला समझनी चाहिए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नपुंसक शिला मंदिरों के निर्माण-कार्य में ली जाती है। राजलिंग और देवप्रतिमा पुंल्लिग शिला से और देवियों की मूर्तियाँ जलाधारी स्त्रीलिंग शिला से बनायी जाती हैं।

शिव की व्यक्त प्रतिमाओं में मुख्य बारह स्वरूप उत्तर भारत में पूजे जाते हैं। दक्षिण भारत में उनके अठारह स्वरूप पूजे जाते हैं। लेकिन उनमें शिवजी के बहुत से प्रासंगिक रूप भी हैं।

१. सद्योजात	५. ईश	९. अघोरास्त्र
२. वामदेव	६. मृत्युंजय	१०. श्रीकंठ
३. अघोर	७. विजय	११. सदाशिव
४. तत्पुरुष	८. किरणाक्ष	१२. द्वादश कला संपूर्ण मूर्ति सदाशिव

१. सद्योजात : श्वेतवर्ण। तीन श्वेत नेत्र, श्वेत लेपन, सर पर जटाभार में बालेन्दु, तीन नेत्र, सौम्य मुख कुंडल से अलंकृत। दो हाथों में वरद और अभय मुद्रा धारण की हुई होती है।

२. वामदेव : रक्त वस्त्र, तीन रक्त नेत्र, जटा पर चंद्र, सीधी सरल नासिका, रक्तादि सर्व आभूषण, हाथ में खड्ग और ढाल-तलवार होते हैं।

३. अघोर : भयंकर दांतोवाला मुँह, शिर पर सर्प, तीन नेत्र, नरमुंडमाला युक्त गला, कानों में सर्प के केदूर कुन्डल हार, उपवीत, कटिसूत्र आदि में सर्प-बिच्छू की माला रहती है। नील कमल-जैसा वर्ण, पीली जटा में चंद्र धारण किया होता है। तक्षक और मुष्टिक नामक सर्प के नूपुर पैरों में धारण किये होते हैं। काल जैसे महाबलवान 'अघोर' को आठ भुजायें रहती हैं। दायें हाथों में खटवांग, कपाल, ढाल और पात्र रहते हैं। बायें हाथों में त्रिशूल, परशु, खड्ग और दंड धारण किये होते हैं।

४. तत्पुरुष : पीले वस्त्र, यज्ञोपवीत, बायें हाथ में अक्षमाला और दायें में बीजोर होते हैं।

५. ईश : स्फटिक-जैसा श्वेत वर्ण, जटा में चंद्र, तीन नेत्र, त्रिशूल और कपाल (खप्पर) धारण किया होता है।

६. मृत्युंजय : खोपड़ी की माला धारण की होती है। अति श्वेत वर्ण, मुकुट में चंद्र धारण किया होता है। व्याघ्र चर्म युक्त, सर्प के आभूषणों से अलंकृत, दायें हाथ में त्रिशूल और माला और बायें में कपालकुंडी तथा योगमुद्रा होती है। ये मृत्यु को जीतने वाले हैं।

७. विजय : एक मुख, तीन नेत्र, मुकुट में चंद्र, दायें हाथों में त्रिशूल और कमल तथा बायें हाथों में वरद और अभय मुद्रा होती है। दिव्यरूपवाला यह स्वरूप बड़ा प्रभावशाली है।

८. किरणाक्ष : चार महाबाहुओं में पुस्तक, अभय, वरद और माला होती है। तीन नेत्रवाले इस स्वरूप के हाथ, पैर और आँखें श्वेतवर्ण की होती हैं।

९. अघोरास्त्र : खड्ग और त्रिशूल युक्त, ज्वाला-जैसे महाक्रोधी, माया के रचयिता।

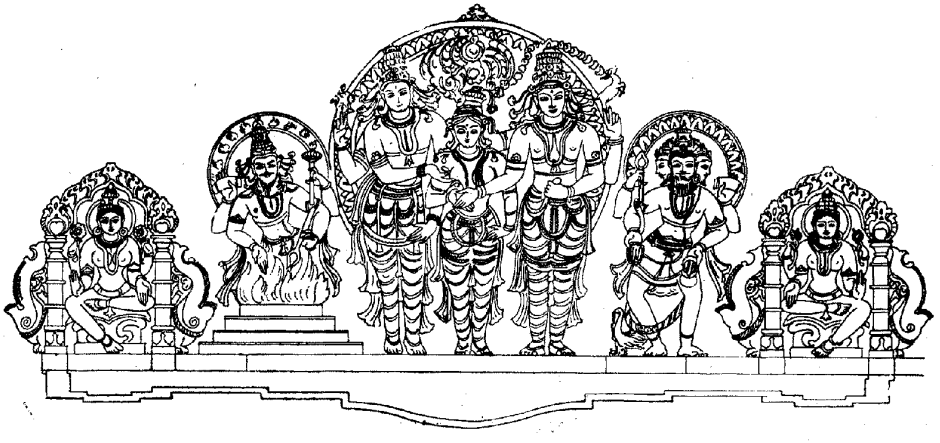

गौरी अग्निदेव शीवमीनाक्षी विवाह ब्रह्मा पार्वती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१०. श्रीकंठ : विचित्र वस्त्र और यज्ञोपवीत युक्त यह महा ईशान विचित्र ऐश्वर्य से विभूषित, सर्वालंकारयुक्त हैं। इन्हें एक मुख है। चार भुजाओं में खड्ग, धनुष्य-बाण और ढाल धारण किये होते हैं। मुकुट में चंद्र है।

११. सदाशिव : इनके तीन नेत्र, और चार भुजाएँ होती हैं। दायें हाथों में पूर्ण अमृत कुंभ होता है बाकी हाथों में कुंभ और माला होती है। महा ऐश्वर्य देने वाले ये एकादश में रुद्र माने जाते हैं।

१२. द्वादश कला संपूर्ण मूर्ति सदाशिव : पद्मासन में बैठे हुए, दो हाथ योगासन मुद्रा में होते हैं। उनके पाँच मुख होते हैं। दायें हाथों में अभय, शक्ति, त्रिशूल, खट्वांग और बायें हाथों में सर्प, माला, डमरू, तथा बीजोर होते हैं। तीन नेत्र होते हैं। ये इच्छाज्ञान और ज्ञान के सागर रूप हैं। उत्तर भारत में यह द्वादश रुद्र बहुत प्रचलित हैं। कई ग्रंथों में एकादश स्वरूप भी दिये गये हैं।

'रूपमंडन' में शिव के अन्य स्वरूप भी दिये हैं। वे इस प्रकार हैं :—

१. अहिर्बुद्ध
२. विरुपाक्ष
३. बहुरूप सदाशिव, और
४. त्र्यंबक

'अपराजित सूत्र' में वैद्यनाथ मूर्ति स्वरूप भी शिव के ही स्वरूप-वर्णन में सम्मिलित किया गया हैं।

१. **अहिर्बुद्ध :**—दायें हाथों में ऊपरी क्रम से गदा, सर्प, चक्र, डमरू, मुग्दर, त्रिशूल, अंकुश और माला होती है। बायें हाथों में तोमर, पट्टिश, ढाल, कपाल, घंटा, शक्ति, परशु और तर्जनीमुद्रा होती है। इस प्रकार सोलह हाथों के आयुध वर्णित हैं।

२. **बहुरूप सदाशिव :**—दायें नीचे हाथों में डमरू, सुदर्शन, सर्प, त्रिशूल, अंकुश, कुंभ, गदा, जपमाला और बायें हाथों में ऊपर से नीचे के क्रम में घंटा, कपाल, खट्वांग, तर्जनीमुद्रा, कुंडिका, धनुष, परशु और पट्टिश धारण किये होते हैं।

३. **विरुपाक्ष :**—दायीं आठ भुजाओं में खड्ग, त्रिशूल, डमरू, अंकुश, सर्प, चक्र, गदा, और माला धारण की हुई हैं। बायें आठ हाथों में ढाल, खट्वांग, शक्ति, परशु, तर्जनीमुद्रा, कुंभ, घंटा और कपाल। सब मिलाकर सोलह आयुध वर्णित हैं।

४. **त्र्यंबक :**—दायें नीचे हाथों में क्रम से चक्र, डमरू, मुग्दर, धनुष, त्रिशुल, अंकुश, ढाल, माला और बायें हाथों में ऊपर से गदा, खट्वांग, पात्र, धनुष, तर्जनीमुद्रा, कुंभ, परशु और पट्टिश। इस प्रकार १६ आयुध होते हैं।

५. **वैद्यनाथ मूर्ति :**—क्षीर समुद्र में अमृत रूप, विष को हरानेवाले, सर्व ऐश्वर्य देनेवाले, दारिद्र और कष्ट को नष्ट करने वाले, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाले, मुक्तामंडल से शोभित ये देव तपे हुए कंचन-जैसे वर्ण के होते हैं। सर्व आभूषणों से मंडित और प्रभामंडल से शोभित यह स्वरूप त्रिनेत्री है। उसकी जटा में चंद्र शोभा दे रहा है। व्याघ्रचर्म ओढ़े हुए, श्वेत वर्ण की सौम्यमूर्ति को नाग की यज्ञोपवीत होती है। उसके हाथों में त्रिशूल, माला, कपाल (कुंडिका) होते हैं। करोड़ सूर्य सम तेजवाले पद्मासन-युक्त वैद्यनाथ शक्ति और आरोग्य के देव हैं।

संयुक्त प्रतिमाएँ

(१) **उमा-महेश्वर :** शिवजी की गोद में बायीं ओर बैठी हुई उमा को शिवजी के बायें हाथ का आलिंगन है। शिव के दायें हाथों में बीजोरू और त्रिशूल है। बायें हाथ में सर्प है। उमा का एक हाथ शिवजी के स्कंध पर आलिंगन युक्त है। तथा दूसरे हाथ में दर्पण है। उनकी मूर्ति के नीचे वृषभ-कुमार (कार्तिक वाहन) और गणेश हैं।

(२) **हरिहर पितामह :** एक पीठ पर, एक शरीर में, हरि, हर और पितामह विष्णु, शिव और ब्रह्मा तीनों के, सर्व लक्षण साथ में ही स्पष्ट हैं। चार मुख, छः भुजा, दायें हाथों में माला, त्रिशूल और गदा तथा बायें हाथों में कमंडल, खट्वांग, और चक्र धारण किये हुए हैं। गरुड़, नंदी और हंस के वाहन हैं।

(३) **हरिहर मूर्ति :** हरिहर मूर्ति में दायीं ओर शिव और बायीं ओर हृषिकेश के आयुध वरदमुद्रा, त्रिशूल, चक्र और कमल है। नीचे दायीं बाजू वृषभ-नंदी और बायीं ओर गरुड़ का वाहन है। श्वेत-नील वर्ण है। यह विष्णु तथा शिव का संयुक्त स्वरूप है।

(४) **अर्ध नारीश्वर :** इस में बायाँ अर्ध देह स्तनयुक्त उमा का है। एक कान में ताडपत्र, और दूसरे कान में कुंडल, एक ओर मणिकयुक्त मुकुट और दूसरी ओर जटामुकुट है। बायीं ओर स्त्री (उमा) स्वरूप है, जिस में सर्व आभूषण हैं। दायीं ओर पुरुष रूप शिव हैं। उनके दायें हाथों में त्रिशूल और माला है तथा बायें हाथ में में दर्पण और गणेश हैं। कटिमेखला युक्त यह स्वरूप शिव ने ब्रह्मा की सृष्टि के सर्जन के समय दिखाया था।

(५) **कृष्ण-शंकर मूर्ति :** यह कृष्ण और शंकर का संयुक्त स्वरूप होता है। बायीं ओर कृष्ण मुकुटधारी होते हैं तथा दायीं ओर शिवजी जटामुकुटयुक्त होते हैं। दायें कान में कुंडल और बायें कान में मकर कुंडल होता हैं। दायें हाथ में माला और त्रिशूल तथा बायें हाथ में चक्र और शंख धारण किये होते हैं।

(६) **हरिहर हिरण्यगर्भ :** चार मुख, आठ भुजा युक्त यह स्वरूप विष्णु और शिव और ब्रह्मा का संयुक्त स्वरूप है। दायें हाथों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उमा–महेश्वर

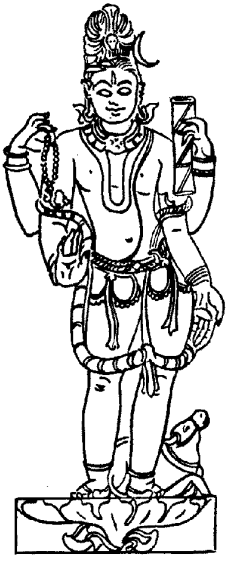

किरणाक्ष शिव

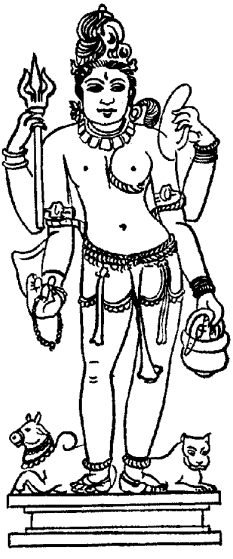

अर्ध नारीश्वर

में शिव के कमल, खट्वांग, त्रिशूल, और डमरू है और बायें हाथ में कमंडल, माला, शंख और चक्र हैं। सर्व काम और फल देने वाले हिरण्यगर्भ का यह स्वरूप है।

(७) **चंद्रार्कपितामह :** यह सूर्य, चंद्र और ब्रह्मा का संयुक्त स्वरूप है। इसे छः भुजाएँ और चार मुख होते हैं। वे सर्व आभूषणों से अलंकृत होते है। ऊपरी दो हाथों में कमल और बाकी दोनों हाथों में कमंडल तथा माला होती है।

(८) **श्री हर मूर्ति :** पाँच मुख, तीन नेत्र और आठ भुजावाले इस स्वरूप के दायें हाथों में वरद, अंकुश, दंत और फरसी रहती है। बायें हाथों में कमल, माला, चक्र और गदा रहते हैं। हरिरुद्र और गणेशश्वर के वाहन वृषभ और मूषक हैं, जो सर्व अर्थ एवं काम के साधन रूप हैं।

(९) **शिशुपालयुक्त त्रिपुरान्तक :** ये एक मुख और दश हाथ युक्त, सिंह चर्मवाले, यज्ञ धर्म कार्य के देव हैं। लाल वस्त्र, और कोटि सूर्य-जैसे तेजवाले हैं। इनके जटा-मुकुट में चन्द्र धारण किया हुआ है। मुंडमालायुक्त स्वरूप के हाथों में खट्वांग, ढाल, दिव्य खप्पर, त्रिशूल, तुम्बर, धनुष-बाण, सारंग, पाश और अंकुश होते हैं। कुंडलों से अलंकृत शिव नृत्य में गोल घूमते दिखाई देते हैं।

(१०) **नृत्यशिव :** तपे हुए स्वर्ण के समान वर्णवाले इन शिव को ऊर्ध्व केश होते हैं। हार, केयूर, भुजंग और सर्प के अलंकार से शोभित इस मूर्ति के हाथ लंबे होते हैं। व्याघ्रचर्मयुक्त होते हुए भी नृत्य के कारण यह मूर्ति सौम्य लगती है। शिव के बायें हाथों में ढाल, कपाल, नाग, खट्वांग, वरदमुद्रा तथा दायें हाथों में शक्ति, दंड, त्रिशूल और दो हाथों से नृत्य की मुद्रा होती है। गज चर्मयुक्त इन नृत्य शिव के दस हाथ हैं।

(११) **त्रिपुरदाह शिव-प्रतिमा :** इसे सोलह हाथ हैं। ऊपर बताये दस हाथों के आयुधों के अलावा छः अन्य आयुध इस प्रकार हैं। शंख, चक्र, गदा, शींग, घंटा और धनुष-बाण उनके हाथों में होते हैं।

(१२) **शिव-नारायण :** बायीं ओर माधव और दायीं ओर त्रिशूलपाणि होते हैं। बायीं ओर मणिबंध से विभूषित हाथ में शंख, चक्र (या चक्र के स्थान पर गदा भी) होते हैं। सर्व पापों का नाश करनेवाला यह स्वरूप है। दायीं ओर जटा और उसमें अर्ध-चंद्र सर्प के हारवलद होते है। दायें हाथों में वरदमुद्रा और त्रिशूल धारण किये होते हैं।

(१३) **वीरेश्वर :** सातमातृका की मूर्ति में प्रथम गणेश और अंत में वीरेश्वर की मूर्ति होती है। हाथ में वीणा और त्रिशूल धारण किया होता है। वृषा रूढ़ के सर पर जटामुकुट होता है।

(१४) **रुद्रकेशव :** यह शिव और विष्णु का संयुक्त स्वरूप है। पैर के पास लक्ष्मी और गौरी की छोटी मूर्तियाँ होती हैं। बायाँ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिव

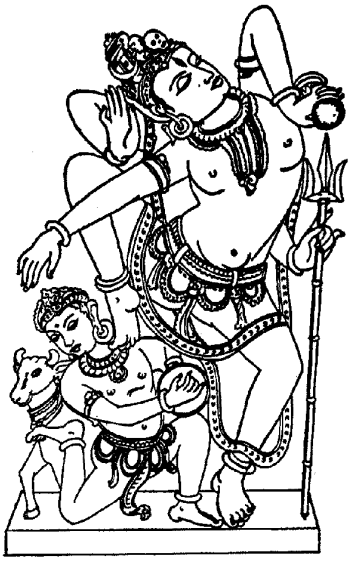

नाटचेश शिव

पैर शेषनाग पर और दायाँ पैर कूर्म की पीठ पर होता है। हाथों में शंख, चक्र, गदा और वेद धारण किये होते हैं।

(१५) **पंचवक्त्र शिव :** देवों के भी देव महादेव इसमें वृषभारूढ़ हैं। पाँचो मुख में दक्षिण का मुख विकट है बाकी सभी मुख सौम्य हैं। खोपड़ियों की माला पहने हुए शिव जगत में दुष्टों का संहार करते है। उत्तर दिशा के मुख के सिवा शेष चारों मुखों में तीन-तीन नेत्र हैं। सर के जटामुकुट में चंद्रकला है। दस बाहु हैं। दायें हाथों में माला, त्रिशुल, ढाल, दंड, और कमल हैं। बायें हाथों में बीजोरू, बाण, कमंडल, चर्म और त्रिशूल धारण किये हैं।

शिवनारायण हरिहीरण्य हरिहर पितामह योगेश्वर विष्णु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(१६) **दक्षिणामूर्ति :** ईशान कोण के दिग्पाल ईशा हैं। श्वेत कमल पर बैठे हुए वे श्वेत वर्ण के होते है। दक्षिणामूर्ति के बायें हाथ में सर्व आगम की पुस्तक होती है। ऊपरी हाथों में, सुधा-कुंभ है। बायें हाथ मुद्रा प्रतिपादन करते हैं। दायें ऊपरी हाथ में सफेद माला होती है। दक्षिणामूर्ति का दूसरा स्वरूप ज्ञान कोटि का है। वह योगासन में होता है। चार भुजाओं में ज्ञानमुद्रा, अक्षमाला, कमल और अभय मुद्रा धारण की हुई होती हैं। नीचे अगल-बगल अगस्त्य और प्रामस्त्य दो ऋषि तथा दोनों बाजु उमा हैं। दूसरे एक प्रकार में व्याख्यान मुद्रा, रूक्षमाला, अमृतघट और दंड धारण किया होता है।

(१७) **ब्रह्मेशान जनार्दन** (हरिहर पितामह): सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन चारो देवों का संयुक्त स्वरूप है। चार मुख तथा आठ भुजायुक्त इस स्वरूप के बीच में सूर्य होता है। उसके दो हाथों में कमल होता है। दक्षिण में शिव का मुख होता। उनके हाथों में खट्वांग और त्रिशूल रहता है। पश्चिम में ब्रह्मा का मुख रहता है। उनके हाथों में कमंडल और माला रहती है। बायीं ओर विष्णु मुख होता है। उनके हाथों में शंख-चक्र आयुध रहते हैं।

द्रविड़ में शिव के प्रासंगिक स्वरूप भी दिये गये हैं। 'काश्यप शिल्प' में उनके १८ स्वरूप और लक्षण वर्णित किये गये हैं।

१. सुखासन	१०. गजहारीमूर्ति (दो भेद)
२. उमास्कंध	११. पशुपति
३. चंद्रशेखर	१२. कंकाल मूर्ति
४. वृषभ वाहन मूर्ति	१३. हरिहर
५. नृत्य शिव (नृत्य मूर्ति के नौ भेद)	१४. भिक्षाटन
६. गंगाधर	१५. चंडेशानुग्रह
७. त्रिपुरान्तक (उसके आठ भेद)	१६. दक्षिणामूर्ति (तीन भेद)
८. कल्याणमूर्ति	१७. कालहामूर्ति
९. अर्ध नारीश्वर	१८. लिंगोद्भव

इनमें से कई स्वरूपों के वर्णन इस प्रकार हैं :

१. **सुखासन :** उमा के साथ बैठे हुए महेश का स्वरूप।

६. **गंगाधर :** उग्र तपश्चर्या से भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर ले आये। उनका प्रबल वेग धारण करने के लिए उन्होंने शंकर जी को

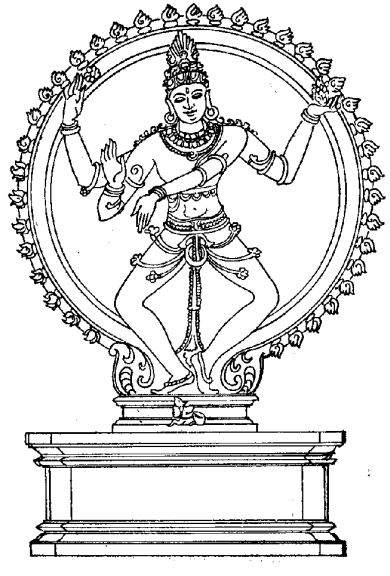

नटराज

गजहारी शिव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रसन्न किया। शंकर ने गंगा का गर्व हरण करने के लिये उन्हें अपनी जटा में उतार लिया इसीलिये वे गंगाधर कहलाये।

७. **त्रिपुरान्तक :** त्रिपुरासुर के पुत्र देवताओं को बहुत त्रास देते थे। तब शंकर ने उनका संहार किया। इसलिये वे त्रिपुरान्तक कहलाये।

९. **अर्धं नारीश्वर :** प्रजा-उत्पत्ति का काम विधिवत् न होने से ब्रह्मा ने शिव का ध्यान लगाया। इसलिये अर्धं नारीश्वर के रूप में शिव प्रगट हुए।

१०. **गजहारीमूर्ति :** काशी में कई ब्राह्मण शिवलिंग का पूजन करते थे। एक राक्षस हाथी का रूप लेकर उन ब्राह्मणों को त्रास देते थे। तब लिंग में से प्रगट होकर शंकर ने उस गजासुर का वध किया। इसलिये वे गजासुर मर्दन, गजहारी कहलाये।

१२. **कंकाल मूर्ति :** जगतोत्पत्ति के बारे में ब्रह्मदेव के साथ शिव का वाद-विवाद हुआ। उसमें शिव ने भैरव को ब्रह्मा का पाँचवाँ मस्तक उड़ा देने का आदेश दिया। और इस ब्रह्महत्या के पाप के निवारण के लिये वे काशी गये। उनको वहाँ पाप से युक्ति मिली। वे ही कंकाल मूर्ति बने।

१४. **भिक्षाटन :** दारुवन में स्त्री और बालक तप करते थे तब शिवजी ने कुरूप और नग्न स्वरूप धारण कर के जंगल में भिक्षा माँगी। इसलिये वे भिक्षाटन कहलाये।

१६. **दक्षिणामूर्ति :** शिव के योग और ज्ञान की प्रवीणता दिखानेवाली मूर्ति दक्षिणामूर्ति हैं।

ललाटतिलक मुद्रा : एक पैर ऊपर माथे तक ललाट में तिलक करती हुई मुद्रा में होता है। एक हाथ वरदमुद्रा में और दूसरे हाथ से मस्तक की ओर पाद-ग्रहण की मुद्रा होती है। ऐसी मूर्ति दक्षिण के मीनाक्षी और कांजीवरम् के कैलास मंदिर में है। उत्तर भारत में ऐसी मूर्तियाँ नहीं मिलती।

शिव की संयुक्त मूर्तियाँ इस प्रकार हैं :

१. अर्धं नारीश्वर : स्त्री-पुरुष का संयुक्त रूप।

२. उमा-महेश : शिवजी के बायें पैर पर उमा बैठी हैं।

३. हरिहर : शिव, विष्णु के साथ, अनुरूप आयुध में।

४ से ८. हरिहर पितामह, चंद्रार्धं पितामह, शिवनारायण, सूर्य हरिहर पितामह और चंड भैरव आदि संयुक्त मूर्तियों में दर्शाये हुए देव के भिन्न-भिन्न आयुध होते हैं।

ललाटतिलक शिव

द्रविड–भिक्षाटन शिव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भैरव

भैरव शिव का ही स्वरूप है। पुराणकारों ने उसकी उत्पत्ति की अनेक आख्यायिकायें दी हैं। भैरव की उपासना पिछड़े वर्ग के समाज में प्रचलित है। ६४ भैरव की कल्पना कर्मकाण्डी शास्त्र, धर्मशास्त्र और 'रुद्रयामल' ग्रंथ में दी है।

क्षेत्रपाल और भैरव ये दो भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। क्षेत्रपाल को निऋति, नैऋत्य विदिशा के दिक्पाल भी कहा है।

भैरव के स्वरूप में बटुक भैरव, स्वच्छंद भैरव, स्वर्ण कर्षण, चंड, रुद्र, क्रोध, असितांग, उन्मत्त, कपाल, भीषण, संहार, विशालाक्ष विरू, मुंडमरल, भूमिकथो, शशिभूषण, कालाग्नि आदि ६४ नाम और स्वरूप कहे गये हैं।

'अपाजित सूत्र' में स्वच्छंद भैरव के ५० हाथ तथा २१ ताल की विराट मूर्ति का स्वरूप दिया है।

क्षेत्रपाल : मुंडमाला की उपवित धारण किये, इनका ऊर्ध्वकेशी और नग्न स्वरूप होता है। बायें हाथ में कार्तिक और डमरु तथा बायें हाथों में त्रिशूल और कपाल (खोपड़ी पात्र) होता है। मुकुट में सर्प और मुंड होता है। कुत्ते का वाहन होता है।

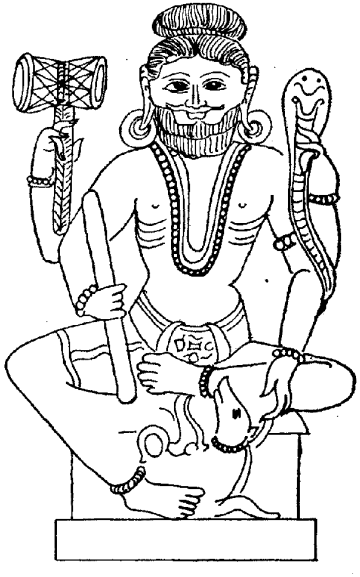

क्षेत्रपाल भैरव

चंड भैरव : भयंकर मुख, दस हाथ, मुंडमाला धारण किये, गजचर्म से मंडित चंड भैरव के दायें हाथों में त्रिशूल, खड्ग, शक्ति, अंकुश और वरद मुद्रा रहती है। बायें हाथों में खट्वांग, ढाल, धनुष, अभय और कपाल (पात्र) होते हैं।

बटुक भैरव : स्फटिक-जैसे वर्ण के, बालस्वरूप दो भुजा, शिखंडी और कमल धारण किये हैं। पैर में कंकण-नूपुर और हँसता मुख होता है।

उच्छिष्ठ भैरव : श्याम वर्ण, तीन लोचन, चार हाथ जिनमें गदा, त्रिशूल, डमरु और पात्र धारण किये होते हैं।

काल भैरव : सर्प का यज्ञोपवीत, जटा में चंद्र, नग्न स्वरूप, नीलकंठ, श्याम वर्ण, तीन नेत्र और मुंडमाला धारण किये हुए काल भैरव के दायें हाथों में कमल, सर्प, माला और त्रिशूल और बायें हाथों में त्रिशूल, टंक, पाश और दंड होते हैं। ये भूत रूप के नायक और अष्ट सिद्धि के दाता माने गये हैं।

मार्तंड भैरव : वर्ण सुवर्ण तथा दामिनी समान, तीन नेत्र, चार मुख, फणिमय मुकुट, आठ हाथों में खट्वांग, कमल, चक्र, शक्ति, और पाश, अंकुश, माला तथा कपाल (पात्र) रहता है।

स्वच्छंद भैरव : २१ ताल का विराट स्वरूप (२५२ अंगुल प्रमाण) बद्ध पद्मासन में बैठे हुए, पचास भुजाओं वाले भैरव है। दायें हाथों में गदा, पट्टिश, परशु, शक्ति, बाण, धनुष, पुष्प, माला, सर्प, बीजोर, मुग्दर, चषकी (मधुपात्र), शतघ्नी, कोश, डमरु, मुशल, सूचि–पात्र दर्पण ....

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बायें हाथों में गदा, दर्पण, वरद, चंद्र, खड्ग, अंकुश, ज्ञान पुस्तक, चामर कलश, त्रिशूल, खट्वांग, अभय, विषपात्र, शंख, सर्प, मोदक, मद्यपात्र, वस्त्र, कमल, चक्र, वरद, दो हाथों की योनि मुद्रा और दो हाथ मस्तक पर–ऐसा स्वरूप स्वच्छंद भैरव का है।

वृषभ–नंदी : नंदी शिव का प्रिय वाहन है। शिवमंदिर में नंदी की स्थापना अनिवार्य है। प्राचीन काल में विदेशों में भी नंदी की पूजा होती थी। एशिया में नंदी देव के रूप में पूजा जाता था। मिस्र में वृषभ को पवित्र माना गया था। बेबिलोनिया और सीरिया में वृषभ-पूजा का बड़ा प्रचार था। पारसियों के अवेस्ता में भी बहेराम मझदा को वृषभ का स्वरूप कहा गया है। क्रिस्ती धर्म में भी वृषभ का स्थान है। शरमेश (शिव) दो मुख (तीन मुख): अष्ट पाद (तीन पाद) दो पंख (याविपा पंख) लंबी पूँछ। सिंहमुख मुकुट धारण चतुर्भुज, पाश, परशु, मृग, अग्नि (तीन पाद के स्थान अष्टपाद भी कहाँ है।)

लकुलिश(पाशुपंत): पीछे संपूर्ण लिङ्ग, आगे पद्मासन।

शिव–दो भुजा में दंड, बीजोरु (मातुलीङ्ग)तीन नेत्र (गोद में) गुप्त ऊर्ध्वलिङ्ग।

सारे विश्व में नंदी देव की तरह पूजा गया हैं। मोहन-जो-दड़ो की खुदाई में से भी ५००० वर्ष पूर्व नंदी की मूर्तियाँ मिली हैं। दक्षिण प्रदेश में नंदी की विशाल मूर्तियाँ पायी जाती हैं। शिवालय के सामने उसके लिये स्वतंत्र मंडप भी बांधे गये हैं।

रामेश्वर और तांजोर के 'बृहदीश्वर' तथा मैसूर में नंदी १९-२० फूट के एक ही पाषाण में से सुंदर अलंकरण सहित बनाया गया हैं। इससे पता चलता है कि नंदी का कितना महत्त्व था।

आद्य देव रुद शिव का बडा महात्म्य वेद उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है। पुरुषसुक्त में कहा है–रुद्र का अनंत स्वरूप है, अनंतमूर्ति है, सहस्र मस्तक है, सहस्र चक्षु है, सहस्र पाद है, सहस्र बाहु है, जिनका सहस्र नाम है ऐसे सहस्र युगों का धारण करनेवाला जगत में शाश्वत है।

एकद्वार शिवायतन–बायें गणेश, दायें पार्वती, नैऋत्य भास्कर, वायुकोणे जनार्दन, दक्षिणे मातृकाओ, उत्तर में शांतिगृह, पश्चिमे कुबेर की स्थापना करना।

चतुर्मुख शिवायतन–मध्य में रुद्र, बायें शांतिगृह, दक्षिणे यशोद्वार, मातृका रुद्र के बायें महालक्ष्मी, उमा और भैरव, रुद्र के पीछे ब्रह्मा. और विष्णु, अग्निकोण में इंद्र, आदित्य और स्कंद, इशान्य में गणेश और धूम्र स्थापन करना।

पुरुषसूक्त मे शिवजी के विश्वस्वरूप का वर्णन किया है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद्।
स भूमिं सर्वतः स्पृष्ट्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ।। पुरुषसूक्त।

जिस के हजारों शीर्ष है, जिस के हजारों चक्षु है, जिस के हजारों पैर है एसा विराट पुरुष समग्र विश्व को व्याप्त और भी विश्व के ऊपर दशाँगुल (विश्व से पर) रह है।

शिव प्रतिहार

पूर्व द्वारे	नंदी–(वाम)	मातृलिंग	नागेंद्र	डमरु	बीजपुरक
	महाकाल–(दक्षिण)	खट्वांग	कपाल	डमरु	बीजपुरक
दक्षिण द्वारे	हेरंब–(वाम)	तर्जनी	त्रिशूल	डमरु	गज
	भृंगी–(दक्षिण)	गज	डमरु	खट्वांग	तर्जनी
पश्चिम द्वारे	दुर्मुख–(वाम)	त्रिशूल	डमरु	खट्वांग	कपाल
	यांपुडर–(दक्षिण)	कपाल	डमरु	दंड	बीजपुरक
उत्तर द्वारे	सित–(वाम)	मातृलिंग	मृणाल	खट्वांग	पद्मदंड
	असित–(दक्षिण)	पद्मदंड	खट्वांग	मृणाल	बीजपुरक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : एकोनविंशतिम्

देवी–शक्ति–स्वरूप

आर्यों ने मातृपूजा अपनाई थी। मोहन-जो-दडो से प्राप्त हुए अवशेषों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि भारत के सिवा अन्य प्रदेशों में भी भूमध्य सागर तक प्राचीन काल में मातृपूजा प्रचलित थी।

शैव और वैष्णव संप्रदाय की तरह देवी का संप्रदाय 'शक्ति संप्रदाय' से ज्ञात होता है। शाक्त संप्रदाय में दुर्गा प्रधान देवी मानी जाती है। उसके अनेक नाम और स्वरूप विविध ग्रंथों में दिये हैं। भगवती दुर्गा के मुख्य तीन स्वरूप माने गये हैं: महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती। स्वरूप क्रमशः रजस्, तमस् और सात्विक गुणों के माने जाते हैं। ये ब्रह्मा, विष्णु और शिव के परम तेज से पुनरावर्तित तेज या शक्तियाँ मानी जाती हैं। शक्तिवाद के मूलतत्त्व वेद में से प्रादुर्भावित हुए है। वेद के बाद आरण्यक और उपनिषदों में उनका बहुत विकास हुआ।

देवी उपासना में से मंत्रशास्त्र के स्वतंत्र सूत्र रचे गये हैं। वे सांकेतिक भाषा में तथा मिताक्षरों में हैं। वे मनुष्य को परब्रह्म स्वरूप भगवती जगदंबा की पराशक्ति से परिचित करा के मुक्ति दिलाते हैं।

भारत में प्राचीन काल से ही शक्ति वाद का प्रचार हुआ था। उसके अवशेषों से यह सिद्ध होता है। मोहन-जो-दड़ो में हजार वर्ष पूर्व की मातृदेवी की मूर्तियाँ मिली हैं। मातृदेवी की पूजा भारत से बाहर के देशों में भी प्रचलित थी। ईसा पूर्व चार या पाँच शताब्दी के सिक्कों पर देवी-मूर्ति उकेरी गई है। उसी तरह देवी की मूर्तियों के प्राचीन शिल्प भी मिलते हैं।

रूपमंडनोक्त नवदुर्गा स्वरूप

१. महालक्ष्मी :	छः भुजा	..	वरद, त्रिशूल, ढाल, पानपात्र, नाग
२. नंदा :	चार भुजा	..	अक्षसूत्र, खड्ग, ढाल, पानपात्र
३. क्षेमकरी :	,,	..	वरद, त्रिशूल, कमल, पानपात्र
४. शिवदूती :	,,	..	कमंडल, चक्र, ढाल, पानपात्र
५. महाचंडी :	,,	..	खड्ग, त्रिशूल, घंटा, ढाल
६. भ्रामरी :	,,	..	खड्ग, डमरु, खेट (ढाल), पानपात्र
७. सर्वमंगला :	,,	..	माला, वज्र, घंटा, पानपात्र
८. रेवती :	,,	..	दंड, त्रिशूल, खट्वांग, पानपात्र
९. हरिरिद्ध :	,,	..	कमंडल, खड्ग, डमरु, पानपात्र

रूपमंडनोक्त और अपराजित सूत्र में उपरोक्त नवदुर्गा का स्वरूप कहा है। सप्तशती ग्रंथ में नवदुर्गा का स्वरूप पृथक इस तरह कहा है–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

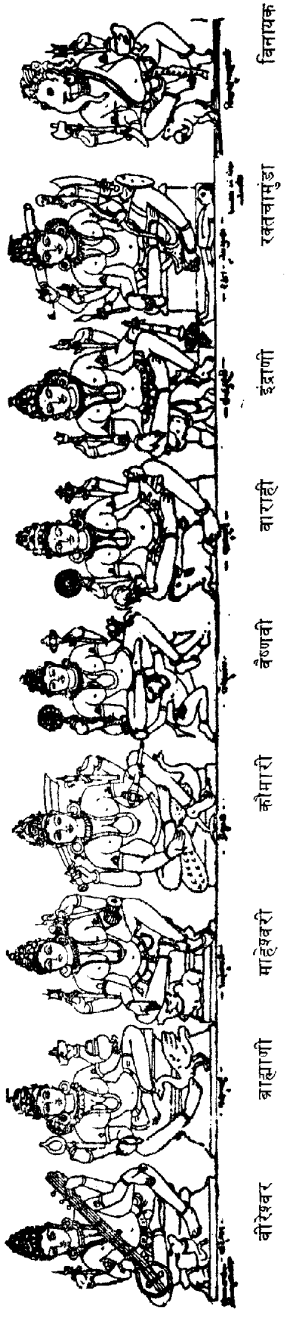

प्रथमं शैलपुत्रीति (सप्तशति) द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चंद्रघंण्टेति, कुष्मण्डेति चतुर्थकम् ॥१॥
पंचमं स्कंदमातिति, षष्ठं काव्यायनीति च ।
सप्तमं कालारात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥२॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गा प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामाणि, ब्रह्मणैव महात्मना ॥३॥ ॥ सप्तशती ॥

१.	शैलपुत्री:	वृषभवाहन	दो भुजा	त्रिशूल, कमल
२.	ब्रह्मचारिणी:		दो भुजा	माला, कमंडल
३.	चंद्रघंटा:	व्याघ्रवाहन	दस भुजा	धनुषबाण, कमल, माला .....
४.	कूष्मांडा:	व्याघ्र	अष्टभुजा	कमंडल, धनुषबाण, कमल, चक्रगरा माला, त्रिशूल, गदा, खडग, कमंडल
५.	स्कंधमाता:	सिंह	चार भुजा	कमल, घटःकुंभ घंटा, वरद
६.	कात्यायनि:	सिंह	चार भुजा	ढाल, कमल, वरद, खड्ग
७.	कालरात्रि:	गर्दभ	चार भुजा	अभय, खडग, त्रिशूल, पाश
८.	महागौरि:	नंदी	चार भुजा	वरद, त्रिशूल, अभय, डमरु
९.	सिद्धिदायी:	कमल	चार भुजा	गदा, चक्र, पुस्तक, कमल

अथ सप्तमातृका

अथातः संप्रवक्ष्यामि मातृणां सप्तकं यथा ।
हंसारुढा प्रकर्तव्या साक्षसूत्रकमंडलुं ।
शूलं च पुस्तकं धत्ते उर्ध्वहस्तद्वये शुभे ॥ १ ॥ इति ब्राह्मी १
माहेश्वरी प्रकर्तव्या वृषभासनसंस्थिता ।
कपालशूलखटवांङ्गवरदा च चतुर्भुजा ॥ २ ॥ इति माहेश्वरी २
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना
रक्तवस्त्रधरा पद्मच्छूलशक्तिगदाधरा ॥ ३ ॥ इति कौमारी ३
वैष्णवी विष्णुसदृशी गरुडोपरिसंस्थिता
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा ॥ ४ ॥ इति वैष्णवी
वाराहीं तु प्रवक्ष्यामि महिषोपरिसंस्थिताम्
वाराहसदशी घंटानादचामरधारिणी ॥ ५॥
घंटा चक्र गदाधरा पद्मा दानवेंद्रविधातिनी ।
लोकानां च हितार्थाय सर्वव्याधिविनाशिनी ॥ ६ ॥ इति वाराही ५
इंद्राणी स्त्विन्द्रसदृशी वज्रशूलगदाधरा ।
गजासनगता देवी लोचनैर्बहुभिर्युता ॥ ७ ॥ इत्याबी ६
दंष्ट्राला क्षीणदेहा च गर्ताक्षा भीमरूपिणी
दिग्बाहुक्षामकुक्षिश्च मृशलं चक्रमार्गणौ ॥८॥
अंकुशं विभ्रती खड्गं दक्षिणेष्वथ वामतः
खेट पाश धनुर्दंड कुठारं चेति विभ्रती ॥९॥
चामुंडा प्रेतगा रक्ता विकृतास्याहिभूषणा
द्विभुजा वा प्रकर्तव्या कर्तिका कार्यमन्विता ॥ १० ॥ इति चामुंडा १
वीरेश्वरस्तु भगवान् वृषारुढो धनुर्धरः ।
वीणाहस्तः त्रिशूलश्च मातृणामग्रतः स्थितः
मध्ये च मातृका कार्या अंते तासां विनायक। ॥ ११ ॥ इति सप्तमातृका (रुपमंडन)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सात मातृकाएँ इस प्रकार है : ब्रह्मा, महेश, स्कंध, वैष्णव, वराह, इन्द्र, इन छः देवों की पत्नियाँ और सातवीं चामुंडा (जगदंबा त्रिगुणात्मक महाकाली का अपर नाम है)। इन सप्तमातृकाओं के स्वतंत्र मंदिर भी हुए हैं। मातृकाओं की एक पंक्ति के पट में पहले वीरभद्र और अंत में गणेश की मूर्ति भी होती है। ऐसी (सात + दो) कुल नौ मूर्तियाँ अंकित की जाती हैं। सप्तमातृकाओं के आयुध में कई कमअधिक और पृथक आयुध की मूर्तियाँ मिलती है।

कई सप्तमातृकाओं की गोद में बालक को भी बिठाया होता है। इलोरा की गुफाओं में सप्तमातृकाओं की विशाल पंक्ति बद्ध मूर्तियाँ उकेरी गई हैं।

१. 'अपराजित सूत्र' और 'रूपमंडन' में इनके चार हाथ कहे गये हैं। कई जगह छः भुजा भी लिखी हैं। वाहन एक ही कहा है। चार मुख होते हैं। मृगचर्म मंडित ब्राह्मी के दायें हाथ में वरद, माला और स्रुवा होता है। बायें हाथ में पुस्तक, कमंडल और अभय मुद्रा होती हैं। चार हाथ में माला, कमंडल, स्रुवा, पुस्तक होते हैं।

२. **माहेश्वरी** : 'रूपमंडन' में चार भुजा कही हैं, जिनमें खोपड़ी, त्रिशूल, खट्वांग और वरदमुद्रा हैं। उनके पाँच मुख और तीन-तीन नेत्र होते हैं। जटामुकुट में चंद्र होता है। कई जगह छः भुजायें भी पायी गई हैं। उसके अनुसार वरद, माला, डमरु, त्रिशूल, घंटा और अभय मुद्रा होती हैं। शरीर का वर्ण श्वेत हैं।

३. **कौमारी** (स्कंध-कार्तिकेय की पत्नी): रक्त वर्ण, छः मुख, बारह नेत्र, और मोर का वाहन होता है। बारह भुजाओं में वरद, शक्ति, पताका, दंड, घंटा, और बाण, तथा बारह हाथों में धनुष, घंटा, कमल, कुर्कुट, ढाल और परशु होते हैं। चार भुजा में त्रिशूल, शक्ति, गदा, ढाल होते हैं।

प्रथम वीरेश्वर

ब्रह्माणीदेवी

४. **वैष्णवी** : गरुड पर बैठी हुई, श्याम वर्ण की, वनमाला धारण की हुई वैष्णवी को छः भुजायें होती हैं। उनमें वरद, गदा, पद्म, शंख, चक्र, और अभय होते हैं। चार भुजाओं में वरद, शंख, चक्र, गदा होते हैं।

५. **वाराही** : श्याम वर्ण, शूकर के जैसा मुख, बड़ा पेट, दायें हाथों में वरद, दंड, खड्ग और बायें हाथों में ढाल, पाश और अभय होते हैं। चार भुजा के स्वरूप में घंटा, चक्र, गदा, बाण होते हैं।

६. **इंद्राणी** : हजार आँखोवाली, फिर भी सौम्य। शरीर का वर्ण सोने जैसा। हाथी पर बैठी हुई। दायें हाथों में वरद, माला, वज्र और बायें हाथों में कटोरा, पात्र और अभय होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

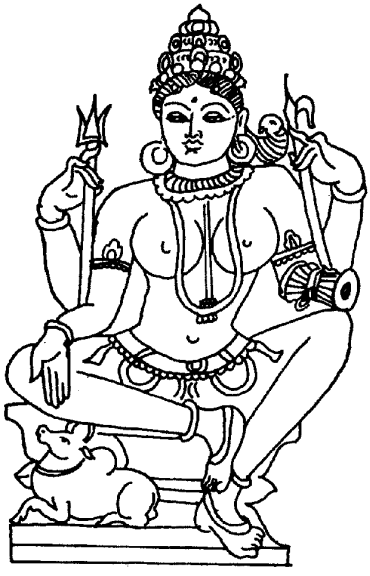

माहेश्वरी देवी

कौमारी देवी

वैष्णवी देवी

वाराही देवी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

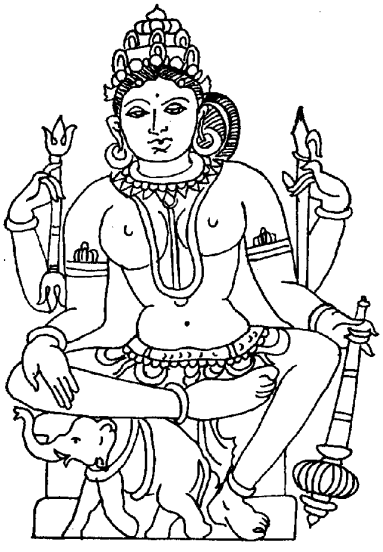

इंद्राणी देवी

रक्त चामुंडा

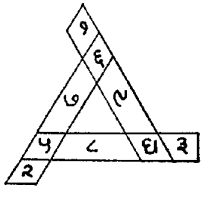

वीशेयंत्र

श्री गणेश विनायक

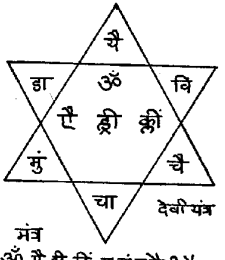

देवी यंत्र

मंत्र
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चा मुंडायै विच्चे नमः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

७. **चामुंडा** : प्रेत पर बैठी हुई, रक्त वर्ण, क्षीण, पतली, विकृत देह, दांत और भयंकर स्वरूपवाली चामुंडा के दस भुजायें होती हैं। मुशल, चक्र, धनुष, अंकुश, खड्ग दायें हाथों में और बायें में ढाल, पाश, धनुष, दंड और कुल्हाड़ी रहती है।

इस तरह मध्य में सप्तमातृकायें होती हैं। उनके दोनों ओर वीरभद्र-भैरव और गणेश होते हैं। वीरेश्वर के हाथ में वीणा, त्रिशूल, बाण और धनुष रहता है। उनका वाहन वृषभ होता है। गणेश मुषक वाहन; हाथ में दंत, परशु, अंकुश, मोदक।

वीरेश्वर : सप्तमातृका या १९ योगी के आयजन में वीरेश्वर की मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए। सप्तमातृका के आध में चार भुजा वाले वीरेश्वर कहे गये हैं। अन्य मत से उन्हें १० भुजायें भी होती हैं। तीन नेत्र हैं। माला, कमंडल, पद्म, शंख, गदा, त्रिशूल, डमरु, खड्ग, ढाल, वरद या अभय मुद्रा होती है।

जयोक्त दैवता-भू प्रकरण में सप्तमातृकाओं के स्वरूप इस प्रकार के कहे गये हैं।

ब्राह्मी, माहेश्वरी, वैष्णवी, वाराही और इंद्राणी की प्रत्येक की छः छः भुजाऐं, कौमारी की चार भुजायें, चामुंडा की दस भुजायें कही है। यहा रूपमंडन में चार भूजायें कही है–अपने अपने देवी की देवीयों का वाहन–हंस–बृषभ–मयूर, गरुड, हस्ती और चामुंडा प्रेतासनी कही है।

ब्रह्माणी चार मुख की, माहेश्वरी पाँच मुख और तीन नेत्र की, कौमारी छः मुख की। वाराही का मुख वराह सदृश कहा है। प्राचीन काल की सप्तमातृकायें आसनस्थ-बैठी और खडी मूर्ति भी दिखाई देती हैं।

अन्य प्रमुख देवियाँ

(१) **भद्रकाली :**

भद्रकाली को १८ भुजायें रहती है। ये चार सिंहों के रथ पर आलिढचासन में बैठी हुई होती है। कई जगह ये कमलासन में भी बैठी वर्णित की गई है। माला, त्रिशूल, खड्ग, चक्र, बाण, धनुष, शंख, कमल, स्रुवा, ढाल, कमंडल, दंड, शक्ति, रत्नपात्र और दो हाथ ज्ञानमुद्रा के वर्णित किये गये हैं।

(२) **महाकाली :**

जगदम्बा के तीन स्वरूप का आद्यस्वरूप महाकाली है, ऐसा तांत्रिक मानते हैं। तमोगुणी देवी काली का प्रदुर्भाव अंबिका के स्वरूप में से हुआ है, ऐसा मार्कंडेय कहते हैं। दसभुजा, श्याम वर्ण, तीन नेत्र, गले में मुंडमाला युक्त इनका भयानक स्वरूप है। हाथों मे खड्ग, बाण, गदा, त्रिशूल, शंख, चक्र, भुशंडी, परिघ, धनुष और रक्त टपकता मुंड होता हैं। प्रलयकाल में जगत ग्रास करनेवाली भगवती काली संहार का कार्य करती हैं। राजस्थान के आहवा गाँव में १० मुख और ६० हाथों की इनकी नग्न प्रतिमा है।

(३) **चंडी :**

सुवर्ण वर्ण, तीन नेत्र, यौवनावस्था, बड़े स्तन, एक मुख और बीस भुजावाली चंडी होती हैं। त्रिशूल, तलवार, शक्ति, चक्र, पाश, ढाल, अभय, डमरु, शक्ति, बाण बायें हाथों में रहते हैं। दायें हाथों में नागपारा, ढाल, कुल्हाड़ी, अंकुश धनुष, घंटी, ध्वज, गदा, वज्र और मुंड ऊपरी क्रम के रहते हैं।

(४) **चामुंडा :**

क्रूर, भयानक स्वरूप, पीले केश, हड्डियोंवाला स्वरूप और लाल नेत्रोंवाली चंडी व्याघ्रचर्म ओढ़े हुए होती है। सर्प के आभूषणोंवाली 'कपालमालिनी' श्याम वर्ण की होती हैं। शव पर बैठी हुई चंड और मुंड को मारनेवाली, १६ हाथों में त्रिशुल, ढाल, खड्ग, धनुष, पाश, अंकुश, बाण, कुल्हाड़ी, दर्पण, घंटा, वज्र, दंड, मुग्दर, वरद, मुंड और खेटक होते हैं। दस हाथों को चामुंडा का भी स्वरूप-वर्णन मिलता है। (देखिये : सप्तमातृका में नं. ७)।

योगेश्वरी और कृषोदरी का स्वरूप भी इस स्वरूप से मिलता-जुलता है।

(५) **रक्तचामुंडा : योगेश्वरी :**

तीन नेत्र, चार भुजायें, तीक्ष्ण खड्ग, पाश, मुशल और हल धारण किये हुए होती हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'मत्स्य पुराण' के अनुसार वह लंबी जिव्हा, ऊर्ध्व केश और हलयुक्त होती है। गीध और कौवे के वाहनवाली योगेश्वरी दस भुजाओंवाली, श्याम वर्ण की और हड्डियों के शरीरवाली होती है।

(६) महिषासुर मर्दिनी : कात्यायिनी :

दस भुजा, तीन नेत्र और त्रिभंग मुद्रावाली होती है। अलसी के फूल-जैसा वर्ण और सर्व आभूषणों से शोभित, यौवनयुक्त, बड़े स्तनवाली सिंह के वाहन पर बैठी है। दायें हाथों में त्रिशूल, खड्ग, बाण और शक्ति होती है। बायें हाथों में ढाल, धनुष, पाश और अंकुश रहता है। घंटा या परशु भी कभी-कभी होता है। नीचे के हाथ में केश-रहीत दैत्य का माथा भी रहता हैं।

उसके नीचे महिष दैत्य दांत पीसता हुआ लेटा है। उसका शरीर रक्त से लाल हुआ रहता है। उसके हाथ में खड्ग है। वह नाग से जकड़ा हुआ है। उसकी छाती में देवी का शस्त्र है। देवी का दायाँ पैर अपने वाहन सिंह पर और बायें पैर का अंगूठा महिष दैत्य पर है। यह पार्वती का ही रूप माना गया है। वेद वाङ्मय में इसका उल्लेख नहीं है। पंचायतन मंदिर में चारों दिशा में शंकर, गणेश, सूर्य और विष्णु की देवी कालिका होती है। भूरे और बदामी मूर्ति के चार हाथ हैं और प्रत्यालिढ मुद्रा है।

(७) लक्ष्मी :

सर्व आभूषणों से शोभित, अष्टदल कमल पर बैठी हुई, उनके ऊपरी हाथों में कमल और नीचे के दायें हाथमें अमृत कुंभ तथा बायें हाथ में बीजोरु धारण किये होते हैं। दो और आठ हाथ के लक्ष्मी के स्वरूप कई ग्रंथों में वर्णित हैं। लक्ष्मी के दोनों ओर परिचारिकायें पवन डुलाती होती हैं। देवी के मस्तक पर दोनों ओर कलस से अभिषेक करते हुए हाथी हैं। 'अग्निपुराण' में उनके आठ हाथ कहे हैं। धनुष, गदा, बाण, कमल, चक्र, शंख, मुशल, अंकुश आदि उनके आयुध हैं।

(८) महालक्ष्मी :

लक्ष्मी-जैसा ही आभूषणों से शोभित इनका स्वरूप है। बायें नीचे हाथ में पात्र और ऊपर के हाथ में गदा होती है। दायें ऊपरी हाथों में ढाल और नीचे श्रीफल होता है। 'सप्तशति' ग्रंथ में अठारह भुजायें वर्णित की गई हैं। अष्टदल कमल पर इनका आसन लगा है। पीछे कलशयुक्त हाथी अभिषेक करता हैं। 'रूपमंडन' में वरद, त्रिशूल, ढाल और पानपात्र हैं।

(९) महा सरस्वती :

ज्ञानशक्ति की इन देवी को चार भुजायें हैं जिनमें माला, पुस्तक, अभय और पद्म होते हैं या वरद, कमल, वीणा और पुस्तक भी होते हैं। हंस का वाहन है।

(१०) श्रीदेवी :

ये कमलपर बैठी हुई है। दो भुजाओं में कमल और श्रीफल धारण किये हुए श्वेतवर्ण हैं। इनके दोनों ओर चामर धारिणी दाहियाँ और हाथी कलश से अभिषेक करते हुए हैं।

(११) भूदेवी :

विष्णु की मूर्ति के साथ दोनों तरफ छोटी देवी-मूर्तियाँ होती हैं। कमल और वरद मुद्रावाली इन मूर्तियों के कान में मकर कुंडल होते हैं। ये विष्णु पत्नी कहलाती है।

ये चार भुजा की श्री देवी के हाथ में रत्नपात्र, धान्यपात्र, औषध पात्र और कमल होते हैं। शेषनाग पर पैर होता है। भूदेवी की मूर्तियों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। विष्णु या वराह के साथ ये होती हैं।

वराह स्वरूप में, दांत पर बैठी हुई भूदेवी (पृथ्वी) अत्यंत छोटे स्वरूप में होती हैं। कभी-कभी दांत पर पृथ्वी (भूदेवी) के स्थान पर एक गोला रहता है। कभी-कभी वराह के पैर के पास भूदेवी की मूर्ति शेषनाग के माथे पर पैर रखकर प्रार्थना करती हुई खडी होती है।

(१२) सरस्वती :

'अग्निपुराण'के मत से इनकी आठ भुजाओं में धनुष, गदा, पाश, वीणा, चक्र, शंख, मुशल और अंकुश हैं। शिल्परत्न के मत से ये रक्त वर्ण की है। पद्मासन, माला, पाश, अंकुश और अभय होते हैं। अन्य मत से इनके पाँच मुख और तीन नेत्र होते हैं। आयुध इस प्रकार होते है : शंख, चक्र, कपाल, पाश, परशु, सुधाकुंभ, वेद, अक्षमाला, विद्या और पद्म।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मयूर या हंस इनका वाहन होता है। ये कमल पर बैठी हैं।

(१३) अंबा-अंबिका :

विश्वकर्म शास्त्र में इन्हें चार भुजा युक्त तथा सिंह वाहिनी कहा है। खड्ग, ढाल, दर्पण और वरदमुद्रा में शोभित तीन नेत्र वाली ये देवी है। वेद में भी अंबा-अंबिका के नाम मिलते हैं।

अन्य मत से ये तीन नेत्र सहित हँसते मुखवाली, और रक्त वर्ण की वर्णित की गई है। छः भुजाओं में बीजोरु, पाश, अंकुश, बाण, धनुष और खप्पर होते हैं। कई जगह इनके चार हाथ भी कहे हैं, उसके अनुसार खड्ग, त्रिशूल, गदा और वरद हैं। गोद में बालक भी होता है।

(१४) भुवनेश्वरी देवी :

प्रभात के सूर्य-जैसे तीन नेत्र, हंसता मुख और कमल पर बैठी हुई होती हैं। उनकी चार भुजाओं में वरद, अंकुश, पाश और अभय हैं।

(१५) अन्नपूर्णा :

सूर्य-चंद्र के जैसा वर्ण, तेजस्वी अन्नपूर्णा के चार हाथों में माला, पुस्तक, पाश और पात्र होते हैं। यह काशी-क्षेत्र की अधीश्वरी मानी जाती हैं।

(१६) गायत्री : प्रात :

सूर्यमंडल के बीच तीन मुख, रक्त वर्ण, दो भुजा, माला, कमंडल और हंस का वाहन—ऐसी ब्रह्माणी प्रातः गायत्री कुमारी ऋग्वेद की मानी जाती हैं।

मध्याह्न : कृष्ण वर्ण, और तीन नेत्र वाली इन सावित्रीदेवी के चार हाथ हैं। उनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म होता है। ये गरुड़ पर बैठी हुई हैं—विष्णु यजुर्वेद।

सायं :—शुक्ल वर्ण की इस सरस्वती की चार भुजायें हैं। त्रिशूल, डमरु, पाश और पात्र धारण करके ये नंदी पर बैठी हुई वृद्धा रुद्राणी है।

(१७) गंगा (अग्नि) :

इनके दो हाथों में कुंभ और कमल है। ये श्वेत वर्ण की है और मगर इनका वाहन होता है।

(१८) यमुना :

कूर्म के वाहनवाली श्याम वर्ण की यमुना के दो हाथों में कुंभ और वरदमुद्रा है। प्राचीन स्थापत्यों के देवमंदिरों की द्वारशाखा में, दक्षिण शाखा में गंगा और बाम शाखा में यमुना की स्थापना होता थी।

(१९) शीतला :

'स्कंध पुराण' में इनका वर्णन है। ये शीतला के रोग को मिटाती है, ऐसा माना जाता है। नग्नस्वरूप में गर्दभ पर बैठी हुई इनके हाथ में झाड़ू और कलश होता है। सर पर सूप धारण किया होता है।

(२०) तुलसीदेवी :

श्याम वर्ण, कमल-जैसे लोचन, प्रसन्न मुख और चार भुजायें हैं। कमल, सफेद कमल, वरद और अभय मुद्रा होती है।

(२१) दुर्गा :

दुर्गा के भिन्न-भिन्न स्वरूप कहे गये हैं। चतुर्भुज, अष्टभुज, जया दुर्गा, शूलिनी दुर्गा, मोहशत्रुवाहिनी दुर्गा, कृष्णदुर्गा, विंध्यवासिनी दुर्गा, दशभुज दुर्गा, अतिदुर्गा, विश्वदुर्गा, सिद्धदुर्गा, अग्नि दुर्गा, जया-विजया दुर्गा, योमवती दुर्गा तथा विजिता दुर्गा।

दस महाविद्या देवी के १० स्वरूप, षोडश मातृकाओं के १६, पीठ शक्ति के नौ स्वरूप कहे हैं।

६४ योगिनियों के विविध स्वरूप सर्व दुर्गा या महाकाली की सेविकाओं के रूप में माने जाते हैं। जैसे शिव के भैरव, वैसे देवी की योगिनियाँ उसकी शक्ति मानी जाती हैं। 'रुद्रयामल' ग्रंथ में उनके नाम और स्वरूप दिये हैं। 'अग्निपुराण' में सिर्फ ६४ नाम ही दिये गये हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'मयदीपिका' में ६८ योगिनियों का उल्लेख है। 'श्रीतत्त्वनिधि' ग्रंथ में भी थोड़े स्वरूप वर्णन किये गये हैं। आठ-आठ के आठ मंडल, उनके चार-चार हाथों के आयुध, पर्ण और वाहन भी दिये गये हैं।

हिन्दु-परिवारों में सामान्यतः हरेक की कुल देवियाँ रहती हैं। आशापुरी, हिंगळाज, रांदेर लूआ (रन्ना देवी), सामुद्री (सुंदरी), व्याघ्रेश्वरी, सिंधवाई, भट्टारिका, आदि कुलदेवी के स्वरूप किसी ग्रंथ में तो नहीं मिलते, लेकिन ज्ञातिपुराण या क्षेत्रपुराण अथवा परंपरागत मान्यताओं में से मिलते हैं। कुलदेवी, ग्रामदेवी या गोत्रदेवी हरेक कुल, ज्ञाति या कुटुंब को होती ही है।

दशमहाविद्यादेवी

यहाँ वाहन का उल्लेख नहीं किया गया है, अतः हंस या मयूर का वाहन माना जा सकता है।

दस महाविद्या ('शाक्त प्रमोद' ग्रंथ के अनुसार)

१	काली	५	भैरवी	९	मातंगी
२	तारा	६	त्रिपुरा भैरवी	१०	कमला
३	महाविद्या षोडशी त्रिपुरासुंदरी	७	धूमावती		
४	भुवनेश्वरी	८	बगला मुखी		

ये १० महाविद्या देवियाँ सर्वतंत्र की रक्षिका-पालिका है। उनके स्वरूप-वर्णन तंत्रग्रंथ में दिये हैं।

षोडश मातृकाओ

१	गौरी	५	सावित्री	९	स्वधा	१३	धृति
२	पद्मा	६	विजया	१०	स्वाहा	१४	पुष्टि
३	शची	७	जया	११	मातृका	१५	तुष्टि
४	मेधा	८	दैवसेना	१२	लोक मातृका	१६	कुलदेवी

अणिमादि पीठ शक्ति

१	अणिमा	४	गरिमा	७	प्रकामत
२	महिमा	५	प्रेतगता	८	प्राप्ति
३	लधिमा	६	वशिता	९	सर्व सिद्धि

चतुःषष्टि योगिनियाँ

'हेमाद्रि वृत्तखंड' तथा 'मयदीपिका' (अग्निपुराणान्तर्गत)

१	अक्षोभ्या	१३	बलाकेशी	२५	तरला
२	ऋक्षमणी	१४	वालसा	२६	तारा
३	राक्षसी	१५	विमला	२७	ऋग्वेदा
४	क्षेपण	१६	दुर्गा	२८	हयानना
५	क्षमा	१७	विशालाक्षी	२९	साराख्या
६	पिंगाक्षी	१८	ट्रीकारा	३०	रससंग्राही
७	अक्षया	१९	बड़वामुखी	३१	शबरा
८	क्षेमा	२०	महाक्रूरा	३२	तालजंघिका
९	इला	२१	क्रोधना	३३	रकताक्षी
१०	नीलालया	२२	भयंकरी	३४	सुप्रसिद्धा
११	लोला	२३	महानना	३५	विद्युद्रजिव्हा
१२	रक्ता	२४	सर्वंसा	३६	करंकिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३७	मेघनादा	४७	पिशिता	५७	यमजिव्हा
३८	पंचकोणा	४८	सर्वलोलुपा	५८	जयंती
३९	कालकर्णी	४९	भ्रमनी	५९	दुर्जना
४०	वरप्रदा	५०	तपनी	६०	जयन्तिका
४१	चंडा	५१	रागिणी	६१	बिडाली
४२	चंडवती	५२	विकृलता	६२	रेवती
४३	प्रपंचा	५३	वायुवेगा	६३	पूतना
४४	प्रलयान्विता	५४	बृहत्कुक्षि	६४	विजयान्तिका
४५	शिशुवक्रा	५५	विकृता		
४६	पिशाची	५६	विश्वरूपिका		

पाठान्तर में दो और नाम भी मिलते हैं। इच्छास्त्रा और सर्वसिद्धा। ये सभी ६४ योगिनियाँ ४, ८ या १२ हाथ की होती हैं। बड़े दांतोंवाली इन योगिनियों के जटामुकुट होते हैं। आयुध इस प्रकार होते हैं–खट्वांग, अंकुश . . . . अभय, धनुष, त्रिशूल, पाश आदि।

'अग्निपुराण' के अनुसार :—

चंडिका : दश भुजाओं में खड्ग, त्रिशुल, तलवार, शक्ति, नागपाश, ढाल, अंकुश, कुल्हाड़ी, धनुष, और त्रिशूल होते हैं तथा सिंह का वाहन है।

अथ चतुर्विंशति--गौरीस्वरूपाणि वास्तुविद्या च

विश्वकर्मा उवाचः–

अथातः संप्रवक्ष्यामि गौर्यादिचतुर्विंशतिम्।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च सर्वाभरणभूषिता ॥१॥
पीताङ्गी पीतवर्णा च पीतवस्त्रविभूषिता
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च स्वरुपे यौवनान्विता ॥२॥
सुप्रभा च सुतेजस्का मुकुटेन विराजिता।
प्रभामंडलसंयुक्ता कुंडलाभ्यां च भूषिता ॥३॥
हारकंकणकेयूरा पादयोर्नूपुरान्विता।
सिंहस्कंधसमारुढा नानारूपकरोद्यता ॥४॥
देवगंधर्वसिद्धैश्च पूजिता ऋषिभिस्तथा।
कृतयुगे हि तोतला पूज्यते ब्राह्मणैः सदा ॥५॥
त्रिपुरा क्षत्रियैः पूज्या सौभाग्या वैश्यसत्तमैः।
विजया शूद्रजातीयैः पूज्या श्चतरत्नो ब्राह्मणैः ॥६॥
त्रितयं राज्यजातीभिः द्वयं वैश्यैश्च पूज्यते।
अथैका शूद्रजातीयैः ॥७॥
दक्षिणे चाक्षमालां च तथाधश्चकमंडलुम्।
तथैव पीच्छिकां वामे वामाधः शंखमुत्तमम् ॥८॥
रूपेया तोतला नाम मूर्तिश्च हंसवाहनी। इति तोतला ३
अभयं दक्षिणे हस्ते तस्योर्ध्वेंङ्कुशमण्डलम् ॥९॥
पाशं च वामहस्ते तु लिङ्गं च तदधः स्थितम्।
प्रेतासना महादेवी त्रिपुरा नाम मूर्तिका ॥१०॥ इति त्रिपुरा २
दक्षिणे चाक्षसूत्रं च तस्योर्ध्वे पद्ममुत्तमम्।
वामे तु पुस्तकं चैव वामाधः फलमुत्तमम् ॥११॥
गरुडे च समारूढा सौभाग्यायाश्च मूर्तिका। इति सौभाग्य ३
दक्षिणे चाक्षसूत्रं च तदूर्वे दंडमुत्तमम् ॥१२॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वामे तु पुस्तकं चैव वामधःश्चाभयं तथा ।
वंडमालाधरा देवी विजया नाम मूर्तिका ॥१३॥ इति विजया ४
दक्षिणाधोऽक्षसूत्रं च भूजोर्ध्वे लिङ्गमेव च ।
गणं च वामहस्ते तु स्यादधश्च कमंडलुः ॥१४॥
गौरी नामेति विख्याता मूर्तिः सा सिंहवाहिनी । इति गौरी ५
दक्षिणे त्वभयं चैव तदूर्ध्वे लिङ्गमीश्वरम् ॥१५॥
वामे गजानना चोर्ध्वं मातुःफलमधः स्थितम् ।
गोधिकालांछनाचैव पार्वती नाम मूर्तिका ॥१६॥ इति पार्वती ६
अभयं दक्षिणे हस्ते तदूर्ध्वं रुद्र एवच ।
वामे गणपतिश्चैव वामाधः चाक्षमालिकाम् ॥१७॥
सिंहोपरि समारुढा शूलेश्वरी नाम मूर्तिषु । इति शुलेश्वरी ७
दक्षिणे चाक्षमाला तु तदूर्ध्वे लिङ्गमेव च ॥१८॥
वामे गणपतिश्चैव तस्याधः पद्म मुत्तमम् ।
गोधिका वाहनं चैव ललिता नाम मूर्तिषु ॥१९॥ इति ललिता ८
अभयं दक्षिणे हस्ते तदूर्ध्वं ईश्वरस्तथा ।
वामे गणपतिश्चैव वामाधश्च : कमंडलुः ॥२०॥
ईश्वरी सिंहवाहनी गोधासनोपरिस्थिता । इति इश्वरी ९
पद्मं (कुडी) च दक्षिणे हस्ते तद्ध्वमीइश्वरस्तथा ॥२१॥
वामे गणपतिश्चैव वामध श्चाभयं मतम् ।
सिंहवाहनसंरुढा मनेश्वरीति मूर्तिषु ॥२२॥ इति मनेश्वरी १०
अभयं दक्षिणे हस्ते तदूर्ध्वं हीश्वरस्तथा ।
वामे गणपतिः चैव वामाधः पद्ममुत्तमम् ॥२३॥
उमापति र्नाम मूर्तिः देवी च सिंहवाहिनी । इति उमापति ११
पद्मं च दक्षिणे हस्ते तदूर्ध्वं लिङ्गमेव च ॥२४॥
गणेशो वामहस्ते च लिङ्गंहस्तेऽधः स्थितम् ।
सिंहासनसमारुढा वीणेति नाम मूर्तिषु ॥२५॥२५॥ इति वीणादेवी १२
दक्षिणे मातुर्लिङ्गञ्च तदूर्ध्वं च महेश्वरः ।
वामे गणपतिः चैव वामाधश्च कमंडलुः ॥२६॥
गोधासनं समारुढा हस्तिनी नाम मूर्तिषु । इति हस्तिनी १३
अक्षसूत्रं दक्षिणे च तदूर्ध्वं हीश्वरस्तथा ॥२७॥
वामे गणपतिः चैव मातुर्लिङ्गञ्च संस्थितम् ।
सिंहासनसमारुढा त्रिनेत्रा नाम मूर्तिषु ॥२८॥ इति त्रिनेत्रा १४
अक्षसूत्रं दक्षिणे च तदूर्ध्वं इश्वरस्तथा ।
वामे गणपतिश्चैव तस्याधः पुस्तकं तथा ॥२९॥
हंसवाहनमारुढा रमणा नाम मूर्तिषु ॥ इति रमणा १५
पद्मं च दक्षिणे हस्ते तस्योर्ध्वं पद्ममुत्तमम् ॥३०॥
पुस्तकं वामहस्ते च तदधश्च कमंडलुः ।
कमलं लांछनं चैव देवी नाम कुलकला ॥३१॥ इति कुलकला १६
अक्षमालां दक्षिणे च तस्योर्ध्वं पद्ममुत्तमम् ।
दर्पणं वामहस्ते च वामाधःफलमुत्तमम् ॥३२॥
हस्तिनीवाहना देवी जंघा नाम्ना च मूर्तिषु ॥ इति जंघा १७
वरदा दक्षिणे हस्ते तस्योर्ध्वेऽङ्कुशमुत्तमम् ॥३३॥
पाशं वामहस्तोर्ध्वं तु वामाधश्चाभयं तथा ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथारुद्र ईश्वरश्च सदाशिवः ॥३४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एते पंचमहादेवा पादमूले व्यवस्थिताः
त्र्यैलोक्यविजया नाम . . . . . ॥३५॥ इति त्र्यैलोक्यविजया १८
दक्षिणे चाक्षसूत्रं च तद्ध्वें पद्ममुत्तमम् ।
पुस्तकं वामहस्ते च वामोधश्चाभयं तथा ॥३६॥
कमलासनमारुढा देवी कामेश्वरी तथा ॥ इति कामेश्वरी १९
अभयं दक्षिणे हस्ते तद्ध्वें खड्गमेव च ॥३७॥
वामे तु तक्षकश्चैव तस्याधःसुफलंभवेत् ।
प्रेतासनसमारुढा रक्तनेत्रा च नामतः ॥३८॥ इति रक्तनेत्रा २०
२१ चंडी २२ जंभिनी. २३ ज्वालाप्रभा. २४ भैरवी.
चंडीनी तानी ध्यानी (?) जंभिनी ज्वलितप्रभा ॥३९॥
सहितं भैरवारूढा कोटराक्षी च भीषणा ।
प्रेतारुढा विशाला च द्वादश पंचलोचना (?) ॥इति॥
पंच दीप्त महामुद्रा . . . . पंचकभूषणा ॥
सिंहचर्मधरा देवी गजचर्मोत्तरीयकान् ॥६१॥
निलोत्पलसमाभासा सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥
कपालाभरणं खंड षड् वर्ग धारिका ।
कपाला खड्गधरा देव्यः त्र्यैलोक्योद्योतघंटिकाः ॥
सरसा रंड्गधरा दिव्या पाशांऽकुशधरा च या ।
सर्पकुंडलसंयुक्ता सर्पाभरणभूषिता ॥
सर्पकंकणकेयूरनागाभरणभूषिता ।
इत्येवं भैरवो देवी सपादा परिकीर्तिता ॥
इति चतुर्विंशति गौरीस्वरूपाणि । (दीपार्णवे)

चतुर्विंशति गौरी स्वरूप

(वास्तुविद्या दिपार्णवमते)

वास्तुविद्या दीपार्णव ग्रंथ में चतुर्विंशति गौरि स्वरूप कहा है उसमें बीस सात्विक आयुधोंवाली–और अंत के चार स्वरूप उग्र तामस आयुधोंवाली कही हैं । वाहन में दो मूर्ति का हंस है, सिंह वाहिनी सात हैं, गरुड वाहिनी तीन और गोधासन वाहनवाली तीन, गजवाहिनी एक, कमलासनी दो और प्रेतवाहिनी छः कही हैं । सात्विक आयुधोंवाली दो मूर्ति को प्रेतासम कहा है यह विचित्र है ।

स्वरूप वर्णन में–चार भुजा, पीत वर्ण, एक मुख, तीन नेत्र, यौवनावस्था, प्रभामंडल, मुकुट, कुंडल, हार, केयूर, कंकण, पादनपुरादि आभूषण युक्त कही है ।

देवता मूर्ति प्रकरण में कही हुई द्वादश गौरी स्वरूप सर्व सात्विक आयुधोंवाली कही है–चार भुजा, एक मुख, त्रिनेत्र आभूषण युक्त स्वरूप कहा है। आठवी रंभा देवी का गज वाहन कहा है, बाकी सर्व देवी का गोधासन (दीपार्णवोक्त) वाहन कहा है ।

क्रम	नाम	दायें हाथ में		बायें हाथ में		क्रम	नाम	दायें हाथ में		बायें हाथ में	
		उपला	निचला	उपला	निचला			उपला	नीचला	उपला	निचला
१	**तोतला**	माला	कमंडल	पीछीका	शंख	५	**गौरी**	शिवलिंग	माला	गणेश	कमंडल
				वाहन हंस						वाहन सिंह	
२	**त्रिपुरा**	अंकुश	अभय	पाश	शिवलिंग	६	**पार्वती**	,,	अभय	गणेश	फल
				वाहन प्रेत						वाहन गोधासन	
३	**सौभाग्य**	पद्म	माला	पुस्तक	फल	७	**शूलेश्वरी**	,,	,,	गणेश	माला
				वाहन गरुड						वाहन सिंह	
४	**विजया**	दंड	माला	पुस्तक	अभय	८	**ललिता**	,,	माला	गणेश	कमंडल
				वाहन सिंह						वाहन गोधासन	

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

९	**ईश्वरी**	शिवलिंग	अभय	गणेश कमंडल वाहन गोधासन	१७	**जंधा**	कमल	माला	दर्पण	फल वाहन हस्ति
१०	**मनेश्वरी**	,,	कमल	गणेश अभय वाहन सिंह	१८	**त्रैलोक्यविजया**	अंकुश	वरद	पाश	अभय वाहन सिंह
११	**उमापति देवी**	,,	अभय	गणेश कमल वाहन सिंह	१९	**कामेश्वरी**	कमल	माला	पुस्तक	अभय कमल आसन
१२	**वीणा**	,,	कमल	गणेश शिवलिंग वाहन सिंह	२०	**रक्तषेत्रा**	खड्ग	अभय	सर्प	फल कमल आसन
१३	**हस्तिनी**	,,	फल	गणेश कमंडल वाहन गोधासन	२१	**चंडी**	मुंड खड्ग बाण		घंटिका पाश	धनुष अंकुश ढाल
१४	**त्रिनेत्रा**	शिवलिंग	माला	गणेश कमंडल वाहन सिंह	२२	**जंभिनी**	भयंकर स्वरूप धारण करनेवाली स्वरूप बोखला जैसा बारह या पंच			
१५	**रमणा**	,,	माला	गणेश पुस्तक वाहन हंस	२३	**ज्वालाप्रभा**	चक्षु वाली महातेजस्वी शव वाहिनी नील कमल वर्ण की सिंहचर्म धारण			
१६	**कूलकथा**	कमल	कमल	पुस्तक कमंडल कमलासन			करती सर्प के आभूषण वाली।			

उपरोक्त चौबीस देवियों में १ सौभाग्य, २ रक्तनेत्रा, ३ चंडी, ४ जंभिनी, ५ ज्वालाप्रभा, ६ भैरवी यह छः देवी का स्वरूप उग्र तामस है बाकी की राजस सात्विक स्वरूप की देवियाँ है।

द्वादश गौरी स्वरूप

(अपराजित सूत्र रूपमंडन और जयोक्त देवता मूर्ति प्रकरणम्)

ये सभी (१२) उमा स्वरूप हैं। पार्वती के दोनों ओर अग्निकुंड और कृष्ण के पंचकुंड बनाने चाहिए। रंभा का वाहन हाथी है। सावित्री के चार मुख, शेष सभी एक मुख और तीन नेत्र वाली हैं।

क्रम	नाम	दायें हाथ में		बायें हाथ में		क्रम	नाम	दायें हाथ में		बायें हाथ में	
		नीचे	उपर	नीचे	उपर			नीचे	उपर	नीचे	उपर
१	उमा	माला	कमल	दर्पण	कमंडल	७	हीमवती	पद्म	दर्पण	अभय	—
२	पार्वती	माला	शिवलिंग	गणेश	कमंडल	८	रंभा	कमंडल	माला	वज्र	अंकुश
		दोन पक्ष में अग्निकुंड						हस्ति वाहन			
३	गौरी	माला	अभय	कमल	कमंडल	९	सावित्री	माला	पुस्तक	कमल	कमंडल
४	ललिता	माला	वीणा	दर्पण	कमंडल	१०	त्रिखंडा	माला	वज्र	शक्ति	कमंडल
५	श्रिया	माला	अभय	वरद	कमंडल	११	तोतला	शूल	माला	दंड	श्वेतचामर
६	कृष्ण	माला	—	पुस्तक	कमंडल	१२	त्रिपुरा	पाश	अंकुश	अभय	वरद

अथ गौर्याः प्रवक्ष्यापि प्रमाणं मूर्तिलक्षणम्।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च सर्वाभरणभूषिता ॥१॥
गोधासनोपरिस्थिता च कर्तव्या सर्वकामदा। ॥इति गौरीमूर्ति सामान्यलक्षणम्।
उमा च पार्वती गौरी ललिता च श्रिया तथा ॥२॥
कृष्णा च हिमवंती च रंभा च सावित्री तथा।
त्रिखंडा तोतला चैव त्रिपुरा द्वादशोदिताः ॥३॥ इति गौरीनामानि।
अक्षसूत्रं च कमलं दर्पणं च कमंडलुः।
उमा नाम्ना भवेन्मूर्तिः पूजिता त्रिदशैरपि ॥६॥ इत्युमा ॥१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अक्षसूत्रं शिवदेवं गणाध्यक्षं कमंडलुम् ।
अग्निकुंडो पक्षद्वये पार्वती पर्वतो द्भवा ॥९॥ इति पार्वती ॥२॥
अक्षसूत्राभये पद्मं तस्याधस्तु कमंडलुः ।
गौर्याश्चतु मूर्तिरित्युक्ता कर्तव्या शिवशालिनी ॥६॥ इति गौरी ॥३॥
अक्षसूत्रं तथा वीणा दर्पणोऽथ कमंडलुः ।
ललिता च तदा नाम सिद्धचारणसेविता ॥७॥ इति ललिता ॥६॥
गोधासनाक्षसूत्रा च वरदाभयकमंडलुः ॥
श्रियामूर्तिस्तदा नाम गृहे पूज्या श्रिये सदा ॥८॥ इति श्रिया ५
अक्षसूत्रं कमंडलुर्द्वये च पुराजलीः ।
पंचाग्नयश्च कुंडेषु कृष्णा नाम सुशोभना ॥९॥ इति कृष्णा ६
हिमवती शैलराजी (शैलवत्सा गिरि सूता) गिरिसूता पद्मतर्पणा ।
पद्मदर्पणाभयलिङ्गा चतुर्हस्ता महेश्वरी ॥१०॥ इति हिमवती ७
कमंडल्वक्षपद्माकुशा गजासनोपरि स्थिता ।
प्रतितोद्भववरुणा रंभा च सर्वकामदा ॥११॥ इति रंभा ८
अक्षसूत्रं पुस्तकं च धत्ते पद्मकमंडलू ।
चतुर्वक्त्रा तु सावित्री श्रोत्रियाणां गृहे हिता ॥१२॥ इति सावित्री ९
अक्षसूत्रवज्रशंकित तस्याधश्च कमंडलुं ।
त्रिखंडां पूजयेन्नित्यं सर्वकामफलप्रदाम् ॥१३॥ इति त्रिखंडा १०
शूलाक्षसूत्रं दंडं (खेर) च श्वेते चामरके तथा ।
श्वेतदेहा भवेत्देवी-तोतला पापनाशिनी ॥१६॥ इति तोतला ११
पाशांकुशाऽभयलिङ्गं चतुर्हस्तेष्वनुक्रमात् ।
त्रिपुरा नाम संपूज्या वंदिता त्रिदशैरपि ॥१५॥ इति त्रिपूरा १
इति द्वादश गौरी स्वरूप (जयोक्त दे. मू. प्र.)

द्वादश सरस्वती स्वरूप

(वास्तुविद्या दीपार्णवमते)

वास्तुविद्या दीपार्णव और जयमन देवता भू. ५ में सरस्वती स्वरूप वर्णन दोनों का एक ही है। एक मुख, मुकुट कुंडलादि आभूषण, यौवनावस्था, प्रसन्नमुख, तेजप्रभामंडल और चार भुजायें कमल, माला, वीणा, पुस्तक और वरद लोभ विलोभ हस्त में धारण किये यही दीपार्णव की बारवी नारदी देवी को अभय और जयमते दे. मू. प्र. ये दशवी महालक्ष्मी की भी अभय मुद्रा कही है। कई ग्रंथों में सरस्वती का वाहन मयूर या हंस कहा है किंतु यहां दोनों ग्रंथों में वाहन का उल्लेख नहीं है।

अथातः संप्रवक्ष्यामि वाणी द्वादश लक्षणाः ।
चतुर्भुजाश्चैकवक्त्रा मुकुटेन विराजिताः ॥१॥
प्रभामंडलसंयुक्ताः कुंडलाञ्चितशेखराः ।
वस्त्रालंकारसंयुक्तसुरूपा यौवनान्विताः ॥२॥
सुप्रसन्नाः सुतेजास्का नित्यं च भक्तवत्सलाः ।
दक्षिणाधश्चाक्षसूत्रे तदूर्ध्वे पद्ममुत्तमम् ॥३॥
वीणा वामकरे ज्ञेया वामाधः पुस्तकं. तथा (इति प्रथम सरस्वती)॥
दक्षिणाधो ह्यक्षसूत्रं तदूर्ध्वे पुस्तकं तथा ॥६॥
वीणा वामकरे ज्ञेया तदधः पद्मपुस्तकम् ।
द्वितीया सरस्वती नाम हंसवाहनसंस्थिता ॥ ॥इति द्वितीयसरस्वती२
वरदा दक्षिणे हस्ते चाक्षसूत्रं तदूर्ध्वतः ।
पद्मं वामकरे ज्ञेयं वामोर्ध्वे पुस्तकं भवेत्त् ॥६॥ इति कमलाऋविमणी ३

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दक्षिणे वरदा ज्ञेया तदूर्ध्वे पद्ममुत्तमम् ।
पुस्तकं वामहस्ते च वामधश्चाक्षमालिकाम् ॥७॥ इति जयादेवी ॥
वरदं दक्षिणे हस्ते चाक्षसूत्रं तदूर्ध्वतः ।
पुस्तकं वामहस्ते च तस्याधः पद्ममुत्तमम् ॥८॥ इति विजया ५
वरदं दक्षिणे हस्ते पुस्तकं च तदूर्ध्वतः ।
अक्षसूत्रं करे वामे वामधः पद्ममुत्तमम् ॥९॥ इति सारंगी ६
अभयं दक्षिणे हस्ते ऊर्ध्वे चवाक्षमालिकाम् ।
वीणा वामकरे स्थाप्या तस्याधः पुस्तकं भवेत् ॥१०॥ इति तुंबरी ७
वरदं दक्षिणे हस्ते तदूर्ध्वे पुस्तकं भवेत् ।
वीणा वामकरे ज्ञेया तस्याधः पद्ममुत्तमम् ॥११॥ इति नारदी ८
दक्षिणे वरदा मुद्रा पद्मं तस्योपरि स्थितम् ।
वीणा वामकरोर्ध्वे तु चाधः करे तु पुस्तकम् ॥१२॥ इति सर्वमंगला ९
पद्मं च दक्षिणे हस्ते ऊर्ध्वं चैवाक्षमालिकाम् ।
वीणा च वामहस्ते तु वामाधः पुस्तकं भवेत् ॥१३॥ इति विद्याधरी १०
दक्षिणे चाक्षसूत्रं तु पद्मं तस्योपरिस्थितम् ।
पुस्तकं वामतो हस्ते चाभयं तदधः स्थितम् ॥१५॥ इति सर्वविद्या ११
अभयं दक्षिणे हस्ते तदूर्ध्वे पद्ममीष्यते ।
पुस्तकं वामहस्ते तु तस्योधश्चाक्षमालिकाम् ॥१५॥ इति शारदादेवी १२
इति वास्तुविद्यायां दीपार्णवे द्वादश सरस्वतीस्वरूपाणि ॥

		दायीं भुजा		बायीं भुजा				दायीं भुजा		बायीं भुजा	
		नीचे	उपर	उपर	नीचे			नीचे	उपर	उपर	नीचे
१	१ सरस्वती	माला	कमल	वीणा	पुस्तक	७	तुंबल	अभय	माला	वीणा	पुस्तक
२	२ सरस्वती	माला	पुस्तक	वीणा	पद्म	८	नारदीय	वरद	पुस्तक	वीणा	कमल
३	कमला ऋक्ष्मणी	वरद	कमल	कमल	पुस्तक	९	सर्वमंगला	वरद	कमल	वीणा	पुस्तक
४	जया	वरद	कमल	पुस्तक	माला	१०	विद्याधरी	कमल	माला	वीणा	पुस्तक
५	विजया	वरद	माला	पुस्तक	कमल	११	सर्वविद्या	माला	कमल	पुस्तक	अभय
६	सारंगी	वरद	पुस्तक	माला	कमल	१२	सर्वप्रसन्ना	अभय	कमल	पुस्तक	माला

इति द्वादश सरस्वती स्वरूप वास्तुविद्या दीपार्णव ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

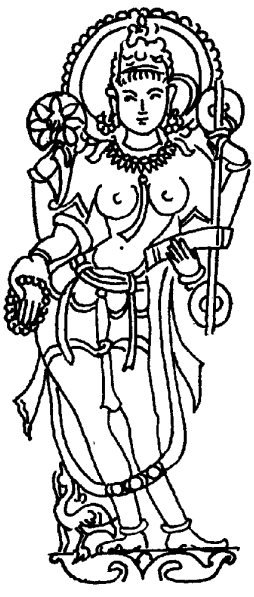

१ सरस्वती

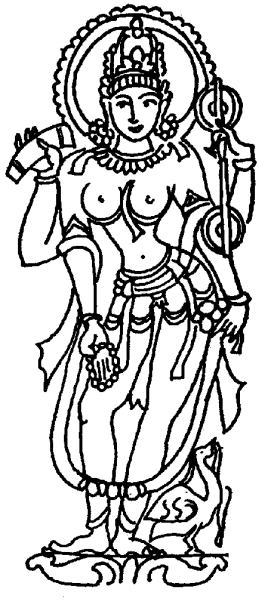

२ सरस्वती द्वितीया

३ कमला-ऋक्ष्मणी

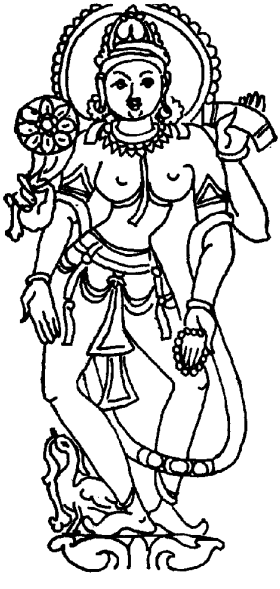

४ जयादेवी

५ विजयादेवी

६ सारंगीदेवी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

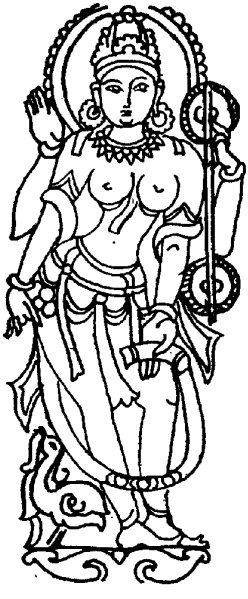

७ तुंबरी

८ नारदी

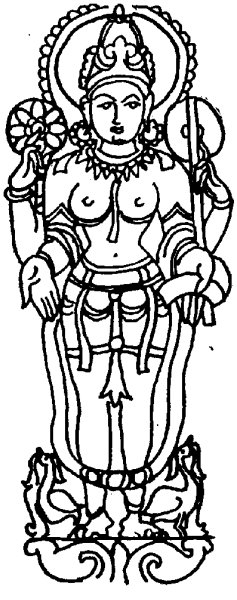

९ सर्वमंगला

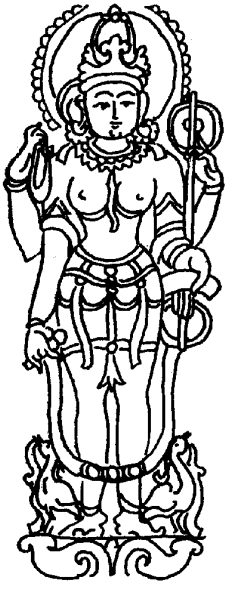

१० विद्याधरी

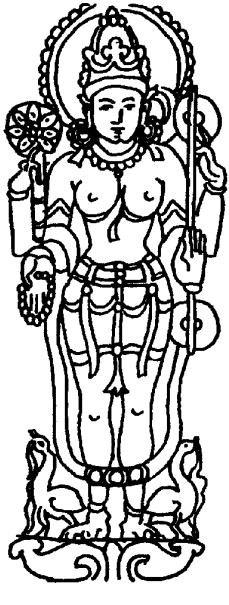

११ सर्वविद्या

१२ सर्वप्रसन्ना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ द्वादश सरस्वती स्वरूपाणि (देवतामूर्ति प्रकरणम्)

एकवक्त्राः चतुर्भुजा मुकुटेन विराजिताः।
प्रभामंडलसंयुक्ताः कुंडलान्वितशेखराः ॥१॥ इति सरस्वती लक्षणानि
अक्षपद्म वीणा पुस्तकैर्महाविद्या प्रकीर्तिता। इति महाविद्या १
अक्ष पुस्तक वीणा पद्मैः महावाणी च नामतः। इति महावाणी २
वराक्षं पद्मपुस्तके शुभावहा च भारती। इति भारती ३
वराक्षपद्म पुस्तकैः सरस्वती प्रकीर्तिता ॥३॥ इति सरस्वती ४
वराक्षं पुस्तकं पद्मं आर्यानाम प्रकीर्तिता॥ इत्यार्या ५
वर पुस्तकपद्माक्ष ब्राह्मी नाम सुखावहा ॥६॥ इति ब्राह्मी ६
वर पद्म वीणा पुस्तकैः महाधेनुश्च नामतः। इति महाधेनुः ७
वरं च पुस्तकं वीणा वेदगर्भा तथाम्बुजम् ॥५॥ इति वेदगर्भा ८
अक्षं तथाऽभयं पद्मपुस्तकैरीश्वरी भवेत्॥ इति ईश्वरी ९
अक्षं पद्मं वरग्रंथौ महालक्ष्मीस्तु धारिणी ॥६॥ इति महालक्ष्मी १०
अक्षं पद्मं पुस्तकं च महाकाल्या वरं तथा। इति महाकाली ११
अक्षपुस्तक वीणाश्च पद्मं महासरस्वती ॥७॥ इति महासरस्वती १२

—इति द्वादश सरस्वतीस्वरूपाणि (जयमते)

		दक्ष		वाम				दक्ष		वाम	
		नीचे	उपर	उपर	नीचे			नीचे	उपर	उपर	नीचे
१	महाविद्या	माला	कमल	वीणा	पुस्तक	७	कामधेनु	वरद	पद्म	वीणा	पुस्तक
२	महावाणी	माला	पुस्तक	वीणा	कमल	८	वेदगर्भा	वरद	पुस्तक	वीणा	कमल
३	भारती	वरद	माला	कमल	पुस्तक	९	ईश्वरी	माला	अभय	कमल	पुस्तक
४	सरस्वती	वरद	कमल	माला	पुस्तक	१०	महालक्ष्मी	माला	पद्म	वीणा	पुस्तक
५	आर्या	वरद	माला	पुस्तक	कमल	११	महाकाली	माला	कमल	पुस्तक	अभय
६	ब्राह्मी	वरद	पुस्तक	माला	पद्म	१२	महासरस्वती	माला	पुस्तक	वीणा	पद्म

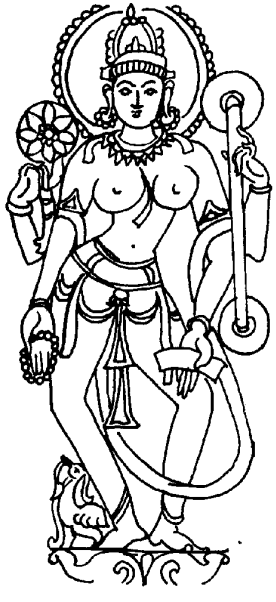

१ महाविद्या

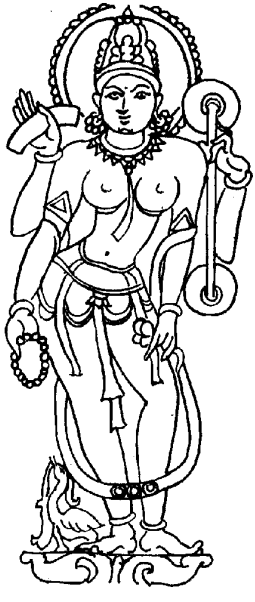

२ महावाणी

३ भारती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४ सरस्वती

५ आर्या

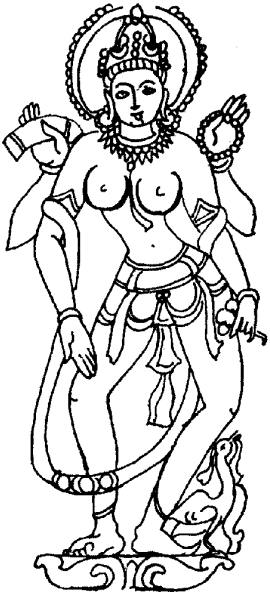

६ ब्राह्मी

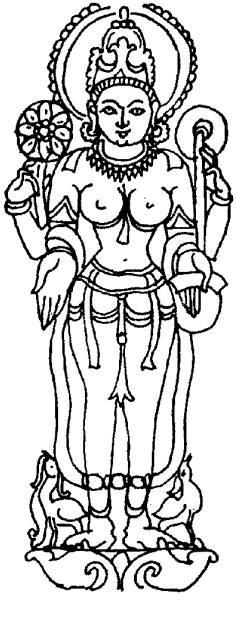

७ कामधेनु

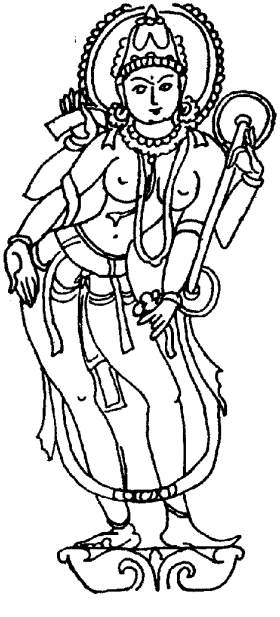

८ वेदगर्भा

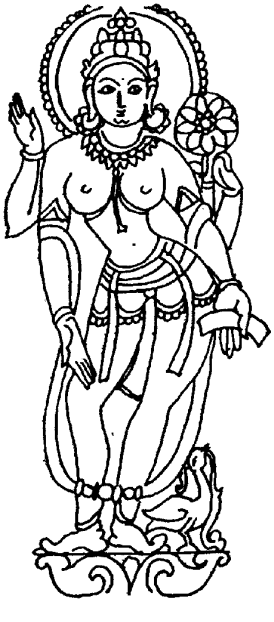

९ ईश्वरी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

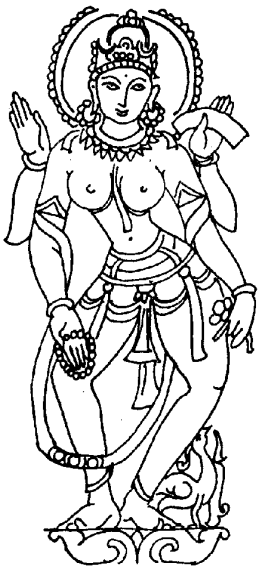

१० महालक्ष्मी

११ महाकाली

१२ महासरस्वती

गौरि का आयातने–गौरि का वामें "श्री" दक्षिणे सिद्धिः पश्चिमे सावित्री; नैऋत्ये सरस्वती वायव्ये भगवती; ईशान्ये गणेशः अग्निमे कार्तिकेय मध्यमां किरीट कुंडलादि अलंकार युक्त गौरि की स्थापना करना गौरि के प्रासाद के द्वार की अष्ट प्रतिहारिणी द्वारपालिका नीचे दी गयी हैं।

दिशा	नाम	आयुध
पूर्व द्वारे	जया–वामे	अभय, अंकुश, पाश, दंड
	विजया–दक्षिणे	पाश, दंड, अभय, अंकुश
दक्षिण द्वारे	अजिता–वामे	अभय, कमल, पाश, दंड
	अपराजित–दक्षिणे	पाश, दंड, अभय, कमल
पश्चिम द्वारे	विभक्ता–वामे	अभय, वज्र, अंकुश, दंड
	मंगला–दक्षिणे	अंकुश, दंड, अभय, वज्र
उत्तर द्वारे	मोहिनी–वामे	अभय, शंख, पद्म, दंड
	स्तंभिनी–दक्षिणे	पद्म, दंड, अभय, शंख

चंडिका देवी के प्रासाद के द्वार के अष्ट प्रतिहार द्वारपाल :

दिशा	नाम	आयुध
पूर्व द्वारे	वताल–दक्षिणे	तर्जनी, खट्वांग, डमरु, दंड
	कोटर (करट)–वामे	डमरु, दंड, तर्जनी, खट्वांग
दक्षिण द्वारे	पिङ्गलाक्ष–दक्षिणे	अभय, खड्ग, गदा, दंड
	भृकुट–वामे	गदा, दंड, अभय, खड्ग
पश्चिम द्वारे	धूम्रक–दक्षिणे	तर्जनी, वज्र, अंकुश, दंड
	कुक्कुट–वामे	दंड, अंकुश, वज्र, तर्जनी
उत्तर द्वारे	रक्ताक्ष–दक्षिणे	तर्जनी, त्रिशूल, खट्वांग, दंड
	सुलोचना (त्रिलोचन)–वामे	खट्वांग, दंड, तर्जनी, त्रिशूल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : विंशतिम्

दिक्पाल

प्राचीन वैदिक साहित्य में दिक्पाल को महत्त्व का स्थान दिया गया है। प्राचीन साहित्य में चार दिशाओं के दिक्पालों में इन्द्र, यम, वरुण और सोम को प्रथम स्थान दिया गया है। उनके सूक्त और ऋचाएं वेदों में हैं। उसके बाद के समय में विदिशा-विकोण के दिक्-पालों में–अग्नि, नैऋति, वायु और ईश को स्थान देकर आठ दिशापति देव के रूप में स्वीकार किये गये हैं। बाद में अधो पाताल के अनंत और ऊर्ध्व-आकाश के ब्रह्मा भी पिछले काल में दिशापति के रूप में माने जाने लगे। इस तरह १० दिक्पालों का पूजन होने लगा।

वैदिक और जैन ग्रंथों में इन सब दिक्पालों को लोकपाल भी कहा जाता है। प्राचीन मंदिरों के बाह्यभीति भाग को मंडोवर कहा जाता है। इस मंडोवर की जंघा में–उपांगों में अनेक देवों, देवियों, देवांगनाओं के साथ दिक्पाल की मूर्ति भी उत्कीर्ण होती है। वहां दिक्पालों की मूर्तियों को दिशा के अनुसार स्थान दिया जाता है। मंदिर के कक्षासन की वेदिका में, स्तंभों के जगती–वितान (गुंबद) में भी कभी-कभी दिक्पालों की मूर्तियां होती हैं।

आठ दिशा-विदिशा के उपरांत, अधो-पाताल में अनंत का स्थान, पश्चिम-नैऋत्य के मध्य में और ऊर्ध्वकोश में ब्रह्मा का स्थान, पूर्व और ईशान के मध्य में शास्त्रकारों ने निश्चित किया है। लेकिन इन दो दिक्पालों की मूर्तियां मंदिर के प्रासादों में कम दिखाई देती हैं।

हिन्दू और जैन पूजाविधि संग्रहों की तरह १० दिक्पालों का भी पूजन किया जाता है। दिक्पालों की मूर्तियों के सपत्नीक स्वरूप बनाने के उल्लेख 'विष्णु धर्मोत्तर' तथा अन्य पुराण आदि ग्रंथों में मिलते हैं। लेकिन ऐसे सपत्नीक दिक्पालों के स्वरूप बहुत कम दिखाई देते हैं। देलवाड़ा के चौमुख मंदिर में और डीसा के सिद्धांबिका के मंदिर में ऐसे सपत्नीक दिक्पालों के स्वरूप मिलते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों दिक्पालों के वर्ण, आयुध, वाहन और भुजा एकसे करने का आदेश है।

दिक्पालों को किरीट, मुकुट, कुंडल आदि आभूषण पहनाने चाहिये। जैनों के 'निर्वाण कलिका' और 'आचार दिनकर' में दिक्पालों के स्वरूप दो हाथ के कहे हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र, अग्नि, मत्स्य, विष्णु धर्मोत्तर, बृहद्संहिता, श्रीतत्वनिधि, देवतामूर्ति प्रकरण, अंशुमद भेदागम, पूर्वकारणागम्, द्वेयाश्रय अपराजित सूत्र, शिल्परत्नम्, रूपमंडन, और अभिलाषितार्थ चिंतामणी ग्रंथों में दो या चार भुजायें, वाहन, आयुध, वर्ण आदि संबंधी भिन्न–भिन्न मत प्रदर्शित किये गये हैं।

दिक्पालों के स्वतंत्र मंदिर (वायुदेव के अतिरिक्त) कहीं देखे नहीं जाते। पूजन-विधि के समय दिक्पालों के नाम के साथ उनके एक प्रमुख आयुध का भी उच्चार किया जाता है। दिक्पालों के मूर्तिस्वरूप में प्रादेशिक भेद कहीं कहीं पाये जाते हैं।

दस दिक्पालों का वर्णन

१. इन्द्र :

पूर्व दिशा के और स्वर्ग के देवों में वह अधिपति माना जाता है। वेदों में इन्द्र, अग्नि और सूर्य के स्वरूपों की स्तुति करते त्रिमूर्ति की कल्पना हुई है। बाद में उन स्वरूपों का परिवर्तन होकर इन्द्र को ब्रह्मा, अग्नि को रुद्र और सूर्य को विष्णु के रूप में ग्रहण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किया गया है। इन्द्र स्वर्ग के, और वायु, आकाश, वृष्टि, विद्युत आदि के अधिपति और पूर्व दिशा के दिक्पाल हैं। इन्द्र को तीन या सहस्र नेत्रवाला कहा है। समुद्र-मंथन से निकला हुआ सात सूंडवाला हाथी उसका वाहन है। वज्र उसका प्रमुख आयुध है। उसका वर्ण पीत है। 'देवतामूर्ति प्रकरण' और 'रूपमंडन' में वरद, वज्र, अंकुश और कमंडल को आयुध माना है। उसकी बायीं ओर सचि (सूलोमा)

स्तम्भ में इन्द्र प्रतिमा

इन्द्राणी को नीचे की ओर खड़ी किया जाता हैं। उसकी सेवा में अप्सरा और गंधर्व हमेशा होते हैं। उसके आयुध वज्र, धनुषबाण और अंकुश होते हैं। उसे श्वेत वर्ण का और त्रिनेत्री कहा है। जैन लोग उसे तपे हुए कंचन वर्ण का मानते हैं। 'बृहद संहिता' और 'विष्णु धर्मोत्तर' में इन्द्र चौदहवीं संख्या का चिन्ह-वाचक (प्रतीक) है। 'अमरकोश' में इन्द्र के ३५ नाम वर्णित किये हैं।

२. अग्नि :

वह अग्निकोण के दिशापति है। वैदिक देवों में उसका स्थान महत्त्वपूर्ण है। उसे धुमकेतू भी कहते हैं। उसके स्वरूप वर्णन में उसे तीन नेत्र, चार हाथ, दो दाढ़ीवाले मुख, तीन पैर, चार सींग वाला और सप्तशिला जैसा कहा गया है।

'संस्कार भास्कर' और 'श्री तत्त्वनिधि' में उसका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है: सात हाथ, चार सींग, सात जीभ, दो मुख, यज्ञोपवीत और तीन पैरयुक्त उसका चित्रस्वरूप वर्णित है। ऐसे विचित्र स्वरूप के कारण उसे यज्ञ-पुरुष के नाम से भी पहचाना जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऐसी विचित्र मूर्ति दक्षिण भारत के चिदम्बरम में और त्रावणकोर के कंडीपुर के शिव मंदिर में हैं। इसके अलावा दो मुख, तीन पैर और चार भुजाओं के स्वरूपवाली मूर्ति खजुराहो और मोढेरा (गुजरात) के सूर्यमंदिर के अग्निकोण में मौजूद है। ऐसी विचित्र मूर्तियां बहुत कम दिखाई देती हैं। इस मूर्ति का वर्ण रक्त है, मेष का वाहन है और मूर्ति के पैर के पास अग्नि ज्वाला युक्त कुंड है। मूर्ति के दोनों ओर स्वधा और स्वाहा नामक उसकी दो पत्नियां खड़ी हुई होती हैं। अग्नि का मुख्य आयुध सूचि शाखा है। उसके चार हाथों में कई जगह वरद, शक्ति-कमल और कमंडल दिए हुए होते हैं। शक्ति की जगह कहीं सूचि भी होती है। इस विचित्र स्वरूप को अग्नि या यज्ञ-पुरुष भी कहा जाता है।

३. यम :

यह दक्षिण दिशा का अधिपति और मृतात्मा का मुख्य देव है। इसे याम्या भी कहते है। इसके पिता विवस्वान और पत्नी धूमौर्णी है। शरीर श्याम वर्ण का है, भैंसे का वाहन और मुख्य आयुध दंड है। मनुष्य के कर्मों की नोंध करते दो हाथों में लेखनी और पुस्तक

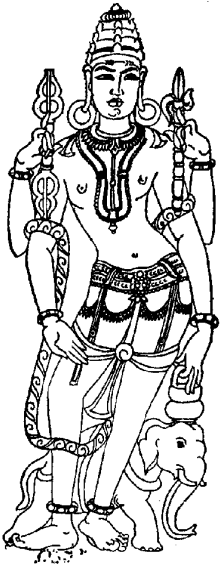

पूर्वे–इन्द्र

दक्षिणे–यम

है। और ऊपरी हाथ में मनुष्य को मृत्यु-काल की याद दिलाता कुर्कुट भी है। पाश और दंड का आयुध भी शिला-शास्त्रों में वर्णित है। उड़िया के भुवनेश्वर में यम के दो हाथों में से एक दंड दिया गया है और भैंसे का वाहन कहा है। उसे धर्मराज या पितृराज भी कहते हैं। उसके पैर के पास मृत्यु और विजयगुप्त की छोटी खड़ी मूर्तियां होती है। श्राद्ध में यम का पूजन होता है।

४. नैऋती :

नैऋत्य कोण के इस दिक्पाल का स्वरूप राक्षस जैसा क्रूर माना गया है। भूत, पिशाच, राक्षसों का अधिपति होने के कारण उसे राक्षसेन्द्र भी कहते है। उसे भैरव और क्षेत्रपाल के नाम से भी पहचाना जाता है। पुराणों में उसे एकादश रुद्र माना है। उसका वर्ण हरित है। दूसरे कई लोग मानते हैं कि उसका श्याम धूम्ररंग है। उसके चार हाथ हैं। उसके हाथों में कत्रिका, खड्ग, ढाल और (नीचे के हाथ में) दुश्मन का मस्तक होता है। शिल्पग्रंथ में उसका वाहन श्वान माना जाता है। कई और मतों से उसका वाहन सिंह, शव, खर, या नर भी माना जाता है। 'अंशु भेदागम' में उसे दाढ़ीवाला माना गया है। और उसके आसपास सात रम्य अप्सराएं दिखाई हैं। नैऋती के लिये ऊर्ध्वकेशी मुकुट करने का विधान है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५. वरुण :

वरुण पश्चिम दिशा का अधिपति है। वेदों में उससे सम्बंधित कई सूक्त हैं। वह सारे विश्व को जलयुक्त करता है, इस लिये उसे वरुण कहा गया है। जगत का वह प्राणाधार माना जाता है। कर्मकांड आदि विधियों में उसका पूजन किया जाता है। जलाशयों में उसकी प्रतिमाएं रखी जाती हैं। चार भुजाओं में पाश का आयुध मुख्य है। उसके आयुध वरद, पाश, कमल और कमंडल माने जाते हैं। उसका वाहन मकर है। अन्य मत से हंस, मृग और मीन भी उसके वाहन माने गये है। उसका वर्ण श्वेत या मेघवर्ण है। उसके दायीं ओर मकरवाहिनी गंगा और बायीं ओर कूर्मवाहिनी यमुना चामर ढालती बनाई गई है। कई जगह बायीं ओर पत्नी वरुणी का स्वरूप भी मिलता है।

६. वायु :

वायव्य कोण का यह अधिपति है। वेद की ऋचाओं में इसे देवों का वास कहा गया है। महाभारत में भीम का और रामायण में उसे हनुमंत का पिता माना है। वायु-पुराण में उसके अनेक कथानक हैं। वायुदेव का मंदिर गुजरात में पाटन के पास है। 'वायडा ब्राह्मण' और 'वायडा वैश्य' का वह इष्टदेव माना जाता है। शामलाजी में वायुदेव की गुप्तोत्तर काल की मूर्ति है। उसका वाहन हरिण है। उसका वर्ण शीत-श्वेत या धूम्र है। उसकी चार भुजाओं के आयुधों में, ऊपर के दो हाथों में, दो ध्वज और नीचे दाये हाथ में वरद और बायें हाथ में कमंडल दिया जाता है। अन्य मत से पाश, पद्म, अंकुश और दंड भी उसके आयुध माने जाते हैं। उसकी पत्नी शिला है।

७. सोम (कुबेर):

उत्तर दिशा का वह नवनिधि अधिपति हैं। यक्षों का अधिपति और देवों का वह कोषाध्यक्ष हैं। बौद्ध संप्रदाय में उसे 'धनाध्यक्ष' या जंभल के नाम से पहचाना जाता हैं। उसकी पत्नी का नाम हरिती है, और उसका वाहन हाथी है। नरयुक्त

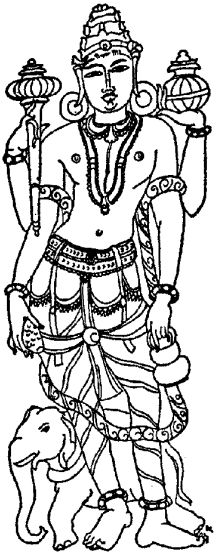

पश्चिमे—वरुण

विमान या बकरी से जुड़ी गाडी भी उसका वाहन है। उसका वर्ण श्वेत है। और कई उसे अनेक वर्ण का भी मानते हैं। उसका पेट बड़ा है। उसके चार भुजाएं हैं। ऊपर के दो हाथों में निधि-द्रव्य की थैली होती है। शिल्पियों के मत से वह फल, गदा, कुंभ और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कमंडलधारी भी हैं। उसका प्रमुख आयुध गदा है।

सोम की पत्नी के चार हाथ होते हैं। उसका स्थान बायें उत्संग में होता है। वह पिंगाक्ष-वृक्षिदेवी मानी जाती हैं। लंका में उसकी वैष्णव के नाम से पूजा होती है। उसके पैर की दायीं ओर शंखनिधि और बायीं ओर पद्मविधि नामक भूत जैसे बलवान भयंकर रूप बनाये जाते हैं। नीचे की ओर विभव और रिद्धि देवी रत्नपात्र धारण किये हुए खड़े होते हैं। दूसरे हाथ से वह कुबेर को आलिंगन दिये होती है।

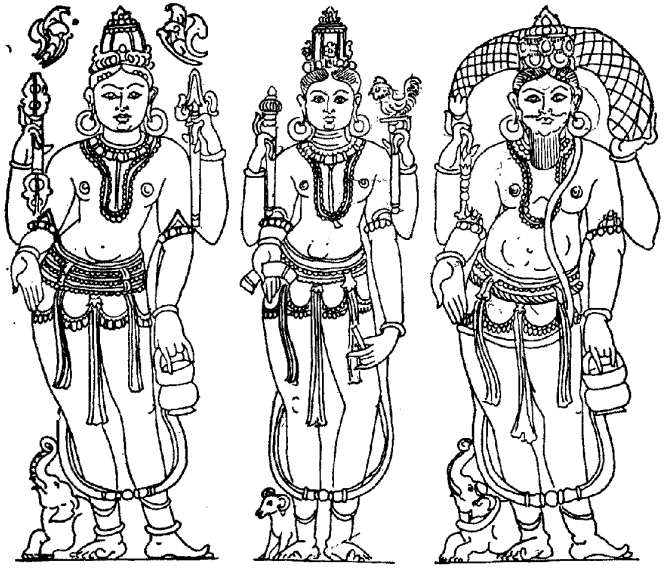

पूर्वे-इन्द्र दक्षिणे-यम उत्तरे-कुबेर (अन्य मते)

८. ईश :

ईशान कोण का अधिपति ईश शिव का स्वरूप है। उसका वर्ण श्वेत और वाहन वृषभ (नंदी) है। वह त्रिनेत्री है। उसके जटामुकुट में अर्धचंद्र है। उसकी चार भुजाओं में वरद, त्रिशूल, नागेन्द्र और बिजोरु है। अन्य ग्रंथों में उसके ही हाथों में त्रिशूल और वरदमुद्रा मानी गई है। वह व्याघ्रचर्म, यज्ञोपवीत और जटामुकुट धारण करता है।

९. अनंत :

वह पाताल का अधोदिक्पाल है। उसका स्वरूप नाभि के ऊपर मनुष्य रूप और नाभि के नीचे सर्प रूप होता है। वह कमल पर बैठा हुआ उत्कीर्ण किया जाता है। उसका वाहन सर्प माना जाता है। उसका वर्ण सित या कृष्णवर्ण है। ऊपर के दो हाथों में त्रिशूल और नीचे बायें हाथ में उसने अक्षसूत्रमाला धारण की है। बलिराजा के वचनानुसार कई उनको विष्णु का रूप भी मानते हैं।

१० ब्रह्मा :

ऊर्ध्व लोकाधीश्वर दिक्पाल है। उसके चार भुजाएं हैं, और वर्ण सुवर्ण जैसा है। उसका वाहन हंस है और हाथों में पुस्तक, माला, शंख तथा कमंडल है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

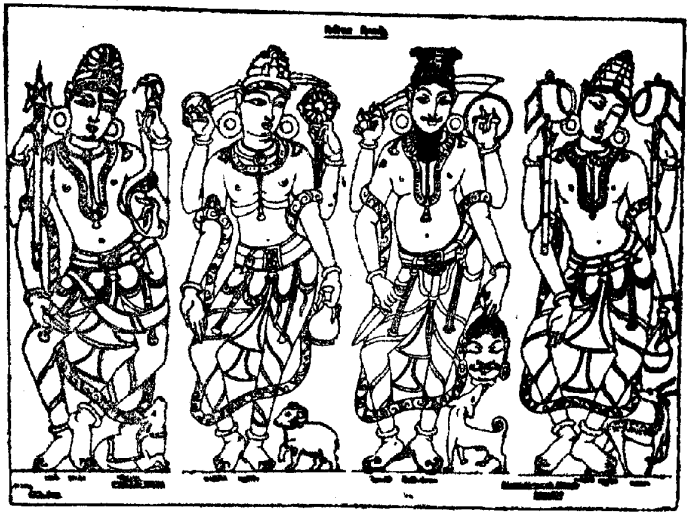

ईशान्ये–ईश अग्निकोणे–अग्नि नैऋत्ये-निऋति वायव्ये-वायु

नैऋत्ये–निऋति वायव्ये–वायु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

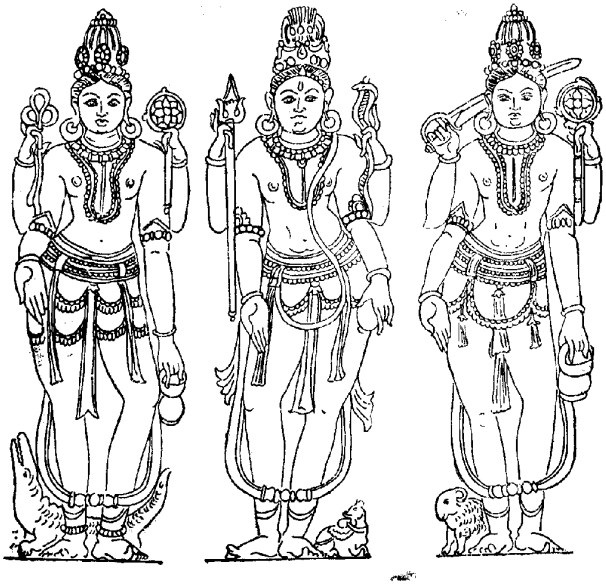

पश्चिमे–वरुण इशाने–ईश अग्निकोणे–अग्नि

पाताले–अनंत आकाशे–ब्रह्मा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिक्पाल स्वरूप (रूपमंडन)

वरं वज्रांङकुशौ चैव त्तुंबों धत्ते करैस्तु यः।
गजारुढः सहस्राक्ष इंद्रःपूर्वदिशाधिपः ॥३॥ इति पूर्वे इंद्र ॥१॥
वरदः शक्तिहस्तश्च समृणालकमंडलुः।
ज्वालापुंजनिभो देवो मेषारुढो हुताशनः ॥२॥ इति आग्नेय्यां हुताशन अग्नि ॥२॥
लेखिनीं पुस्तकं धत्ते कुक्कुटं दंडमेव च।
महामहिषसंरुढो यमः कृष्णाङ्ग ईरित ॥३॥ इति दक्षिणे धर्मः (धर्मराज) ॥३॥
खड्गं च खेटकं हस्ते कार्तिकावैरिमस्तकम्।
द्रंष्टाकरालवदनः श्वानारुढश्च निर्ऋतिः ॥६॥ इति नैऋत्यां निरुतिः ॥६॥
वरतुंबीपाशपद्म हस्तं बिभ्रत् ऋचां चयम्।
नक्रारुढः स कर्तव्यो वरुणः पश्चिमाश्रितः ॥५॥ इति पश्चिमे वरुणः ॥५॥
वरध्वजपताकां च कमंडलुं करैर्दधत्।
मृगारुढो हरिद्वर्णः पवनो वायुदिक्पतिः ॥६॥ इति वायव्ये वायुदेवः ॥६॥
गदा निधि बीजपुर कमंडलुधरः करैः।
गजारुढः प्रकर्तव्यः धनदश्चोत्तरे तथा ॥१॥ इति कुबेरधनदः सोम ॥३॥
वरं तथा त्रिशूलं नागेन्द्रं बीजपूरकम्।
बिभ्राणो वृषभारुढो ईशानो धवलद्युतिः ॥८॥ इति इशानेइश ॥८॥ (रुपमंडन)
ब्रह्मान्नागच्छ संतिष्ठ स्रुव व्यग्रहस्तस्था।
सलोकोर्ध्वाः दिशो रक्ष यथास्थानं नमोस्तु ते ॥९॥ इति ऊर्ध्वे ब्रह्मा ॥९॥
अनंतागच्छ चक्रास्य कूर्मस्थाहिगणैर्वृतः।
अधोदिशं रक्ष रक्ष अनंतेश नमोस्तुते ॥१०॥ इति पाताले अनंत ॥१०॥

कई विधिविधान के ग्रंथों में दिक्पाल के दो आयुध दोम्जाये धारण करने का कई अन्य ग्रंथ में वर्ण वाहन आयुधों का मतमतांतर कहा है। दिक्पाल के आठ स्वरूप कहे हैं। अनंत और ब्रह्मा के स्वरूप का उल्लेख नहीं है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : एकविंशतिम्

ग्रह स्वरूप

वैदिक ज्योतिष में २७ नक्षत्र कहे गये हैं। उससे १२ राशि बनी और उनके ७ राशिपति हैं। अपने स्थान पर होने से उन्हें ग्रह कहे जाते हैं। राहु और केतु किसी भी राशि के स्वामी न होते हुए भी उनको ग्रहमंडल में गिना जाता है। इस तरह ग्रहों की संख्या (७+२) =९की हुई। सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु। मानव जीवन के साथ नौ ग्रह, अपनी गति और स्थान के कारण संबंध कर्ता होने से, ज्योतिषशास्त्र में उन्हें महत्त्व का स्थान प्राप्त है। भावी प्रसंगों की आगाही ज्योतिषी गिनती से करते हैं। देवों की तरह उनका भी व्रत-पूजन किया जाता है। वेदों में भी ग्रहों के उल्लेख हैं।

ग्रहों में सूर्य का स्थान प्रथम और सर्वोच्च है। ग्रहविषयक साहित्य उत्तर भारत के तथा द्रविड़ प्रदेशों के ग्रंथों में बहुत पाया जाता है। उनमें ग्रहों का वर्णन करते हुए उन्हें दो या चार हाथवाले बताया गया है। कई ग्रहों के आयुध और स्वरूप में भी भिन्नता है, ऐसा उनमें वर्णन है। अग्नि, मत्स्य, पद्म, विष्णु धर्मोत्तर, बृहद्संहिता, अंशुमदभेदागम, पूर्वकारणागम, श्री तत्त्वनिधि, देवतामूर्ति प्रकरण, दीपार्णव, अभिलाषितार्थ चितामणि और शिल्परत्नम् आदि ग्रंथों में ग्रहों के बारे में आलोचना है। उसमें कई जगह एक-वाक्यता नहीं है, भिन्नता भी है। कभी अधिक भुजा और आयुध वाला कहा है।

प्रत्येक ग्रह के माथे पर किरीट-कुंडल होना ही चाहिए। अन्य अलंकार भी होने चाहिए ऐसा निर्देश है। नवग्रहों के स्वरूप प्रासाद के वितान (गुंबद) में, कक्षासन में, जंघा या स्तंभ के पाट में उत्कीर्ण होते हैं।

जैनों के श्वेतांबर और दिगंबर संप्रदायों में ग्रहों को गौण माना गया है। फिर भी दोनों संप्रदायों की विधिविधानपूजा में ग्रहों को समाविष्ट तो किया ही गया है। जैन प्रतिमा के परिकर की गादी के नीचे के अधोभाग में नव ग्रहों के छोटे स्वरूप उत्कीर्ण किये जाते हैं। जैन ग्रंथों में ग्रहों के आयुध, भुजा और वाहन एक-से नहीं हैं। नौवींसदी के 'निर्वाणकलिता' में ग्रहों और दिक्पालों को दो-दो भुजावाले बताया गया है। पूजन-विधि के मंत्रों में एकएक आयुध का उच्चार किया जाता है। ग्रहों के मूर्तिस्वरूप में प्रादेशिक भिन्नता भी देखी जाती है।

सूर्य के सिवा अन्य ग्रहों के स्वतंत्र मंदिर और प्रमुख पूज्य मूर्तियाँ नहीं मिलती हैं। १२ या १३वीं शताब्दी में मंदिरों के द्वार पर उत्तरंग के पट्ट में नवग्रह सैकड़ों की संख्या में पंक्तिबद्ध रूप में उत्कीर्ण देखने को मिलते हैं।

नवग्रहों के वर्णन

१. सूर्य (SUN):

वेदों में स्वतंत्र सूक्तों द्वारा आदित्य की बहुत स्तुति की गयी है। ऋग्वेद के एक सूक्त में सूर्य के छह नाम, तथा अथर्ववेद में अदिति के आठ पुत्रों के नाम, सूर्य के कहे हैं। 'तैतिरीय ब्राह्मण' में भी आठ नाम कहे हैं। 'शतपथ-ब्राह्मण' में बारह कहे हैं, उन्हें १२ महीने के साथ गिनाये हैं। इन सब ग्रंथों में सूर्य का 'अरीयमन' नाम दिया है। उसका अर्थ है 'मित्र'। पारसी धर्मग्रंथ 'अवेस्ता' में भी यही नाम है। 'विवस्वत' सूर्य का स्वरूप ईरानी देवता में है। ऋग्वेद में सूर्य को 'पूशन्' कहते हैं। शौरपक्ष में ईरानी प्रजा का

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संबंध सूचक है। भारत में सूर्यपूजा का प्राबल्य बढ़ने का एक कारण है। मुख्य पंचायत देवों में सूर्य का स्थान है। मध्ययुग तक सूर्यपूजा का और उसके मंदिरों का बहुत महत्त्व था। बाद में सूर्य का महत्त्व अन्य ग्रहों जैसा गौण हो गया और उसके स्वतंत्रमंदिर भी कम बनने लगे। मोढ़ेरा का सूर्यमंदिर अत्यंत प्राचीन है। वैसे ही ग्रीस में भी सूर्यमंदिर बने थे। लेकिन अब सूर्यमंदिर नहीं बनते। अफगानिस्तान में भी सूर्य का स्वरूप हमारी मान्यता से ही मिलता-जुलता है। 'देवता मूर्ति प्रकरण' में सूर्य के बारह स्वरूप, चार भुजाओं वाले कहे हैं। ऊपर के दोनों हाथों में कलश, दूसरे दो हाथों में माला, शंख, चक्र, वरद, पाश, त्रिशूल, गदा, सखा आदि में से कोई भी दो आयुध रहते हैं।

SURYADEV
सूर्यदेव

'दीपार्णव' ग्रंथ में सूर्य के तेरह नाम और स्वरूप कहे हैं। और उन्ही सभी को दो हाथ वाले कहे हैं। कमल, शंख, वज्र, दंड, फल और चक्र उसके आयुध हैं।

सूर्य की मूर्ति समपाद मुद्रा में खड़ी होती है। मूर्ति के दोनों हाथों में दंडवाले कमल होते हैं। उसकी छाती योद्धा जैसी होती है। और पैर में उपान (होलबुट) होते ही हैं। बगैर उपान की मूर्तियां बहुत अल्प मात्रा में देखी जाती हैं। सूर्य का वर्ण रक्त-लाल है।

राज्ञी, छाया, निभुक्षा और सुवर्णसा नामक सूर्य की चार पत्नियां हैं। उसमें राज्ञी को रन्नादेवी भी कहते हैं। पुत्र प्राप्ति की इच्छा-वाली स्त्रियां सीमंत प्रसंग के दिनों में इस रांदल माता का पूजन करती हैं। विश्वकर्मा की इस पुत्री का विवाह सूर्य के साथ हुआ माना जाता है।

सूर्य प्रतिमा के परिकर में रत्ना और छाया की स्त्री मूर्तियां, दंडी और पिंगल नामक प्रतिहारों के साथ आंकी जाती हैं। सूर्य का वाहन सप्ताश्व रथ होता है। उसका सारथी अरुण है। 'आगम ग्रंथों' में सूर्य के अलग ही नाम बताये हैं। सूर्यपूजा मध्य एशिया में से शक जाति के साथ भारत में आयी होगी, ऐसा अनुमान उसके वेश परिधान से पुरातत्वज्ञ करते हैं। वेदों में भी सूर्य की स्तुति होने के कारण, वह आर्यावर्त के आठ देवताओं में से एक महत्त्वपूर्ण देव माना जाता हैं। पंच देवों में भी सूर्य का स्थान है (ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, महेश, गणेश): कदाचित् सूर्यपूजा पिछले काल में गौण बनने से शक जाति उसे प्रधान देव मानकर विशेषकर पूजन करने लगी हो।

२. चंद्र (MOON):

नक्षत्र मंडल का अधिष्ठाता चंद्र है। वेद, ब्राह्मण ग्रंथों में चंद्र का शरीर अमृतमय कहा है। अत्रि और अनसूया से उसकी उत्पत्ति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुई है ऐसा विधान पुराण में है। भिन्न-भिन्न ग्रंथों में चन्द्र का वर्णन है। उसके अनुसार उसका वर्ण श्वत है, उसके चार भुजायें हैं और दस अश्व का रथ उसका वाहन है। सिंह भी उसका वाहन माना जाता है। कांति और शोभा नाम की उसकी दो पत्नियां हैं।

३. मंगल: (MARS)

नवग्रहों में उसका स्थान तीसरा है। उसे भूमि पुत्र कहा है। उसका वर्ण रक्त है। उसका वाहन मेष है। 'देवता-मूर्ति-प्रकरण' में उसे चार भुजायुक्त कहा है। अन्य ग्रंथों में उसे दो भुजायुक्त भी कहा है। कई ग्रंथों में आठ घोड़े के रथ का, तो कई जगह आठ बकरे के रथ का वाहन कहा है। ज्योतिष-शास्त्र में उसे पाप ग्रह कहा है। उसकी उत्पत्ति आदि वराह और भूदेवी से होने की संभावना मानी गयी है।

CHANDRADEV
चंद्रदेव

MANGAL
मंगळ

४. बुध: (MERCURY)

चंद्र और रोहिणी से बुद्ध की उत्पत्ति मानी जाती है। उसके चार हाथ होते हैं, वर्ण पीत होता है, और उसका वाहन सिंह (दे.मू. प्रकरण में) माना गया है। कई जगह सर्पासन भी कहा है। चार भुजाओं में वरद, तलवार, ढाल और गदा होती है। अन्य मत से धनुष और अक्षमाला भी है।

५. गुरु: (JUPITER)

बृहस्पति देवों का पुरोहित होने के कारण, गुरु नाम से पहचाना जाता है। वह आंगीरस का पुत्र है। उसका वर्ण पीत है, और वाहन हंस है। अन्य मत से उसका वाहन आठ घोड़े का सुवर्ण रथ है। उसकी लंबी दाढ़ी भी होती है। चार भुजाओं में वरदमुद्रा, अक्षमाला, कमंडल और पुस्तक हैं। अन्य मत से पुस्तक और अक्षमाला भी है।

६. शुक्र: (VENUS)

भृगु का पुत्र और दैत्यों का गुरु शुक्र है। उसका वर्ण श्वेत है। उसका वाहन अश्व है। अन्य मत से उसका वाहन मेंढ़क भी माना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जाता है। उसकी चार भुजाओं में वरद, अक्षमाला, कमंडल, पाश है।

BUDH
बुध

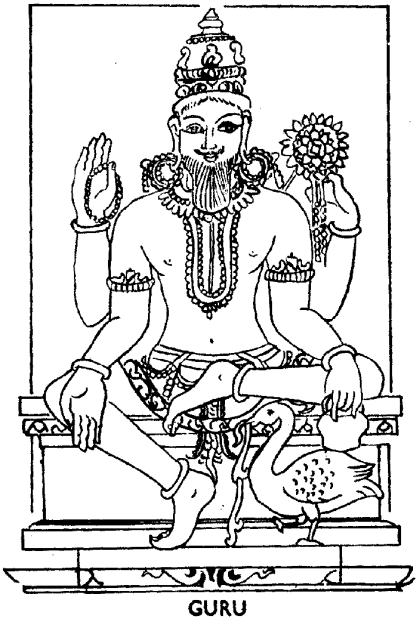

GURU
गुरु

७. शनिः (SATURN)

विवस्वान आदित्य के पुत्र शनि की मूर्तियां द्रविड़ प्रदेशों में प्राप्त होती हैं। उसका भैंसे का या अन्य मत से गिद्ध का वाहन होता है। उसका वर्ण श्याम (अन्य मत से हरा या भूरा) माना जाता है। कद में छोटे और लंगड़े शनि की चार भुजाओं में बाण, धनुष, कलश और अभय है।

८. राहुः (RAHU)

काश्यप ऋषि का वह पुत्र है। देवमंडल में कपट से समुद्रमंथन का अमृत पीने का उसने प्रयत्न किया था, तब विष्णु के चक्र से उसका शिरच्छेदन हुआ था! उसका वह मस्तक राहु नाम से पहचाना जाता है। उसका वर्ण श्याम है और वाहन सिंह है। अन्य मत से उसे अग्निकुंड में बिठाया हुआ बताया गया है। उसका मुख भयंकर है। अपनी चार भुजाओं में वह वरद, तलवार, ढाल और शूल धारण किये होता है। राहु का मस्तक सिंह पर पूजा जाता है। दो भूजा भी होती है।

९. केतुः (KETU)

वह काश्यप ऋषि का पुत्र है। ऊपर कही गई कथा के अनुसार बिना मस्तक का जो धड़ (शरीर) पूजा जाता है, वह है केतु। धड का नाभि के नीचे का भाग सर्पपुच्छाकार है और ऊपर का भाग पुरुषाकार (मस्तक के सिवा) है। उसका वर्ण धूम्र है। अन्य मत से वह श्याम वर्ण का भी माना जाता है। उसका वाहन सर्पपुच्छ या गिद्ध माना जाता है। दो भुजाओं में वरद और गदा है। वह वैडूर्यमणि के अलंकार, और मस्तक पर मुकुट धारण किये है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

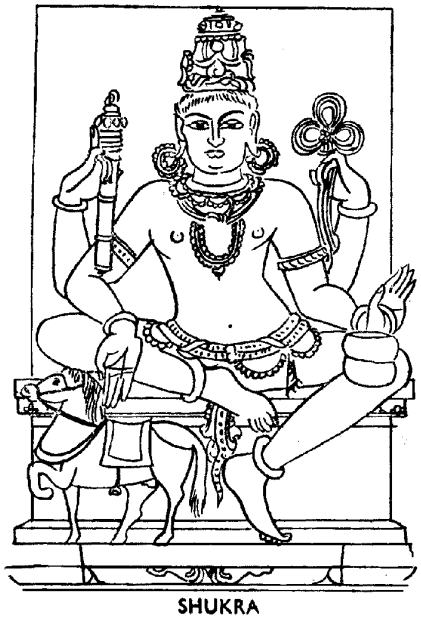

SHUKRA
शुक्र

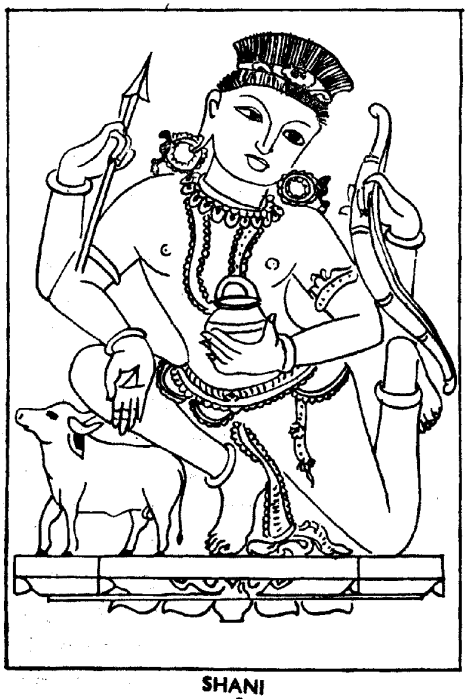

SHANI
शनि

RAHU
राहू

KETU
केतु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ नवग्रह स्वरूप [जयमत देवता मूर्ति प्रकरणम्]

सर्व लक्षण संयुक्तः सर्वाऽभरण भूषितः ।
द्विभुजश्चैकवक्त्रश्च श्वेतपंकजयुक्करः ॥१॥ इति सूर्य ॥१॥
चंद्रश्चित्ते विधातव्यः श्वेतः श्वेताम्बरावृतः ।
दशश्वेताश्वसंयुक्त आरुढः स्यंदने शुभे ॥२॥
द्विभुजो दक्षिणे पाणौ गदां बिभ्रद् यथोदरम् ।
वामोधो वरदो हस्त इति चंद्रो निरूप्यते ॥३॥ इति चंद्र ॥२॥
धरापुत्रस्य वक्ष्यामि लक्षणं चित्रकर्मणि ।
चतुर्भुजो मेषगामी चांगारसदृशद्युतिः ॥३॥
दक्षिणं भूमिगं हस्तं वरदं परिकल्पयेत् ।
ऊर्ध्वशक्तिसमायुक्तं वामौ शूलगदाधरौ ॥५॥ इति मंगल ॥३॥
सिंहारूढं बुधं वक्ष्ये कर्णिकारसमप्रभम् ।
पीतमाल्यांम्बरधरं स्वर्णभूषाविभूषितम् ॥६॥
वरदं खड्गसंयुक्तं खेटकेन समन्वितम् ।
गदया च समायुक्तं बिभ्राणं दोश्चतुष्टयम् ॥१॥ इति बुध ॥४॥
पीतो देवगुरुर्लेख्यः शुक्लश्च भृगुनंदन ।
चतुर्बाहुसमायुक्तश्चित्रकर्मविशारदैः ॥८॥
वरदं चाक्षसूत्रं च कमंडलुधरं तथा ।
दंडिनो च तथा बाहू बिभ्राणं परिकल्पयेत् ॥९॥ इति गुरु ॥५॥
अश्वारुढो भार्गवश्च श्वेतवर्णश्चतुर्भुजः ।
वरदपाश तुंबीभगंदया च सुशोभितम् ॥१०॥ इति शुक्र ॥६॥
शौरितिलसमाभासं गृध्रारुढं चतुर्भुजम् ।
वरदं बाणसंयुक्तं चापशूलधरं लिखेत् ॥११॥ इति शनि ॥७॥
सिंहासनस्थितं राहुं करालवदनं लिखेत् ।
वरखड्गसंयुक्तं खेटशूलधरं लिखेत् ॥१२॥ इति राहु ॥८॥
धूम्रवर्णो द्विबाहुश्च गदावरधारकः ।
गृध्रपृष्ठे समारुढो लेखनीयस्तु केतकः ॥१३॥ इति केतव ॥९॥
ग्रहान् किरीटिनः कूर्यात् नवतालप्रमाणकान् ।
रत्नकुंडलकेयूर हाराभरणभूषितान् ॥१४॥ इति नवग्रहा ॥ (जयोक्त)

नवग्रह स्वरूप वर्णन पृथक पृथक ग्रंथों में मतमतांतर अपराजित और रूपमंडन में नवग्रहों का दो भुजा का दो आयुध कहा है। अन्य मत (दे. मू. प्र.) में चार भुजा का चच्चार आयुध कहा है। ऐसे मतमतांतर से शंका नहीं करनी चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वादश आदित्य स्वरूप (चतुर्भूज दे॰ मू॰ प्र॰ जयमते)

सूर्य स्वरूप चार भुजाओं को कहा है। नववा पुषा और बारहवा विष्णु स्वरूप को फक्त दो भुजा कही है। बाकी दस सूर्य मूर्ति का चार भुजा में उपरके दो भुजा में कमल धारण कराया है। सूर्य मूर्ति का सप्ताश्वरथ वाहन अन्य ग्रंथों में कहा है। यहाँ वाहन का उल्लेख नहीं।

१	सुधाता	कमल माला कमंडल उपर के दो हाथ में कमल	७	भ्रम	शूल सुदर्शन उपर के दो हाथ में कमल
२	मित्रा	सोमरस अमृत शूल दो हाथ में कमल	८	विवस्वान (विश्वभूमि)	त्रिशूल माला दो हाथ में कमल
३	आर्यमणि	चक्र गदा दो हाथ में कमल	९	पूषा	दो हाथ में कमल
४	रुद्र	माला वज्र दो हाथ में कमल	१०	सविता	गदा सुदर्शन दो हाथ में कमल
५	वरुण	चक्र पाश दो हाथ में कमल	११	त्वष्टा	स्रुवा-सखा होम का कल्लं दो हाथ में कमल
६	सूर्य	कमंडल माला दो हाथ में कमल	१२	विष्णु	केवल दो हाथ में सुदर्शनकमल

अथ द्वादश आदित्य स्वरूपम्

अथ द्वादश सूर्यमूर्ति (जयमत) देवतामूर्ति प्रकरणम्
शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि सूर्यभेदांश्च ते जय।
यावत् प्रकाशकः सूर्यो तावन्मूर्तिभिरी डितः ॥१॥
दक्षिणे पौष्करी माला करे वामे कमंडलुः।
पद्माभ्यां शोभितकरा सुधाता प्रथमा स्मृता ॥२॥ इति सुधाता १
शूलं वामकरे यस्या दक्षिणे सोम एव च।
मित्रो नाम त्रिनयना कुशेशयविभूषिता ॥३॥ इति मित्रा २
प्रथमे तु करे चक्रं तथा वामे च कौमुदी।
मूर्तिरर्यमणो ज्ञेया पद्मालोर्ध्वहस्तिनी ॥४॥ इत्यर्यमा ३
अक्षमाला करे यस्य वज्रं वामे प्रतिष्ठितम्।
रौद्री मूर्ति प्रकर्तव्या प्रधाना पद्मभूषिता ॥५॥ इति रुद्र ४
चक्रं तु दक्षिणे यस्या वामे पाशः सुशोभनः।
सा वारुणी भवेन्मूर्तिः पद्मव्यग्रकरद्वया ॥६॥ इति वरुणा ५
कमंडलुर्दक्षिणतोऽक्षमाला चैव वामतः।
सा भवेत् सस्मिता सूर्यमूर्तिः पद्मविभूषिता ॥७॥ इति सूर्य ६
यस्यास्तु दक्षिणे शूलं वामहस्ते सुदर्शनम्।
भ्रममूर्तिः समाख्याता पद्महस्ता शुभा जयेत् ॥८॥ इति भ्रम ७
अथ वामकरे माला त्रिशूलं दक्षिणे करे।
सा विश्वमूर्तिः सुखदा पद्मलांच्छनलक्षिता ॥९॥ इति विश्वमूर्ति विवस्वान्
पूषा खस्थरवेर्मूर्तिर्द्विभुजा पद्मलांच्छना।
सर्वपापहरा ज्ञेया सर्वलक्षणलक्षिता ॥१०॥ इति पूजा ९
दक्षिणे तु गदा यस्या वामहस्ते सुदर्शनम्।
पद्महस्ता तु सावित्री मूर्तिः सर्वार्थसाधनी ॥११॥ इति सावित्री १० सविता
स्रुवं च दक्षिणे हस्ते वामे होमजकीलकम्।
मूर्तिस्त्वाष्ट्री भवेदस्याः पद्मे ऊर्ध्वकरद्वये ॥१२॥ इति त्वष्टा ११

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुदर्शनकरा सव्ये पद्महस्ता तु वामतः।
एता स्यात् द्वादशमूर्ते विष्णोरमिततेजसः ॥१३॥ इति विष्णुः १२
धाता मित्रोऽर्य्यमा रुद्रो वरुणः सूर्य एव च।
भगो विवस्वान् पूषा च सवितात्वष्टृविष्णुको ॥१४॥ इति द्वादशादित्यानां जयमते स्वरुपाणि

१. सुधाता

२. मित्रा

३. आर्यमणी

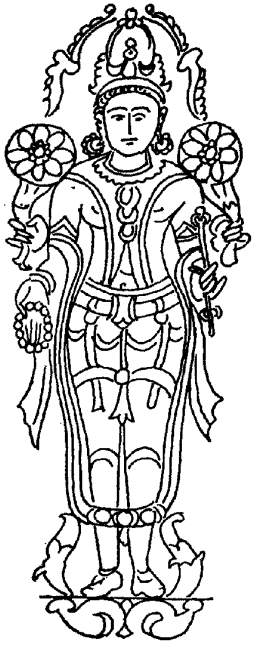

४. रुद्र

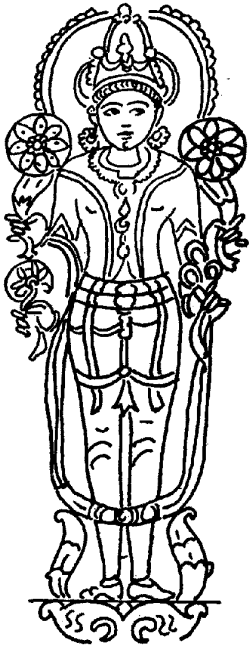

५. वरुण

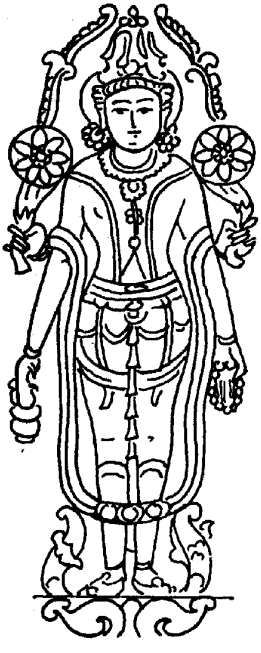

६. सूर्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

७. भ्रम

८. विवस्वान (विश्वमूर्ति)

९. पूषा

१०. सविता

११. त्वष्टा

१२. विष्णु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ त्रयोदशादित्यस्वरूपम्

(वास्तुविद्या दीपार्णव)

वास्तुविद्या दीपार्णव ग्रंथ में त्रयोदशादित्य स्वरूप पृथक प्रकार के कहे है। तेरह आदित्य भी दो दो भुजाओं के सात्विक रूप हैं। शंख, कमल, वज्र, फल, दंड और चक्र धारण किया है। तेरह मार्कंड सूर्य को रथारूढ कहा है, बाकी प्रतिमा के बाहर के वाहन का उल्लेख नहीं है। अन्य ग्रंथ में सप्ताश्वरथ का उल्लेख है। आदित्य स्वरूप त्रयोदश दिव्य दीपार्णव मते।

क्रम	नाम	दायाँ हाथ	बायाँ हाथ	क्रम	नाम	दायाँ हाथ	बायाँ हाथ
१	आदित्य	शंख	कमल	७	धूमकेतु	वज्रदंड	कमल
२	रवि	शंख	वज्रदंड	८	संभवदेव	वज्रदंड	शंख
३	गौतम	पद्म	पद्मदंड	९	भास्कर	फल	शंख
४	भानुमान्	कमल	शतदल लीलोतरी	१०	सूर्यदेव	फल	दंड
५	शाचित	कमल	शंख	११	संतुष्ट	चक्र	कमल
६	दिवाकर	वज्रदंड	वज्रदंड	१२	सुवर्ण केतु	फल	पद्म
				१३	मार्तण्ड	कमल रथारुढ़	कमल

अथ त्रयोदशादित्यस्वरूपाणि

(वास्तुविद्या दिपार्णव)

विश्वकर्मा उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि आदित्यांश्च करद्वयान्।
त्रयोदशादित्यानां (पोक्त) रुपं शृणु विचक्षण ॥१॥
प्रथमे हस्तके शंखः वामे पद्मं च हस्तके।
प्रथमं यद्भवेन्नाम आदित्येति विधीयते ॥२॥ इति आदित्य ॥१॥
प्रथमे हस्ते शंखस्तु वामे तु वज्रदंडकम्।
द्वितीयं तु भवेद्यस्य रविर्नाम विधीयते ॥३॥ इति रविदेव ॥२॥
प्रथमे दक्षिणे हस्ते वामे च पद्मदंडकम्।
तृतीयस्तु भवेद् देवो गौतमस्तु विधीयते ॥४॥ इति गौतम ॥३॥
प्रथमे पद्मं तु हस्ते वामे च तदलं करे।
चतुर्थन्तु भवेन्नाम भानु (मान विधियतो) मानिति संज्ञितः ॥५॥ इति भानुमान् ॥४॥
प्रथमे हरते पद्मं वामे शंखन्तु हस्तके।
पंचमस्तु भवेद् देवः शाचितो नाम विश्रुतः ॥६॥ इति शाचितदेव ॥५॥
प्रथमे वज्रदंडञ्च वामे तु वज्रदंडकम्।
षष्ठोनुस भवेद् देवो दिवाकर विधीयते ॥७॥ इति दिवाकर ॥६॥
प्रथमे वज्रदंडं च वामे पद्मं च हस्तके ॥
सप्तमं तु भवेन्नाम धूमकेतुरिति श्रुतम् ॥८॥ इति धूमकेतु ॥७॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रथमे वज्रदंडस्तु वामे शंङ्खश्च हस्तके ।
अष्टमस्तु भवेन्नाम संभवेति विधीयते ॥९॥ इति संभव ॥८॥
प्रथमे फलं हस्ते च वामे शङ्खस्तु हस्तके ।
नवमस्तु भवेन्नाम भास्कराख्यो विधीयते ॥१०॥ इति भास्कर ॥९॥
प्रथमे फलं हस्ते तु वामे दंडश्च हस्तके ।
दशमस्तु भवेन्नाम सूर्यदेवो विधीयते ॥११॥ इति सूर्यदेव ॥१०॥
प्रथमे चक्रं हस्ते च वामे पद्मं च हस्तके ।
एकादशो भवेन्नाम संतुष्टस्तु विधीयते ॥१२॥ इति संतुष्ट देव ॥११॥
प्रथमं च फलं हस्ते वामे पद्मं तु हस्तके ।
द्वादशः स भवेन्नाम स्वर्णकेतु विधीयते ॥१३॥ इति सुवर्ण केतु ॥१२॥
उभयहस्तयोः पद्मे रथारुढश्च संस्थित : ।
त्रयोदशो भवेद् नाम मार्तण्डस्तु विधीयत ॥१४॥ इति मर्तण्ड ॥१३॥ इति त्रयोदशादित्य ॥

१. आदित्य

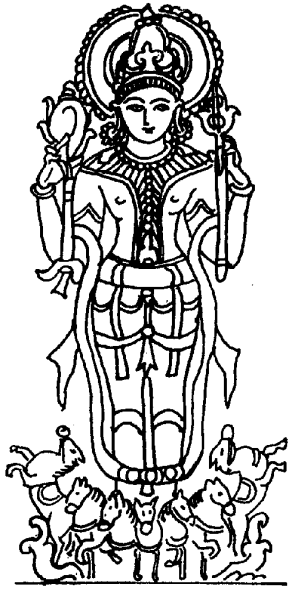

२. रवि

३. गौतम

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

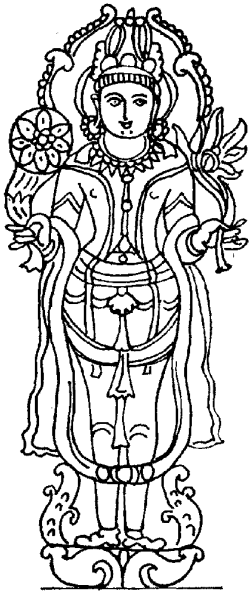

४. भानुमान्

५. शाचित

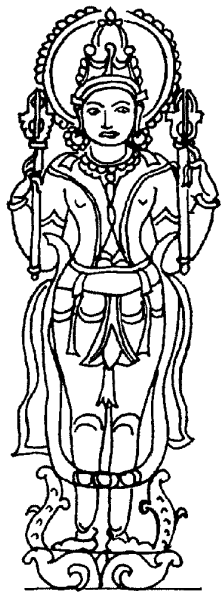

६. दिवाकर

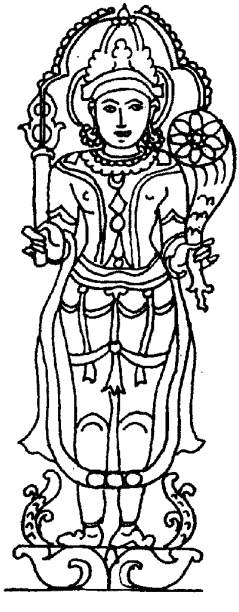

७. धूमकेतु

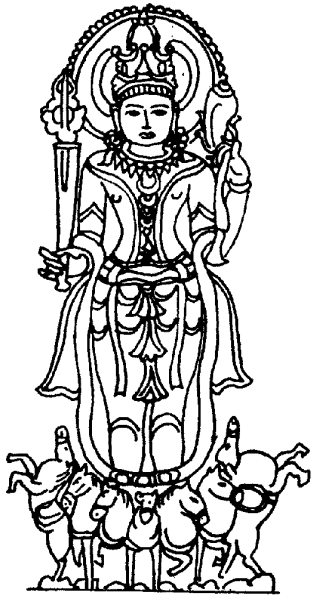

८. संभवदेव

९. भास्कर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्क : द्वार्विंशतिम्

प्रकीर्णक देव

गणेश विनायक स्वरूप

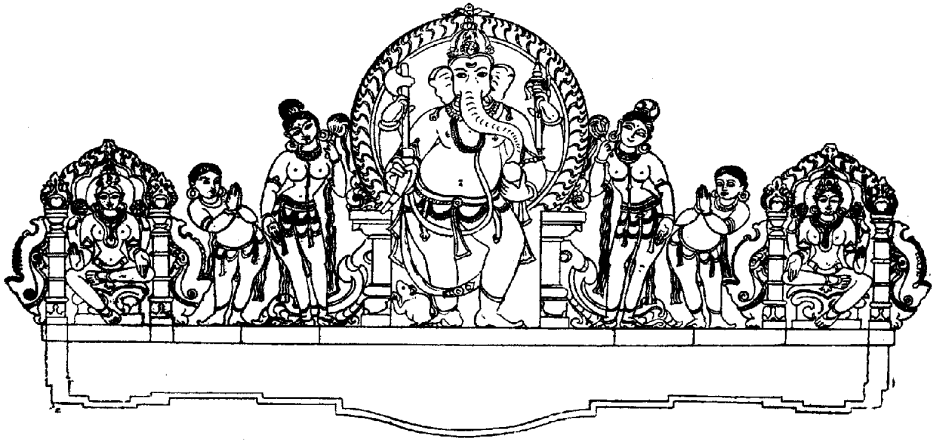

जया गान ऋद्धि विनायक सिद्धि विजया

पंचायतन में और सर्व देवों में गणेश का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वे सर्व विघ्नों के नाशकर्ता माने जाते हैं। इसीलिए किसी भी शुभ कार्य में उनकी प्रथम पूजा होती है। ग्रंथ रचना में भी कवि सर्व प्रथम उनको स्तुति करके ग्रंथ का प्रारंभ करते हैं। मकान, राजमहल या मंदिर आदि स्थापत्य में भी प्रारंभ में गणेश का पूजन किया जाता है। द्वार के उत्तरंग में भी गणेश प्रतिमा की स्थापना की जाती है। इस तरह **'श्रीगणेशाय नमः'** से हरेक कार्य का प्रारंभ होता है।

ऋग्वेद में भी गणपति शब्द आता है। "गणानात्वा गणपति हवा महे" इस प्रसिद्ध ऋचा में गणपति का स्मरण किया गया है।

ईसापूर्व छठवीं शताब्दी के 'बोधायन धर्मसूत्र' में 'गणेश तर्पण' दिया है। उसमें गणेश के अनेक नाम दिये हैं जैसे :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१ विघ्न विनायक २ हस्ति मुख ३ एकदंत ४ वक्रतुंड ५ लंबोदर आदि।

'मुद्गल पुराण' में गणेश के ३२ स्वरूप उनके नाम और लक्षण के साथ वर्णित किये गये हैं।

१ बाल २ तरुण ३ भघन ४ पीर ५ शक्ति ६ द्विज ७ सिद्ध ८ उच्छिष्ट ९ विघ्न हर १० क्षिप्र हेरंब आदि हर स्वरूप हैं।

बौद्ध संप्रदाय में गणेश को भयंकर तथा विघ्नरूप माना गया है। उसमें शबरी देवी गणेश को पैर के नीचे कुचलती दिखाई देती है। गणेश को उन्होंने सांप्रदायिक देव माना है।

गणेश का सामान्य स्वरूप इस प्रकार है : सूँडवाला हस्ति का मुख, बड़ा पेट, सिंदूर वर्ण, टूटा हुआ एकदंत, साथ में उनकी दो पत्नियां-ऋद्धि-सिद्धि, (शुद्धि और बुद्धि) होती हैं। विशेषत: वे ललितासन में बैठे होते हैं। कहीं खड़ी मूर्तियाँ भी पायी गई हैं।

(१) **श्री गणेश स्वरूप** : दंड, फरसी, पद्म और मोदक वाले गणेश का वाहन मूषक है। गणेश सिद्धि के दाता माने जाते हैं।

(२) **हेरंब गणेश** : पंचवक्त्र के–पाँच मुख और तीन-तीन नेत्र वाले हेरंब–गणेश्वर को चूहे का वाहन है। वे सर्व कामना से साधक हैं। दश भुजा के हेरंब के दायें हाथों में वरद, अंकुश, दंड, परशु और अभय तथा बायें हाथों में कपाल (खोपड़ीपात्र) धनुष, माला, पाश और गदा होते हैं।

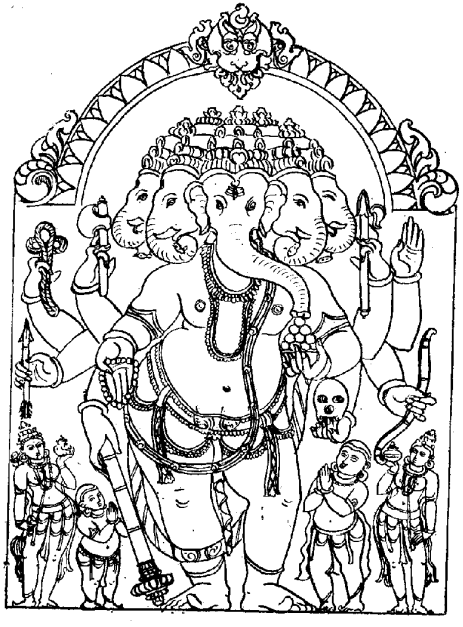

पंचमुख हेरंब गणेश शुध बुधनारी सहित

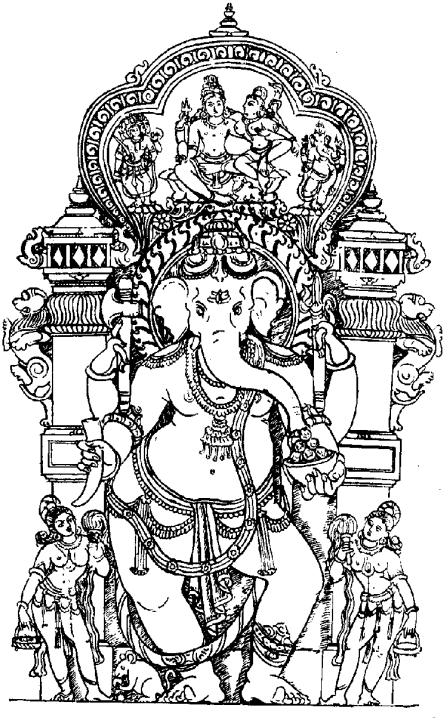

शिवपंचायत गणेश परिकर युक्त

(३) **'शिल्प रत्न'** के मत से वे सूर्य जैसे तेजस्वी होते हैं। इनका वाहन सिंह का होता है। तथा १० भुजायें होती हैं, जिनमें वरद, अभय, मोदक, दंड, टंक, धनुष, माला, मुद्गर, अंकुश और त्रिशूल धारण किये होते हैं। उनका कमल जैसा श्वेत वर्ण और सुवर्ण जैसा मुख कहा है।

(४) **हेरंब गणेश** का तीसरा स्वरूप इस तरह वर्णित किया गया है: सिंदूर वर्ण, तीन नेत्र, सफेद कमल पर बैठे हुए इन गणेश के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आठ हाथों में अभय, मोदक, धनुष, टंक, माला, मुद्गर, अंकुश और त्रिशूल होते हैं।

(५) **अष्टभुजा हेरंब** : सिंह का वाहन, पाँच मुख, तीन नेत्र और सूर्य-जैसे तेजस्वी, वस्त्रों से शोभित ये हेरंब गणेश विश्व के अर्थ-दाता माने जाते हैं। उनकी आठ भुजाओं में माला, अंकुश, मोदक, परशु, कमल, सर्प, वरद, और सूंड में सुवर्णकुंभ होते है।

(६) **दशभुजा हेरंब** : पाँच मुख की यह हेरंब की मूर्ति पाँच भिन्न-भिन्न वर्णों की मानी गई है। सुवर्ण, मोती, हरा, कमल और चंद्र-जैसा उनका वर्ण है। तीन नेत्र हैं। सिंह का वाहन नाग का आभूषण है। सूर्य-जैसे तेजस्वी मुकुट में चंद्र धारण किया हुआ है। उनकी दस भुजाओं में वरद, उधमेय, मोदक, दंत, परशु (टंक), माला, मुद्गर, अंकुश, त्रिशूल और कमल धारण किया होता है।

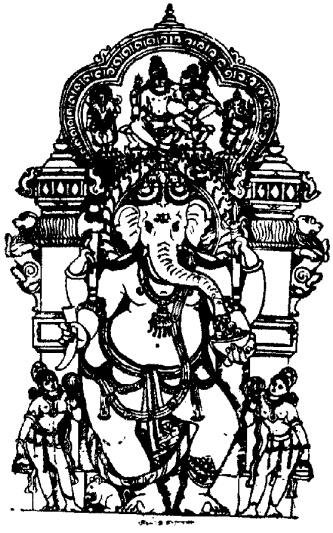

पंचमुख हेरंब गणपति शुध बुध नारि सहित

(७) **क्षिप्र गणेश** : रक्त वर्ण, चंद्र-जैसी कांति, तीन नेत्र और चार भुजावाले इन गणेश के आयुध इस प्रकार हैं : पाश, अंकुश, कल्प-वृक्ष की शाखा, सुवर्ण कुंभ या दंत धारण किया होता है।

(८) **क्षिप्र गणपति**: हस्ति का मुख, सूर्य-जैसे तेजस्वी नेत्र, तरुण स्वरूप, रक्त वर्ण, मुकुट और हार से ये शोभित होते हैं। उनकी छः भुजाओं में पाश, अंकुश, कल्पलता, स्वदंत, सर्प और बीजोरु होते हैं।

(९) **गजानन** : रक्तवर्ण, और हाथी के मुखवाले इन गणेश के हाथों में रत्नकुंभ, अंकुश, फरसी और दांत होते हैं।

(१०) **वक्रतुंड** : बड़ा पेट, तीन नेत्र और चार हाथ होते हैं। उनमें पाश, अंकुश, वरद और अभय मुद्रा होती है। दोनों बाजू सिद्धि-ऋद्धि होती हैं। उनके कान बड़े होते हैं।

(११) **उच्छिष्ट गणेश** : चूहे पर बैठे हुए, तीन नेत्र और सर्प का यज्ञोपवीत होता है। टूटा हुआ दांत, माला, परशु और मोदक उनके चार हाथों में होते हैं।

अन्य मत से बाण, धनुष, पाश और अंकुशधारी होते हैं। कमल पर नग्न स्वरूप में बैठे होते हैं।

(१२) **नागेश्वर (द्रविड)** : दायें नीचे हाथों में गदा, त्रिशूल और स्वदंत तथा बायें हाथों में पाश, चक्र, गन्नों का धनुष और बीजोरु होते हैं।

(१३) **रात्रि गणेश** : सुवर्ण के आसन पर बैठे हुए, तीन नेत्र और पीत वर्ण के इन गणेश की चार भुजायें होती हैं। पाश, अंकुश, मोदक और दांत धारण किये होते हैं।

(१४) **बीज गणेश** : 'शिल्परत्न' ग्रंथ के अनुसार इनका स्वरूप इस प्रकार है : हाथी का मुख, बड़ा पेट, और चार भुजाओं में माला, परशु, दंड और मोदक है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(१५) **बीज गणपति** का दूसरा रूप इस प्रकार है : सिंदूर वर्ण और तीन नेत्र हैं। चार भुजा में दंड, पाश, अंकुश और बीजोरु होते हैं।

(१६) **लक्ष्मी गणेश** : कमल से विभूषित, और सर्व आभूषण से शोभित गणेश के अगल-बगल उनकी दो पत्नियाँ शुद्धि-बुद्धि या तुष्टि-पुष्टि होती हैं। इनके तीन नेत्र और चार भुजायें होती हैं। उनमें दांत, अभय, चक्र और वरद होते हैं। सूंड़ में मणियुक्त कुंभ होता है। मूषक का वाहन है। ये समुद्रपुत्र लक्ष्मी-गणेश सुवर्णमय होते हैं।

कार्तिकेय

कार्तिकेय के अनेक नाम हैं : स्कंद, सुब्रह्मण्य, सोमस्कंद आदि। वैदिक वाङ्मय में इन नामों का उल्लेख नहीं है सिर्फ कुमार, कार्तिकेय, स्कंद ऐसे नाम मिलते हैं। पुराणों में इनकी शक्ति विषयक कथायें मिलती हैं। वे शिव-पार्वति के पुत्र माने जाते हैं। देवताओं के सेनापति होनेसे उनका एक नाम 'सेनानी' भी है। उन्होंने तारकासुर और क्रौंच को मारा था। उनके १७ नाम और स्वरूप 'शैवागम सेखर' ग्रंथ में दिये हैं। मुख छः होनेसे वे **षड्मुखम्** कहलाये।

कार्तिकेय : सूर्य और कमल-जैसा पीत वर्ण, तरुणावस्था, मयूर का वाहन। शहर और खेत के दरवाजे पर बारह भुजा के कार्तिकेय को स्थापित करना चाहिए। खर्वत (गाँव) में चार भुजा की मूर्ति की तथा ग्राम या वन में दो भुजा की मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए।

द्वादशभुजा कार्तिकेय : बारह भुजावाले कार्तिकेय के दायें हाथों में शक्ति, पाश, खड्ग, बाण, त्रिशूल, वरद या अभय मुद्रा होती है। बायें हाथों में वे धनुष, पताका, मुष्टि, तर्जनी, ढाल और कुक्कुट धारण किये होते हैं। छः मुख और मयूर का वाहन होता है।

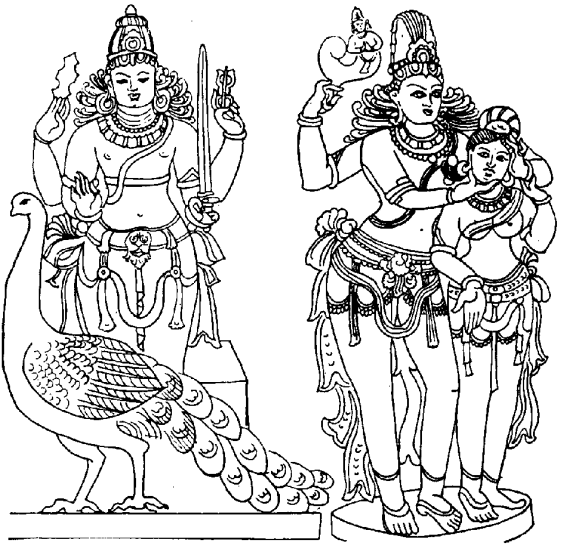

कार्तिकेय–स्कंद सुब्रह्मण्य

चतुर्मुख कार्तिकेय : बायें हाथों में शक्ति और पाश, दायें हाथों में तलवार, वरद या अभय मुद्रा होती है। छः मुख और मयूर का वाहन होता है।

द्विभुज कार्तिकेय : बायें हाथ में शक्ति और दूसरे हाथ में कुक्कुट होता है। वाहन मयूर का और छः मुख होते हैं।

अपराजित सूत्रम्, मत्स्यपुराण, रूपमंडन, देवतामूर्ति प्रकरण, काश्यप शिल्प, अग्निपुराण, आदि ग्रंथों में थोड़े बहुत परिवर्त्तन के साथ भिन्न-भिन्न स्वरूप दिये गये हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हनुमान–मारुती

श्रीरामचंद्र के परिवार में हनुमान का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। रामचंद्र के परम भक्त होने से उनकी स्थापना राममंदिर में अवश्य होती है। वे वायु-मरुत के पुत्र होने से मारुती के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे प्रतापी, वज्रदेही और बलवान हैं। वे रुद्र के अंश माने जाते हैं।

उनकी दो प्रकार की मूर्तियाँ होती हैं। एक नरमुख की और दूसरी वानर मुख की। वानर मुख की मूर्ति के चारों ओर वानर सैन्य भी उकेरा जाता है।

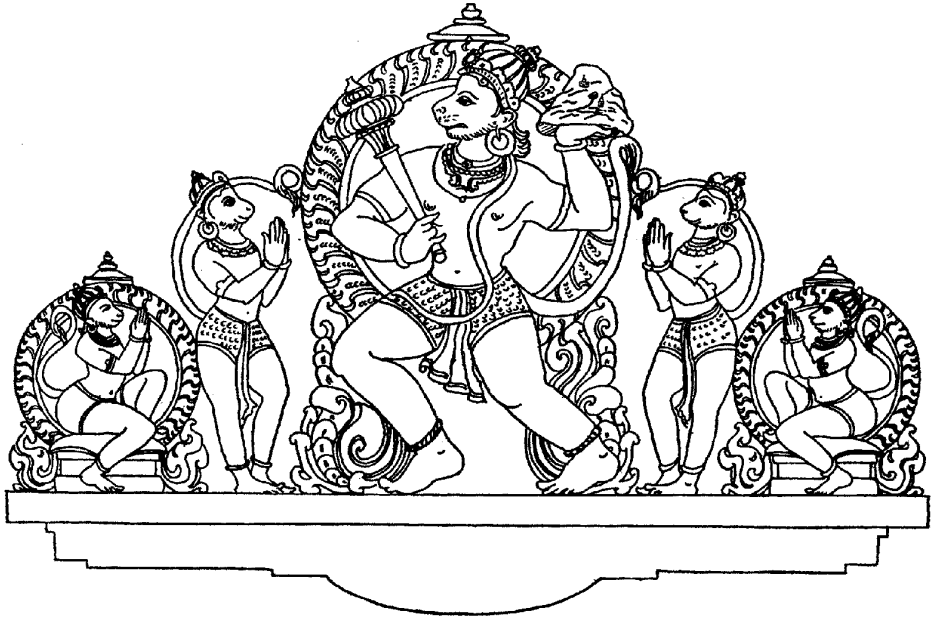

सुग्रीव हनुमन्त–मारुती जांबुवंत

(१) **हनुमन्त स्वरूप** : हनुमान की मूर्ति के दो हाथ हैं। एक हाथ छाती पर रहता है या उसमें गदा रहती है। दूसरे हाथ में से पर्वत धारण किया होता है। एक पैर सीधा और दूसरे के नीचे दैत्य या पनौती होती है। कमर पर वस्त्र बंधा रहता है। रामचंद्र के सामने वे दास-हनुमान की मुद्रा में होते हैं–दोनों हाथ जुड़े हुए–प्रणाम मुद्रा में होते हैं।

(२) **हनुमन्त** : (ब्रह्माण्ड पुराण) : सुग्रीवादि-समग्र वानर जाति सहित रक्तरंगी लोचनवाले हनुमन्त–पीले वस्त्र और अलंकार सहित बायीं भुजा में गदा और पाश तथा दायीं भुजा में कमंडल तथा ऊपरी हाथ में दंड होता है। वे पीले केश और सुवर्ण कुंडल से शोभित हैं।

(३) **पंचवक्त्र हनुमन्त** (पांच मुख के हनुमान–सुदर्शन संहिता): पाँच मुख के हनुमन्त के तीन नेत्र और दस भुजायें हैं। वे सर्व कामना, अर्थ और सिद्धि को देनेवाले हैं। पूर्व मुख सूर्य-जैसा तेजस्वी है, लेकिन उन्नत भृकुटीवाला उसका स्वरूप भयंकर है। दक्षिण मुख नरसिंह-जैसा उग्र, अद्‌भुत और तेजस्वी है। पश्चिम मुख गरुड़-जैसा है। टेढ़े मुख वाला यह मुख महाबलवान है, जो नाग के विष को हरता है। उत्तरमुख वराह-जैसा श्याम दीप्त रूप है। वह जर रोग का नाश करता है, ऐसा माना जाता है। पाँचवा मुख अश्व का है, वह घोर दानव का नाश करता है।

रुद्ररूप हनुमन्त दया के सागर हैं। वे पीतांबर-मुकुट से शोभित हैं। वे पीली आँखोंवाले हैं। उनकी दस भुजा में खड्ग, त्रिशूल, खट्वांग, पाश, अंकुश, पर्वत, मुष्टि, गदा, कमंडल और दसवीं भुजा ज्ञानमुद्रा की है। वे पनोती पर खड़े हैं। सर्व आभूषणों से शोभित दिव्यमाला और दिव्यगंधकों का लेपन किये हुए ये पंचमुखी हनुमान बड़े ही प्रभावशाली लगते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राम पंचायतन हनुमन्त
सुग्रीवादि वानरों सहित

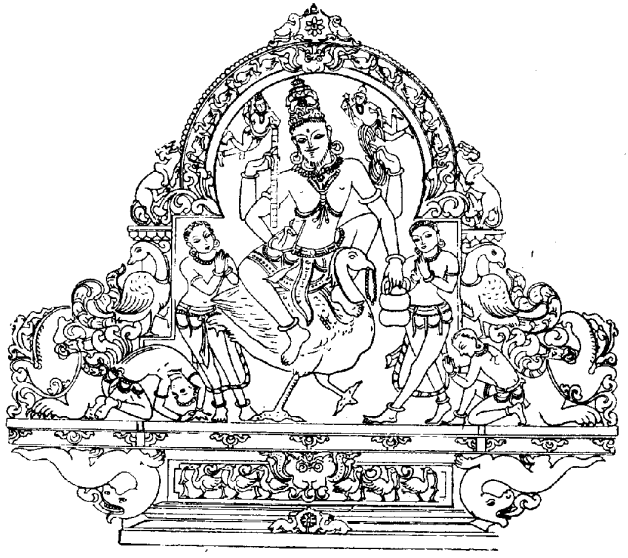

श्रीविश्वकर्मा जय, मय,
त्वष्टा, अपराजित चार
मानसपुत्रों सहित

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(४) **पंचमुख हनुमान** : इन हनुमान के पाँचों मुख विविध प्रकार के हैं, जैसे वानर, नरसिंह, गरुड़, वराह और अश्व। हरेक मुख के तीन-तीन दिव्य चक्षु होते हैं। उनकी दस भुजा में कमल, तलवार, ढाल, पुस्तक, अमृत कुंभ, अंकुश, हले, खट्वांग और सर्प होते हैं।

(५) **एकादशमुख हनुमन्त** (अगस्त्य संहिता): ये ग्यारह मुख के हनुमान हैं। पूर्व का मुख वानर का, अग्नि कोण का क्षत्रिय, दक्षिण का नरसिंह, नैऋत्य का क्षेत्रपाल गण, पश्चिम का गरुड़मुख, वायव्य में भैरवमुख, उत्तर में कुबेरमुख, ईशान में रुद्रमुख, ऊपर का अश्वमुख तथा नीचे शेषमुख होता है।

राम के ये दूत महाबलवान होते हुए भी सौम्य रूपवाले हैं।

दास–हनुमन्त

पंचमुख रुद्र हनुमन्त

विश्वकर्मा

(१) **विश्वकर्मा** :

वास्तुशास्त्र के अधिष्ठाता देव ब्रह्मा का ही स्वरूप है। विश्वकर्मा चार भुजा के होते हैं। उनके हाथों में सूत्र-माला, पुस्तक, गज (कंबा) और कमंडल होता है। इनके एक मुख, तीन नेत्र और हंस का वाहन होता है।

अग्निपुराण में दो भुजा के लोकपाल-विश्वकर्मा वर्णित किये गये हैं। वे माला और पुस्तक धारण किये होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(२) **महा विश्वकर्मा :**

ईश्वर जैसी कीर्तिवाले इन्होंने ही ब्रह्मांड का सर्जन किया। ब्रह्मा-जैसा ही वर्ण है। पूर्व के मुख को विश्व भिरुति कहते हैं, दक्षिण के मुख को विश्वविहू, पश्चिम के मुख को विश्वस्रष्टा और उत्तर के मुख को विश्वस्थ कहते हैं।

विश्वकर्मा के ये चार मुख भिन्न-भिन्न स्वरूप के प्रतीक हैं। जैसे पूर्वमुख विश्वकर्मा, दक्षिणमुख मय, पश्चिममुख मनु, और उत्तरमुख त्वष्टा है। विश्वकर्मा के पुत्र को स्थपति कहते हैं। मय के पुत्र को सूत्रग्राही, त्वष्टा ऋषिपुत्र को वर्धकी और मनु के पुत्र को तक्षक कहा है।

इस तरह चारों दिशा के चार मुख के नाम और उनके पुत्र शास्त्रों में वर्णित किये गये हैं।

विश्वकर्मा के दस भुजा का स्वरूप कहा है। अलग-अलग व्यवसायी अपने-अपने औजारों के आयुध बताते हैं।

विश्वकर्मा–चार मानसपुत्र

अन्य मूर्तियां

१. **ऋषिमूर्ति** : माथे पर जटा, दाढ़ीवाले, शांत और ध्यान में बैठे हुए ऋषिमुनि के दो हाथ होते हैं। उनमें कमंडल और माला होती है।

२. **बुद्धमूर्ति** : ये पद्मासन में बैठे हुए होते हैं। हाथ और पैर में कमल की रेखा अंकित होती है। प्रसन्न मुखाकृति होती है। यह बुद्ध का आदि स्वरूप है। बुद्ध संप्रदाय में बाद में उनकी प्रतिमाओं के लक्षण, नाम, अवतार आदि भिन्न-भिन्न स्वरूप में वर्णित किये गये। यहाँ बुद्ध प्रतिमावराह संहिता के अनुसार जगत के साक्षात पिता के रूप में मानी जाती है।

३. **जिन प्रतिमा** : पैरों की गाँठ तक की लंबी भुजावाली, श्रीवत्स विह्नत से शोभित, शांत प्रकृति की यह प्रतिमा सदा तरुण अवस्था में यौवनपूर्ण होती है।

जैन तीर्थंकर की इस खडी कायोत्सर्ग प्रतिमा का स्वरूप बड़ा प्रभावशाली लगता है।

चौबीस तीर्थंकरों की आसनस्थ–पद्मासन में बैठी हुई प्रतिमाओं का स्वरूप एक ही तरह का होता है। आगे दिये हुए लक्षणों (प्रतीक), लांछनों से पता चलता है कि वे कौनसे तीर्थंकर हैं। गुप्तकाल और आगे के काल की मूर्तियाँ लांछन नहीं होती थी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४. **यज्ञमूर्ति वृषभ** (गो. बा.): यज्ञवृषभ के चार वेद रूपी चार सींग हैं। प्रातः, मध्याह्न और संध्यारूपी तीन पैर हैं। ब्रह्मोदन प्रवज्य के दो मस्तक हैं। मंत्र, कल्प और ब्राह्मण आदि उनका शरीर है। गायत्रीआदि सात छंद रूपी सात हाथ हैं। यज्ञवृषभ विश्व में हुंकार करता है। सभी प्राणिओं का वह आत्मा माना जाता है।

५. **यज्ञ पुरुष :** दो पक्ष में ज्वाला सहित कुंड, मस्तक पर ज्वाला, तीन नेत्र, दो मुख, कूर्च दाढीवाला, चार वेदरूप, चारशीं प्रात, मध्याह्न और संध्या रूपी तीन पाउ (पाद), चार भुजा, सखा, चक्र, शंख, धृतपात्र। वामपक्षे स्वधादेवी, दक्षिणे स्वाहादेवी का छोटा स्वरूप। पाउ पास होता है।

६. **अश्विनी कुमार:** 'विष्णु धर्मोत्तर' के अनुसार ये पद्मपत्र पर बैठे हुए, सुवर्ण वर्ण के, दो भुजावाले होते हैं। वे सर्व आभूषण धारी हैं। देवीदेवों के वैद्य माने जाते हैं। दायें हाथ में रत्नपात्र में औषधी और बायें हाथ में पुस्तक होती है। चंद्र-जैसे इनके श्वेत वस्त्र होते हैं। अश्विनीकुमार यौवना स्वरूप यान है।

७. **द्वादश साध्यगण प्रतिमा** : स्कंद पुराण के अनुसार ये सभी साध्वगण पद्मासन में बैठे होते हैं। कमल और माला धारण करने वाले ये धर्मपुत्र महात्मा के बारह पूजनिक माने गये हैं।

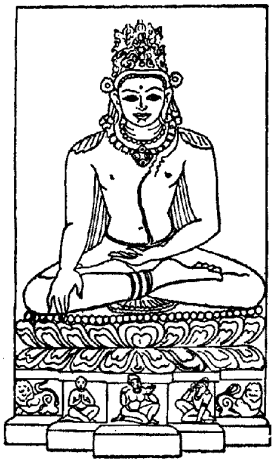

बुद्ध मूर्ति

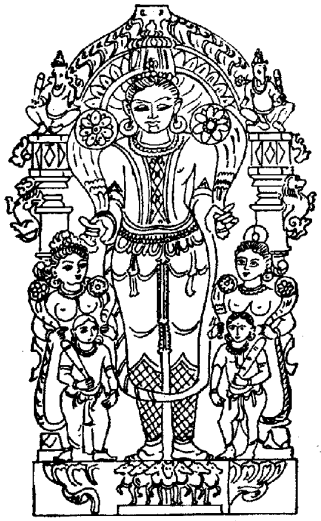

आदित्य सूर्य

इनके अलावा भी अन्य कई प्रतिमायें हैं। जैसे धर्ममूर्ति; उसमें ज्ञान, वैराग्य ऐश्वर्य, पृथ्वी और आकाश के स्वरूप हैं। अष्ट वसुओं की मूर्तियाँ इस प्रकार हैं :

अष्ट वसु

१ धर	३ सोम	५ अनिल	७ प्रभुष
२ ध्रुव	४ आप	६ नल	८ प्रभास

उन्हें प्रभास के पुत्र विश्वकर्मा कहलाते है। विश्वकर्मा भृगऋषि का भानजा होता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्ग : त्रयोविंशतिम्

जैन प्रकरण

भारतवर्ष के धार्मिक प्रवाहों में सनातन वैदिक, जैन और बौद्ध इन तीन संप्रदायों का प्रवाह कम-ज्यादा मात्रा में बहता ही रहा है। इन तीनों संप्रदायों में कई तत्त्व समान होने से उनकी कई विशेषतायें मिल-जुल गई हैं।

बौद्ध संप्रदाय में जिसे निर्वाण कहा गया है, उसीको वैदिक संप्रदाय मोक्ष कहते हैं। आत्ममुक्ति को जैन संप्रदाय में मोक्ष या कैवल्यपद कहते हैं। जैनों में मोक्ष का परम साधन कर्मक्षय कहा है। धर्म के नियम और सिद्धांतों का ज्ञान—सम्यक ज्ञान—उच्च ज्ञान प्राप्त करके उसे व्यवहार में लाने को सम्यक-चरित्र कहते हैं। इस महामार्ग में अनुभवसिद्ध-ज्ञान प्राप्त करनेवाले २४ तीर्थंकर हुए हैं। उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष द्वारा 'जिनपद' प्राप्त किया हैं।

जो तीर्थंकर धर्म का पालन करके दूसरों को आत्म-दर्शन का मार्ग दिखाये, उसे तीर्थंकर के नाम से संबोधित किया जाता है। वे सत्य, प्रकाश, और पुनर्गति दे कर जगत का कल्याण करते हैं। जैन धर्म में चौबीस जिन हुए। वैदिक धर्म में वैसे चौबीस अवतार हुए, उसी तरह बुद्ध भी चौबीस हुए। जैनों के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभदेव हुए। अंतिम महावीर स्वामी हुए। २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और अंतिम महावीर स्वामी का समय क्रम पुरातत्त्वविदों ने पाँच से सात हजार वर्ष का माना है। बाकी के तीर्थंकरों का जैन ग्रंथ और पुराण के कथनानुसार हजारों वर्ष का समयक्रम माना गया है।

जैनों में ईसापूर्व चौथे-पाँचवे शतक में ही मूर्तिपूजा प्रचलित थी। उस समय भारत में जैन धर्म का बहुत ही प्राबल्य था। जैनों के बहुत से मंदिर और मूर्तियाँ उस समय बनी थीं।

जैन तीर्थंकर वीतराग कहलाते हैं। इसलिये उनकी मूर्तियाँ ध्यानस्थ रूप में नग्न शरीर से पद्मासन में बैठी होती हैं। छाती मुद्रायुक्त, वक्ष प्रदेश—छाती में श्रीवत्स होता है। माथे पर बालों का गुच्छ होता है। श्वेतांबर प्रतिमा को कच्छ होते हैं।

दूसरे प्रकार की मूर्ति तप का भाव व्यक्त करती हुई कायोत्सर्ग-मूर्ति है। 'बृहद् संहिता' में कहा है कि पैर की गांठों तक पहुँचे हुए हाथ छाती में श्रीवत्स का चिह्न, तरुण, सुंदर, प्रशान्त अर्हंत देव की मूर्ति सौम्य, शांत, ध्यानस्थ मुद्रा की बनानी चाहिए।

जैनों के दो संप्रदाय हैं। दिगंबर और श्वेतांबर। दिगंबर संप्रदाय का प्रचार उस समय भारत में बहुत था। श्वेतांबर संप्रदाय का प्राबल्य भी कई प्रदेशों में था। इन दोनों संप्रदायों में तीर्थंकर की मूर्ति आसनस्थ और उर्ध्वस्थ एक सी ही रहती है। दिगंबर संप्रदाय में मूर्ति नग्न होती है। श्वेतांबर संप्रदाय में वस्त्र होते हैं। उसमें गुह्यभाग नहीं दिखाया जाता जबकि दिगंबर की बैठी हुई मूर्ति की पैर की ललाट-कपाल, नासिका, हड्डी, गला, हृदय, नाभि, गुह्य, दो कर, गोठण, मुख्य तीन भाग १३, ३, १०, १४, ४, ४, ८=५६ कुल जिन आसनस्थ बैठी प्रतिमा का विभाग यक्ष।

बैठी प्रतिमा के कुल ५६ भाग होते हैं। खड़ी कायोत्सर्ग प्रतिमा के १०८ भाग होते हैं। उसे नव ताल की प्रतिमा कहते हैं। मुख, गला, हृदय, नाभि, गुह्य उरु, साथल, जानु, गोठण, अधापज, पाद। भाग १३, ३, १०, १४, १२, २४, ४, २४, ४=१०८ कुल भाग जिन उर्ध्वस्थित खडी प्रतिमा की १०८ भाग।

जिन प्रतिमा का बैठा हुआ स्वरूप सभी तीर्थंकरों की मूर्तिओं में एक सा होता है। लेकिन उसकी बैठक पर किये हुए लक्षणों से लांच्छन (प्रतीक) जाना जाता है कि वह कौन से तीर्थंकर की मूर्ति है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुशाण से गुप्तोत्तर काल तक लांच्छन की प्रथा नहीं थी। लांच्छन नवीं शताब्दी में बनाने लगे। गुप्तकाल की प्रतिमा की गादी में धर्मचक्र मुद्रा और गांधर्वी सहचर्य होता है। प्राचीन आदिनाथ की मूर्ति के स्कंध पर दोनों ओर बाल की लट होती है। कभी तीर्थंकर प्रतिमा का उपवित चिन्ह भी कोई में दिखाई देता है।

प्रातिहार्य

जैन तीर्थंकरों के आलोक्य भोग्य फलरूप अष्ट प्रातिहार्य हैं। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ पर आठ वस्तुएँ उपस्थित रहती हैं।

१ अशोकवृक्ष	२ दिव्यध्वनि	३ सिंहासन	४ देवदुंदुभि
५ पुष्पवृष्टि	६ चामर	७ प्रभामंडल	८ छत्र

ये आठ वस्तुएँ जिनेश्वर भगवान के प्रातिहार्य हैं। इसलिये उन्हें भगवान की मूर्ति के परिकर में स्थान दिया गया है।

वैदिक संप्रदाय के अनुकरण में तीर्थंकरों के साथ परिवार का–देव, यक्ष, यक्षिणी, विद्यादेवियाँ, शासन देवी आदि का प्रवेश हुआ। इन सभी को जिन भगवान के साथ रखने का प्रचार बाद में हुआ।

कालांतर में जैन संप्रदाय में ऐहिक कामनायें परिपूर्ण करने के लिये कई तांत्रिक विधि-विधान भी शुरू हुए। उसके साथ ही देवी-देवता के पूजन, अर्चन, बलिदान आदि के तांत्रिक ग्रंथ अस्तित्व में आये। नवग्रह, दिक्पाल, गणेश, लक्ष्मी, मातृकायें, शासन देव-देवियाँ, विद्यादेवी, पद्मावती, चक्रेश्वर, मणिभद्र, घंटाकर्ण, सिद्धिदाविका आदि देव-देवियों का सांप्रदायिक ग्रंथों में, वैदिक संप्रदाय की तरह, उनके तंत्र-मंत्रादि एवं साहित्य के सहित प्रवेश हुआ।

परिकर की रचना

भगवान की बैठक के नीचे के भाग को गादी (गद्दी) कहते हैं। उसकी पाटली-गादी को मध्य में देवी और उसके दो ओर सिंहहाथी आदि होते हैं। अंत में दायीं ओर तीर्थंकर से यक्ष-और बायीं ओर यक्षिणी रहती है। तीर्थंकर के दोनों ओर स्कंध तक दो खड़ी हुयी इन्द्र की मूर्ति (या काउसग्ग की मूर्ति) होती है। उसके ऊपर बीच में गोल छत्र होते हैं। उसमें अशोक वृक्ष के पत्रों की पंक्तियाँ, गंधर्व-नृत्य करते स्वरूप, बगल में दोनों ओर देवता बैठकर वाद्य बजाते हैं, ऐसा स्वरूप तथा दोनों ओर इन्द्रगांधर्व पुष्पहार पहनाते हों, ऐसा स्वरूप होता है। वहाँ दो बाजू हस्ति, मध्य में देव, ऊपर छत्र, उसके ऊपर दिव्यध्वनि शंख बजाता गंधर्व और उसके दोनों ओर दिव्य ध्वनि करते वाद्यमंत्र देव होते हैं।

मुख्य प्रतिमा का परिकर करना आवश्यक है। परिकर युक्त देव प्रतिमा अर्हंत कहलाते हैं और बिना परिकर की प्रतिमा सिद्ध भगवान की कहलाती है।

परिकर दो प्रकार के होते हैं। एक इन्द्रयुक्त और दूसरा पंचतीर्थों का। उसमें दो ओर काउसग्ग और उसपर जिन मूर्ति तथा मध्य में मूलनायक की मूर्ति, सब कुल पाँच मूर्तियां होती हैं। इसे पंचतीर्थों को परिकर कहते हैं। सिंहासन की पाटली में नौ गृहों के छोटे स्वरूप बनाये जाते हैं।

गुप्तकाल के पहले परिकर की प्रथा नहीं होगी। मथुरा और गांधार शिल्प में ऐसी उसकी प्रतिमा से हम यह जान सकते हैं। उस समय प्रतिमा के नीचे गादी में धर्मचक्र और उसके दो ओर मृग युग्म उत्कीर्ण किये जाते थे और प्रतिमा के ऊपर गंधर्व साहचर्य की प्रथा थी।

अशोक वृक्ष, पुष्पवृष्टि, सिंहासन, चामर, दिव्यध्वनि, प्रभामंडल, देवदुंदुभि, और छत्र ये आठ वस्तुएँ जिनेश्वर भगवान के प्रातिहार्य माने जाते हैं। इसलिए उन्हें जैन भगवान की मूर्ति के परिकर में स्थान दिया गया है।

परिकर का प्रत्येक विभाग शास्त्रोक्त है। और उसी प्रकार परिकर तैयार होता है।

वैदिक देवी पर परिकर–दूसरे प्रकार का होता है। दो ओर थमी ऊपर तोरणा बनता है। दूसरे विष्णु परिकर दशावतार वाले सूर्य नवग्रह से आवृत्त होते हैं, देवी का परिकर सप्त मातृका आवृत होते हैं। जैन परिकर का विभाग युक्त संपूर्ण आलेखन पूर्वार्ध में दिया गया है।

जैन संप्रदाय में प्राचीन देववाद में प्रधान चार वर्ग

जैनों के प्राचीन देववाद में चार प्रधान वर्ग हैं। १ ज्योतिषी, २ वैमानिक, ३ भुवनपाल, ४ व्यंतर।

(१) ज्योतिषी—नव ग्रहादि।

(२) वैमानिक—उसमें दो उपवर्ग है, उत्तरकाय और अनुत्तरकाय।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन प्रतिमा तालदर्शन विस्तार ५६ २८

पक्ष दर्शन भाग २८

पृष्ठ दर्शन

जैन प्रतिमा सन्मुख विस्तार भाग ५६ उदय भाग ७०

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१. उत्तरकाय में सुधर्मा, ईशान, सनत्कुमार, बसो आदि देव हैं।
२. अनुत्तरकाय में पांच स्थानों का अधिष्टायक देव, इन्द्र के पांच रूप हैं।

उत्तरकाय	अनुत्तरकाय
सुधर्मा, ब्रह्मा ईशान, सनत्कुमार, आदि बारह देव।	पाँच स्थानों के अधिष्टायक देव इन्द्र के पाँच रूप : विजय, विजयंतयवंत, जयंत, अपराजित, सर्वार्थसिद्ध।

(३) भुवनपाल में असुर, नाग, विद्युत, सुपर्ण आदि १० श्रेणी हैं।
(४) व्यंतर में पिशाच, राक्षस, पक्ष, गंधर्व आदि श्रेणी हैं।

इन चार देववर्गों में विशेष षोडशश्रुत या सोलह विद्यादेवियाँ, अष्ट मातृका आदि भी जैनों में पूजनीय हैं। जैनों में वास्तुदेवों की भी परिकल्पना है। इस तरह जैन और हिन्दू (ब्राह्मण) के देववृन्द कई जगह एक से हैं।

बौद्ध प्रतिमाओं की तरह जैन-प्रतिमाओं के अलंकार नहीं होते, क्योंकि वे वीतराग हैं। जैन संप्रदाय में २४ तीर्थंकरों के अतिरिक्त भिन्न देवियां है।

२४ यक्ष	१६ विद्यादेवियाँ
२४ यक्षिणी	१० दिक्पाल
६४ योगिनियाँ	९ नवग्रह
५२ वीर	

आदि उपरांत क्षेत्रपाल, प्रतिहार, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देव देवताओं की मूर्ति पायी जाती है। सात्विक वृत्तिवाले जैनदर्शन में प्रारंभ में तांत्रिक विद्या का प्रवेश उसमें नहीं होता पीछे के युग में प्रविष्ठ होता है।

क्षेत्रपाल, प्रतिहार, लक्ष्मी, सरस्वती, आदि अन्य देवी-देवता की मूर्तियाँ भी पायी जाती हैं।

६४ योगिनियाँ और ६४ वीर के नाम जैन ग्रंथों में दिये हैं। तांत्रिक आचार पर पूजा के प्रभाव के वे परिणाम माने जाते हैं। बाद में बौद्धों में भी तांत्रिकता का प्रवेश हुआ और उसके फल स्वरूप वैदिक देवों की उपेक्षा होने लगी। बौद्धों की पर्णशबरी देवी विघ्नरूप गणेश को पैर के नीचे दबाती है। बौद्धों के ही त्रैलोक्य विजय देव अपने चरण के नीचे शिव और गौरी को कुचलते हैं। कई तो ब्रह्मा को जटा से पकड़कर लटकाते हैं। इस तरह प्राचीनतम हिन्दू-वैदिक धर्म के देवताओं की इस तरह की अवगणना या मानहानि–करने से ही संभव है बौद्ध धर्म को भारत से बाहर जाना पड़ा। जैन संप्रदाय ने हिन्दू देवताओं की ऐसी क्रूर हँसी नहीं की है, बल्कि कई हिन्दू-वैदिक देवी-देवताओं को तो उन्होंने स्वीकार भी किया है जैसे देश दिक्पाल और नवग्रह के स्वरूप वैदिक और जैन संप्रदाय में बहुतही मिलते-जुलते हैं। इसी वजह से शायद जैन धर्म यहाँ टिका है। जैनाचार्यों के अमूल्य ग्रंथ साहित्य और स्थापत्य धर्म की बड़ी महत्ता बढ़ाते हैं।

जैन प्रतिक्रमण के पाठ में शाश्वत जिन चैत्य का वर्णन कहा है। सौ जोजन लंबे, पचास के विस्तारवाले और ५/२ घाट ऊँचे मंदिर प्राचीन समय में बनते होंगे।

चौबीस तीर्थंकर का वर्ण लांच्छन और यक्ष यक्षिणी स्वरूप

क्रम	तीर्थंकर	वर्ण	लांच्छन	यक्ष			यक्षिणी		
१	ऋषभ देव	हेम	नंदी	वरद माला	सुवर्ण वर्ण गोमुख यक्षा गजासन हेमवर्ण	पाश फल	चक्र पाश बाण वरद	चक्रेश्वरी — चक्र अप्रतिचक्र — धनुष गरुड वाहन वज्र हेमवर्ण अंकुश
२	अजित नाथ	,,	हाथी	पाश माला मुग्दर वरद	श्यामवर्ण महायक्ष चारमुख गजासन	अभय शक्ति अंकुश फल	पाश वरद	अजिता देवी अंकुश गौरवर्ण फल गाय वाहन
३	संभव नाथ	,,	अश्व	गदा नकुल अभय	त्रिमुख यक्ष मयूरः वाहन श्याम	नाग फल शक्ति	वरद माला	श्वेत फल दुरिता देवी अभय भेड़ा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रम	तीर्थंकर	वर्ण	लांच्छन		यक्ष		यक्षिणी		
४	अभिनंदन	हेम	बंदर	माला	श्यामवर्ण	अंकुश	पाश	कालिका	अंकुश
				फल	ईश्वर यक्ष	नेवला	वरद	श्याम	नाग
					हाथी वाहन			कमल	
५	सुमति नाथ	,,	क्रौंच	शक्ति	तुंबरु यक्ष	पाश	पाश	महाकाली	अंकुश
			पक्षी	वरद	गरुड	गदा	वरद	पद्मासन	फल
					श्वेत			हेमवर्ण	
६	पद्मप्रभु	रक्त	लाल वर्ण	फल	कुसुम यक्ष	माला	बाण	अच्युता देवी	धनुष
			कमल	अभय	नीलवर्ण	नकुल	वरद	नर वाहन	अभय
					हरिण			श्यामवर्ण	
७	सुपार्श्व नाथ	हेम	स्वस्तिक	पाश	मातंग यक्ष	अंकुश	माला	शांता देवी	त्रिशूल
				फल	हाथी वाहन	नोलीया	वरद	हाथी वाहन	अभय
					हरा वर्ण			सुवर्ण	
८	चन्द्रप्रभु	श्वेत	चंद्र	चक्र	विजय यक्ष	मुग्दर	तलवार	भृकुटी देवी	ढाल
					हंस वाहन		मुग्दर	ग्रास वाहन	फरसी
					नीलवर्ण			पीतवर्ण	
९	सुविधि नाथ	,,	मगर	अंकुश	अजित यक्ष	कुन्त	माला	सुताश यक्षिणी	अंकुश
				फल	कूर्म	नेवला	वरद	नंदी	कुंभ
					श्वेत			श्वेत	
१०	शीतल नाथ	हेम	श्रीवत्स	मुग्दर	ब्रह्म यक्ष	माला	पाश	अशोका देवी	अंकुश
				पाश	चार मुख	अंकुश	वरद	कमलासन	कमल
				फल	तीन नेत्र	गदा		हरावर्ण	
				अभय	कमलासन	नेवला			
					गौरवर्ण				
११	श्रेयांश नाथ	,,	खंग	गदा	ईश्वर यक्ष	नेवला	मुग्दर	मानवी यक्षिणी	अंकुश
			पक्षी	फल	त्रिनेत्र	माला	वरद	सिंह वाहन	कलश
					नंदी वाहन			श्वेतवर्ण	
					गौरवर्ण				
१२	वासुपूज्य	लाल	पाश	बाण	कुमार यक्ष	धनुष	शक्ति	प्रचंडा यक्षिणी	गदा
		भैंसा		फल	श्वेतवर्ण	नेवला	वरद	अश्व वाहन	कमल
					हंस वाहन			श्यामवर्ण	
१३	विमल नाथ	हेम	वराह	माला	षड्मुख यक्ष	अभय	पाश	विदिता देवी	नाग
				पाश	मयूर वाहन	अंकुश	बाण	कमलासन	धनुष
				बाण	श्वेतवर्ण	ढाल		नीलवर्ण	
				चंद्र		धनुष			
				फल		चक्र			
				खड्ग		नेवला			
१४	अनंत नाथ	हेम	श्येन	पाश	पाताल यक्ष	माला	खड्ग	अंकुश यक्षिणी	अंकुश
			पक्षी	खड्ग	तीन मुख	ढाल	पाश	कमलासन	ढाल
				कमल	तीन नेत्र	नकुल		श्वेतवर्ण	
					रक्तवर्ण				
					मगर वाहन				
१५	धर्म नाथ	,,	वज्र	अभय	किन्नर यक्ष	माला	कमल	कंदर्पा यक्षिणी	कमल
				गदा	तीन मुख	कमल	अंकुश	मछली वारु	अभय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रम	तीर्थंकर	वर्ण	लांछन	यक्ष			यक्षिणी		
			फल	तीन नेत्र कूर्म वाहन रक्तवर्ण	नेवला		गौरवर्ण		
१६	शान्ति नाथ	हेम	मृग	कमल फल	गरुड यक्ष वराह श्यामवर्ण	माला नकुल	कमल पुस्तक	निर्वाणी देवी कमलासन गौरवर्ण	कमल कमंडल
१७	कुथु नाथ	,,	बकरा	पाश वरद	गंधर्व यक्ष हंस वाहन श्यामवर्ण	अंकुश फल	त्रिशूल फल	बला (अच्युता) मयूर वाहन गौरवर्ण	पद्म भुशंडी
१८	अर नाथ	,,	नंद्या वर्त	अभय पाश मुग्दर खड्ग बाण फल	यक्षेन्द्र यक्ष छमुख तीन नेत्र शंख वाहन श्यामवर्ण	माला अंकुश त्रिशूल ढाल धनुष नेवला	पद्म फल	धारिणी देवी कमलासन श्यामवर्ण	माला पाश
१९	मल्लि नाथ	नील	कलश	अभय त्रिशूल फरशी वरद	कुबेर यक्ष चार मुख गरुड मुख हाथी वाहन इन्द्रधनुषवर्ण	नेवला माला मुग्दर शक्ति फल	माला वरद	वैरोढ्या देवी श्यामवर्ण कमलासन	शक्ति फल
२०	मुनि सुव्रत	कृष्णवर्ण	कूर्म	शक्ति बाण गदा फल	वरुण यक्ष चार मुख तीन नेत्र श्वेतवर्ण वृषभ वाहन	परशु धनुष कमल नेवला	माला वरद	नरदता भद्रासन गौरवर्ण	त्रिशूल फल
२१	नमिनाथ	,,	नील कमल	अभय मुग्दर शक्ति फल	भृकुटि यक्ष वृषभ वाहन हेमवर्ण चारमुख त्रिनेत्री	माला वज्र परशु नकुल	खड्ग वरद	गांधारी यक्षिणी श्वेतवर्ण हंस वाहन	कुंभ फल
२२	नेमनाथ	कृष्ण वर्ण	शंख	चक्र परशु फल	गोमेध यक्ष त्रिमुख त्रिनेत्री कृष्णवर्ण पुरुष वाहन	शक्ति त्रिशूल नकुल	अंकुश नागपाश	अंबिका देवी सिंह वाहन हेमवर्ण	आम्रलुंबी पुत्र
२३	पार्श्वनाथ	निलांग	सर्प	सर्प फल	पार्श्व यक्ष गजमुख श्यामवर्ण कूर्म वाहन माथे पर सर्प फणा	सर्प नकुल	पाश कमल	पद्मावती कुक्कुट: सर्प का वाहन हेमवर्ण मस्तक पर सर्प फणा	अंकुश फल
२४	महावीर वर्धमान स्वामी	हेम	सिंह	नकुल	मातंग यक्ष हाथी वाहन श्यामवर्ण	फल	अभय पुस्तक	सिद्धिदायिका हरा वर्ण सिंहारूढ	वीणा फल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

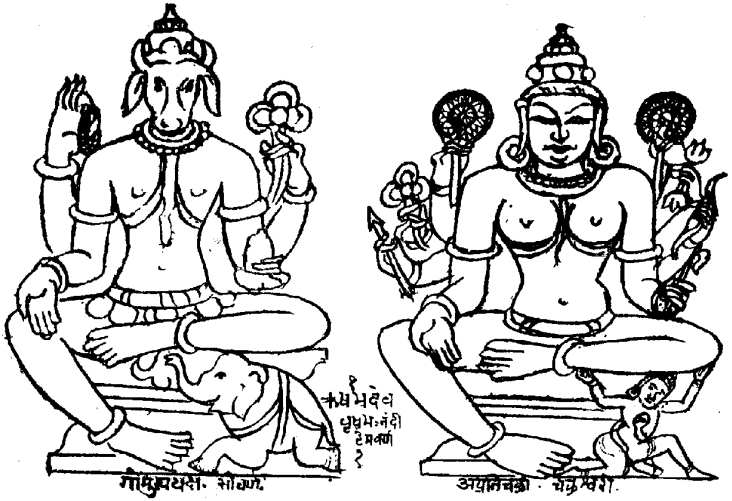

गोमुख यक्ष (१) ऋषभ देव चक्रेश्वरी यक्षिणी

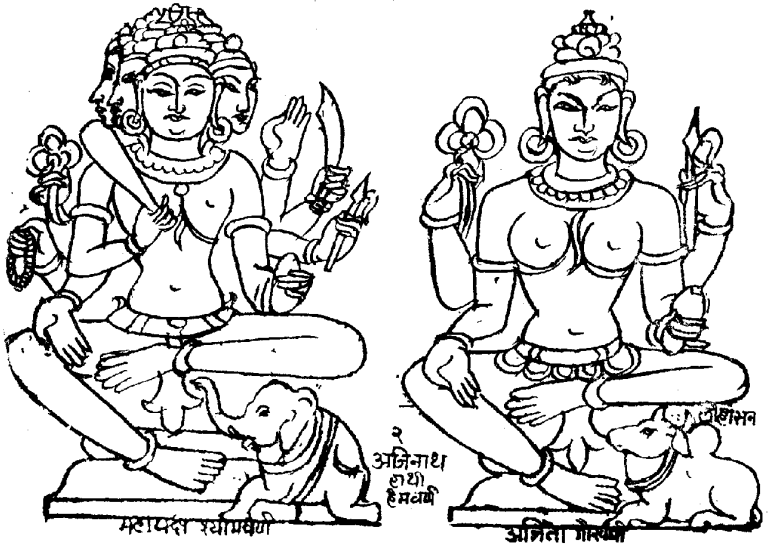

महा यक्ष (२) अजित नाथ अजिता देवी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

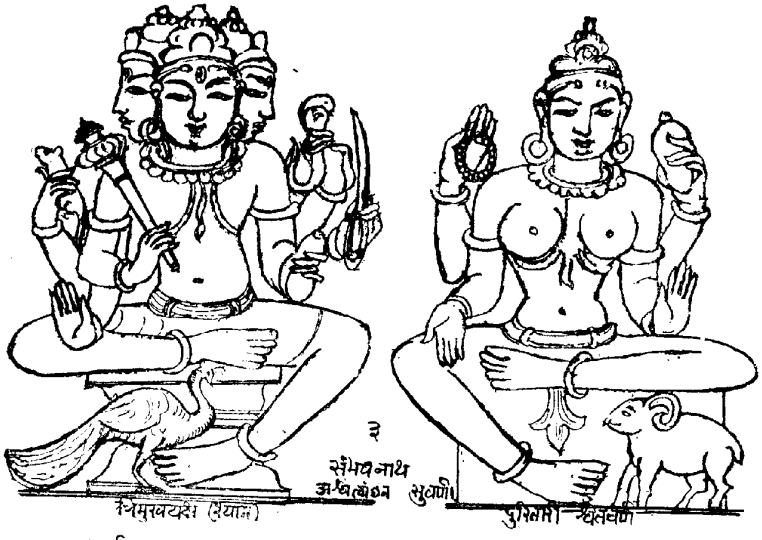

त्रिमुख यक्ष (३) संभव नाथ दुरिता देवी

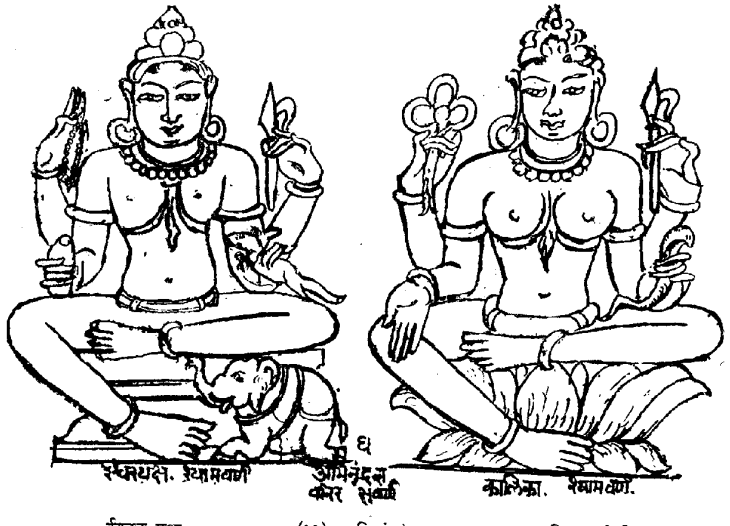

ईश्वर यक्ष (४) अभिनंदन कालिका देवी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

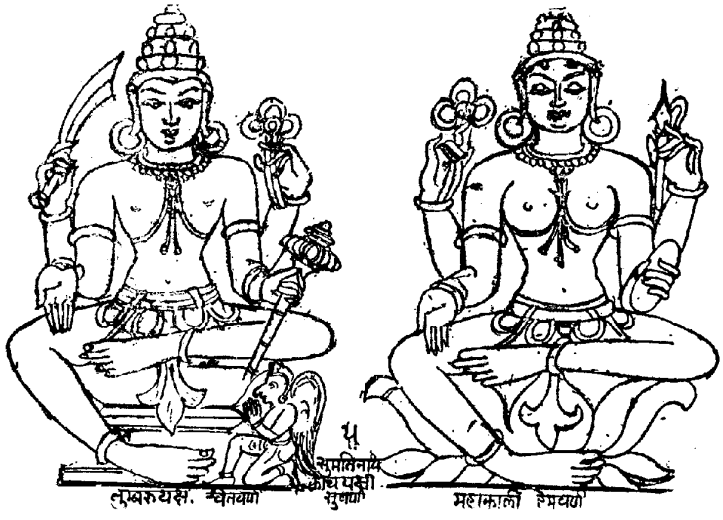

तुंबरु यक्ष (५) सुमति नाथ महाकाली यक्षिणी

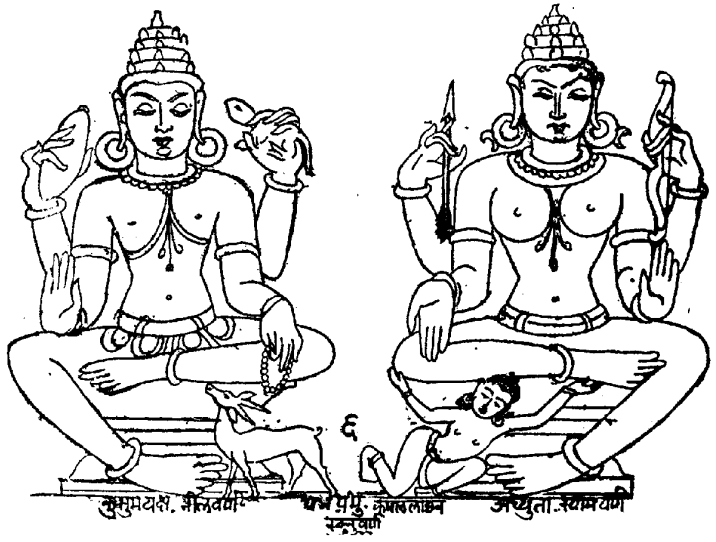

कुसुम यक्ष (६) पद्मप्रभु अच्युता यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

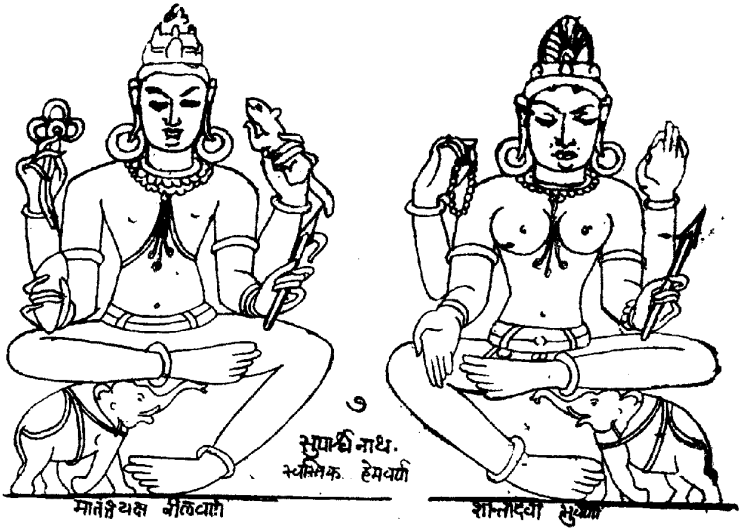

मातंग यक्ष (७) सुपार्श्व नाथ शांता देवी यक्षिणी

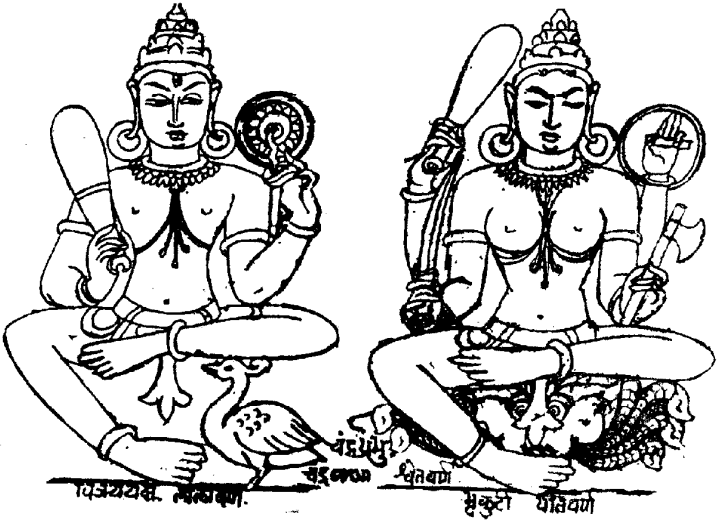

विजय यक्ष (८) चंद्रप्रभु भृकुटी यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

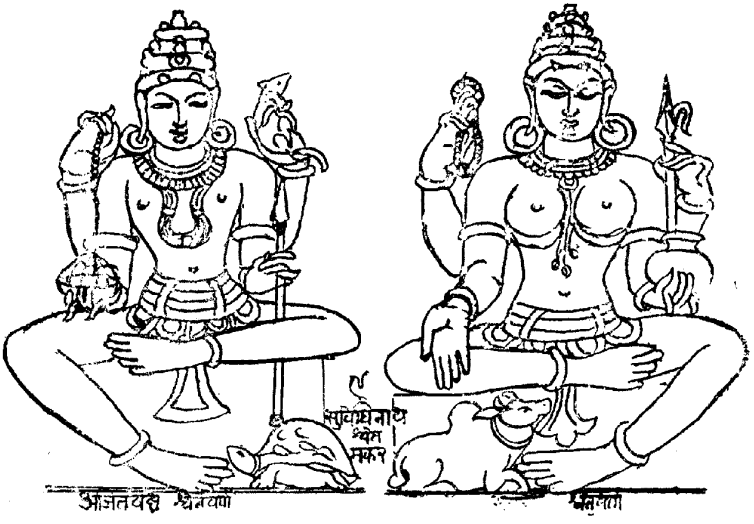

अजित यक्ष (९) सुविधि नाथ सुताश यक्षिणी

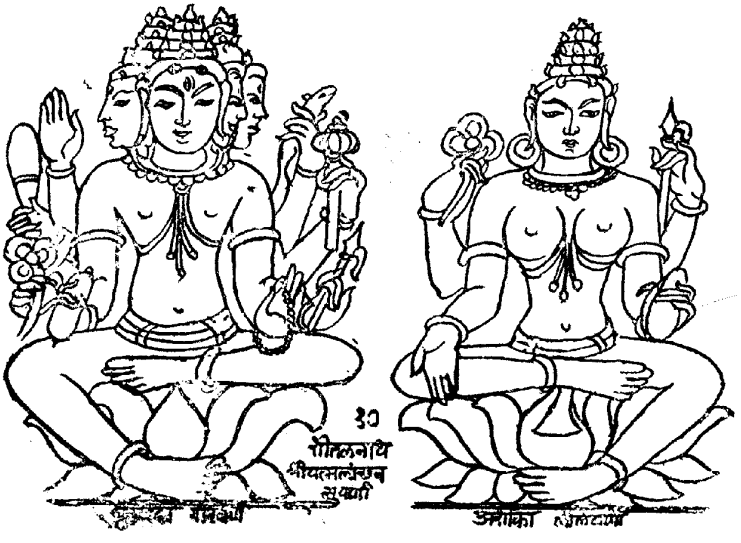

ब्रह्म यक्ष (१०) शीतल नाथ अशोका यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

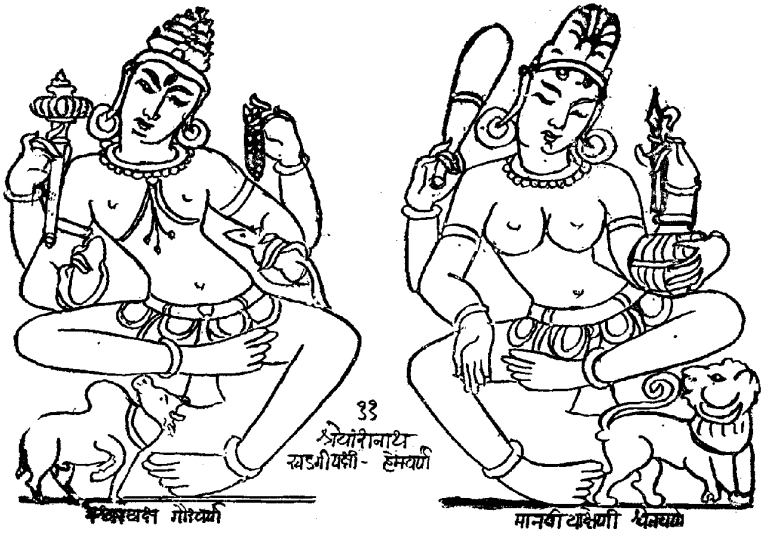

ईश्वर यक्ष (११) श्रेयांश नाथ मानवी यक्षिणी

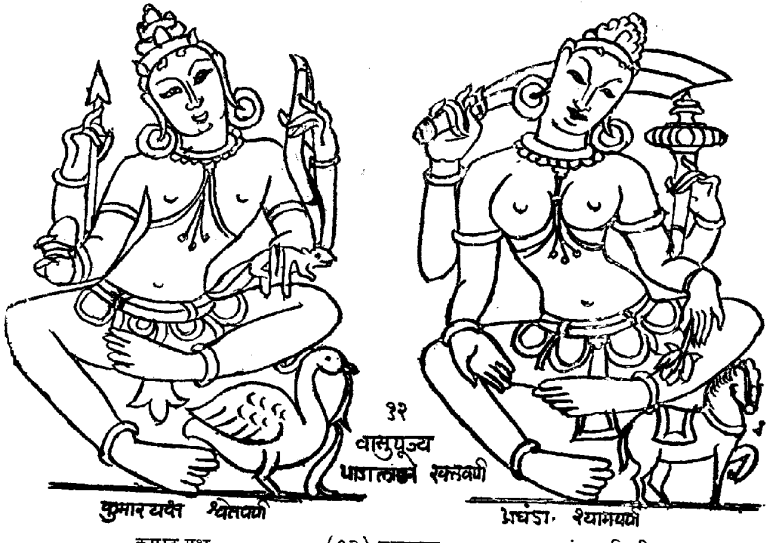

कुमार यक्ष (१२) वासुपूज्य प्रचंडा यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

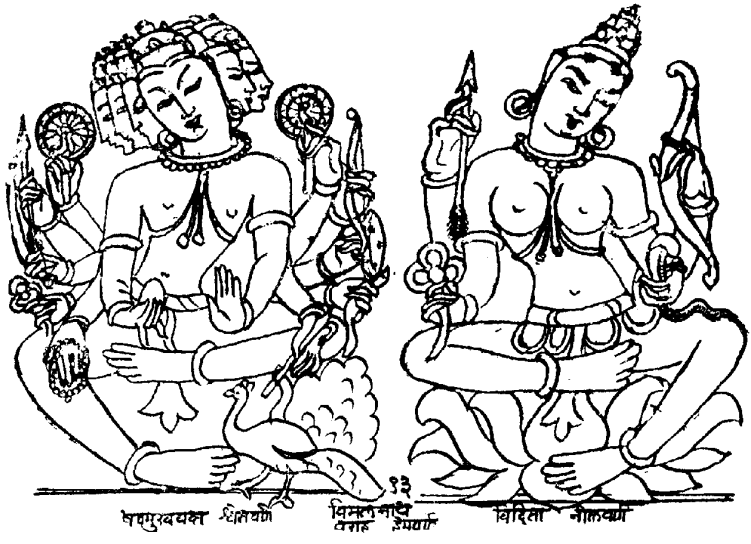

षड्मुख यक्ष (१३) विमल नाथ विदिता –(विजया यक्षिणी)

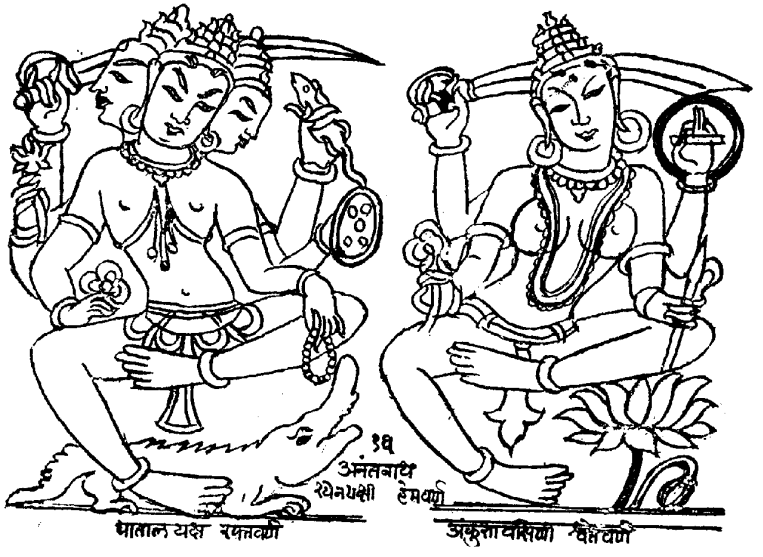

पाताल यक्ष (१४) अनंत नाथ अंकुशा यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

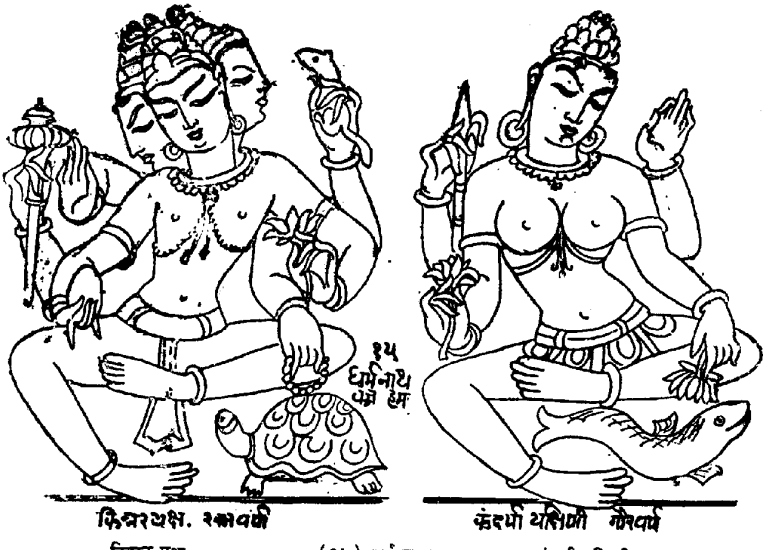

किन्नर यक्ष (१५) धर्म नाथ कंदर्पा यक्षिणी

गरुड यक्ष (१६) शान्ति नाथ निर्वाणी यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

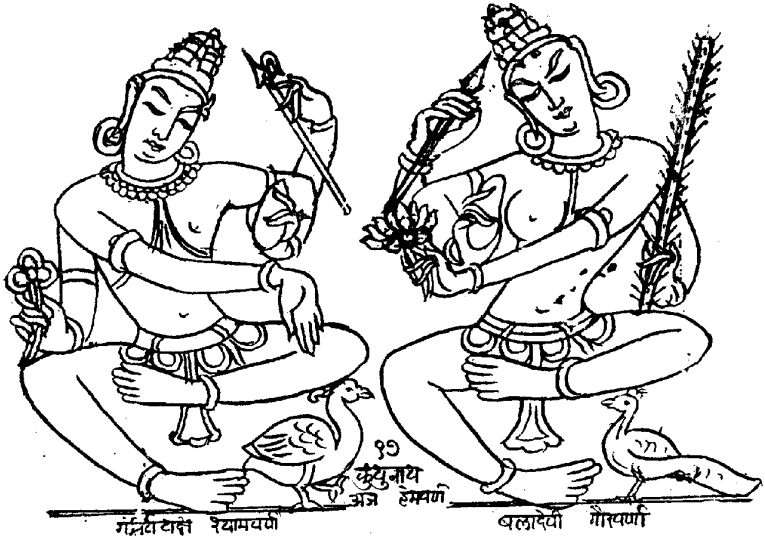

गधर्व यक्ष (१७) कुथु नाथ बला देवी यक्षिणी (अच्युता)

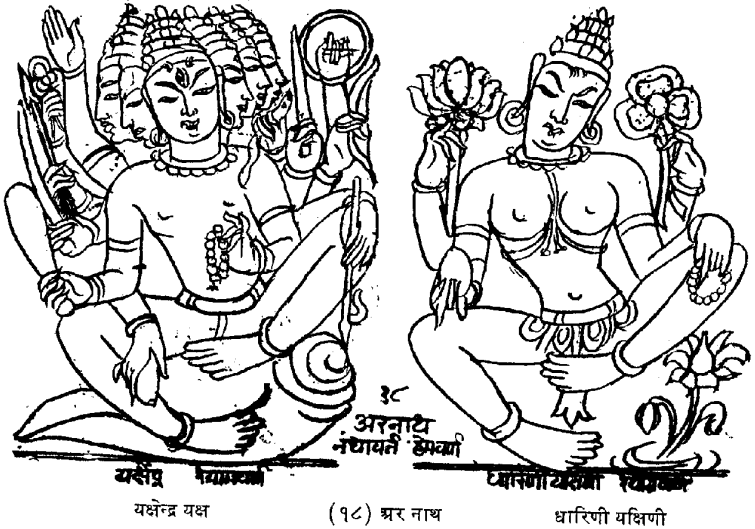

यक्षेन्द्र यक्ष (१८) अर नाथ धारिणी यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुबेर यक्ष (१९) मल्लि नाथ वैरोढया यक्षिणी

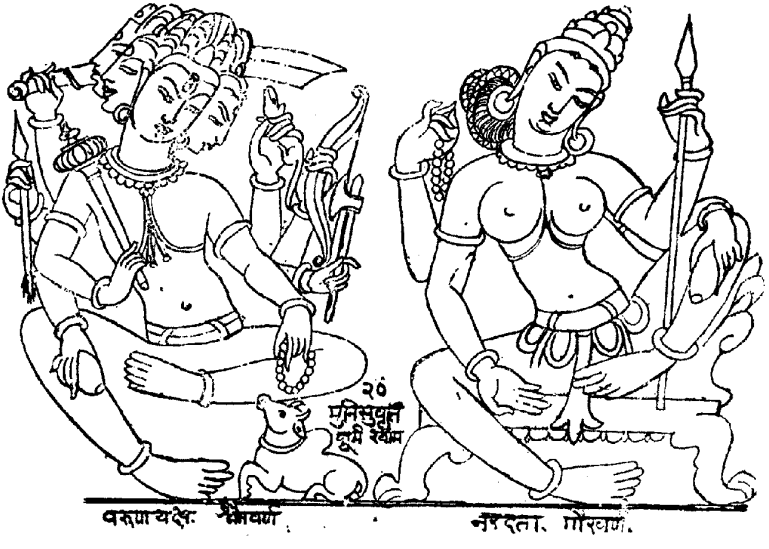

वरुण यक्ष (२०) मुनि सुव्रत नरदता यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

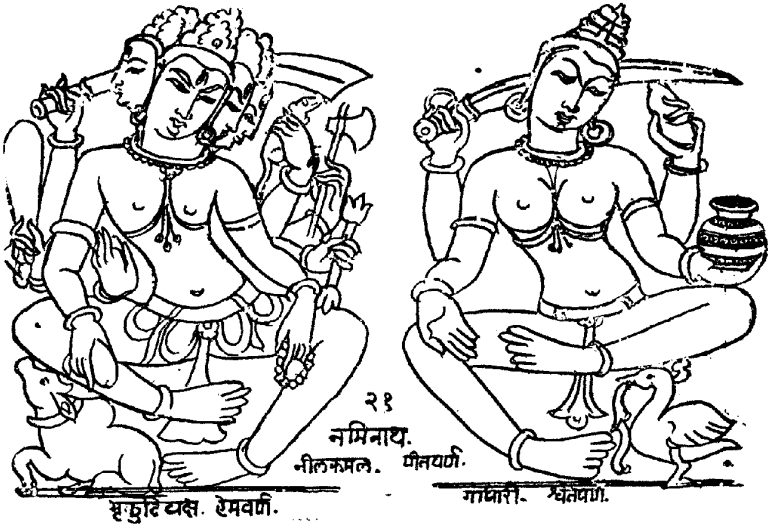

भृकुटि यक्ष (२१) नमिनाथ गांधारी यक्षिणी

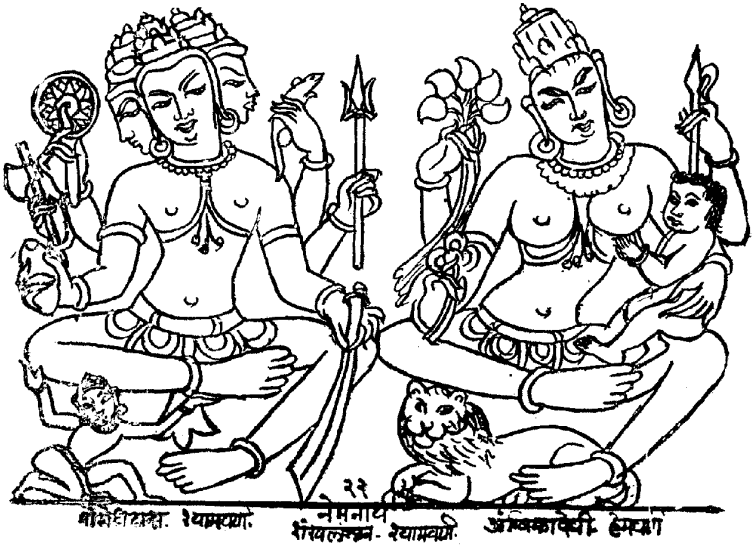

गोमेध यक्ष (२२) नेमनाथ अंबिका यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

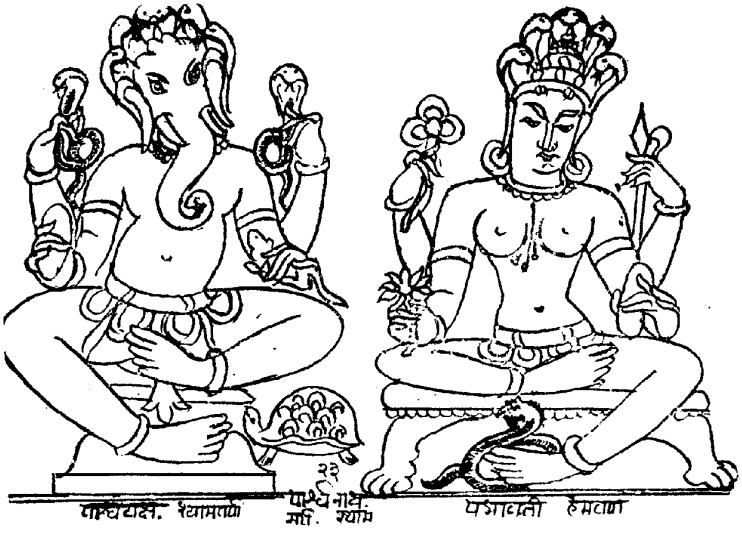

पार्श्व यक्ष (२३) पार्श्वनाथ पद्मावती यक्षिणी

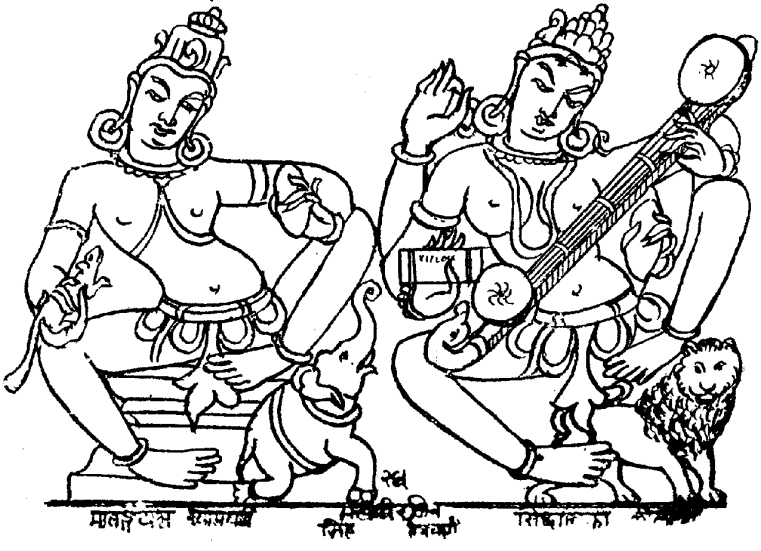

मातंग यक्ष (२४) महावीर–वर्धमान सिद्धिदायिका यक्षिणी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

षोडश विद्यादेवी

शासन देवियों की तरह ही जैन संप्रदाय में १६ विद्या देवियाँ हैं। वे भिन्न-भिन्न विद्या की अधिष्ठात्री हैं। उनके आयुध, पर्ण, नाम और स्वरूप जैन शास्त्रों में इस प्रकार दिये हैं।

	नाम	वर्ण	वाहन	आयुध			
				१	२	३	४
१.	रोहिणी	सफेद	गाय	माला	बाण	धनुष	शंख
२.	प्रज्ञप्ति	,,	मयूर	वरद	शक्ति	शक्ति	फल या ढाल

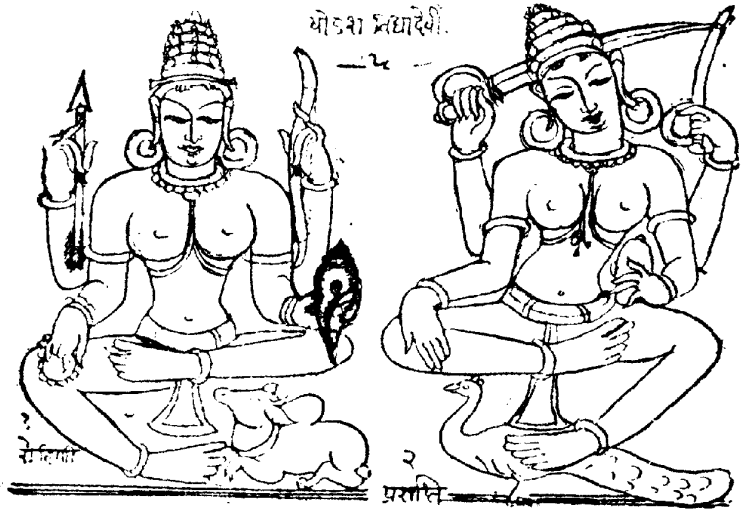

३.	वज्रशंखला	शंख जैसा	कमल	वरद	जंजीर	जंजीर	कमल
४.	वज्रांकुशी	सुवर्ण	हाथी	वरद	चक्र	अंकुश	बीजोरु

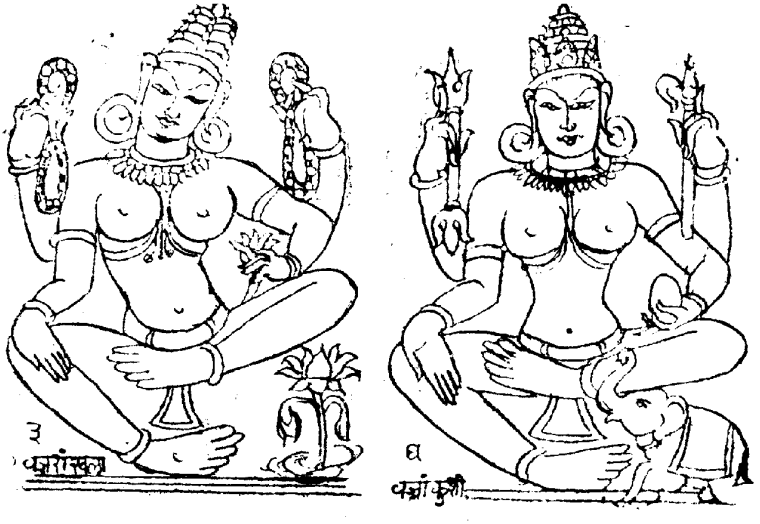

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५. अप्रतिचक्रा (चक्रेश्वर)	बिजली जैसा	गरुड	चक्र	चक्र	चक्र	चक्र
६. पुरुष दत्ता	सुवर्ण	भैंसा	वरद	तलवार	ढाल	फल

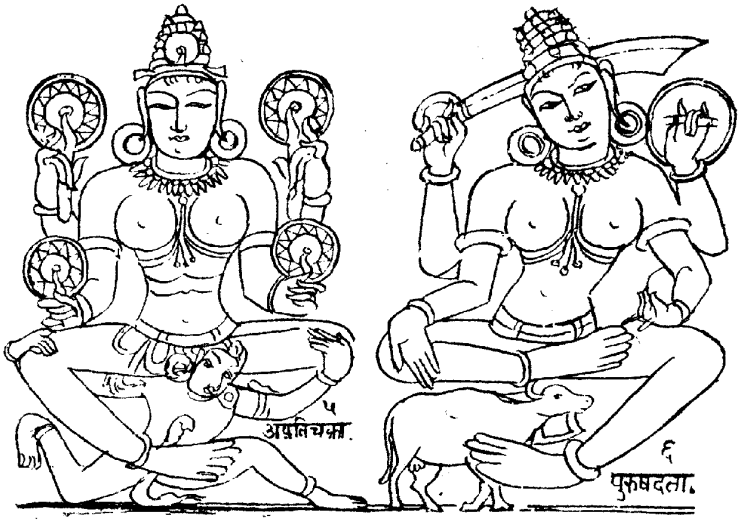

७. काली	श्याम	कमल	माला	गदा	वज्र	अभय
८. महाकाली	तमाल वर्ण	पुरुष	,,	वज्र	घंटा	,,

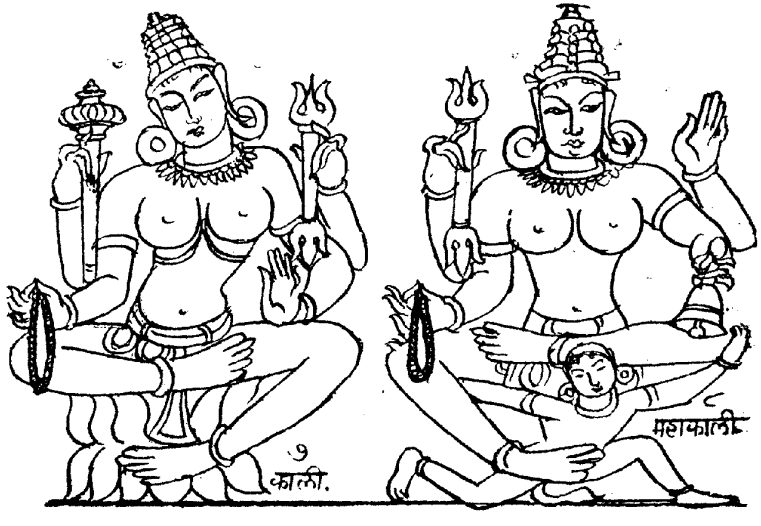

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

९. गौरी	सुवर्ण	घोड़ा	वरद	मुशल	कमल	माला
१०. गांधारी	नीलवर्ण	कमल	,,	,,	अभय	वज्र

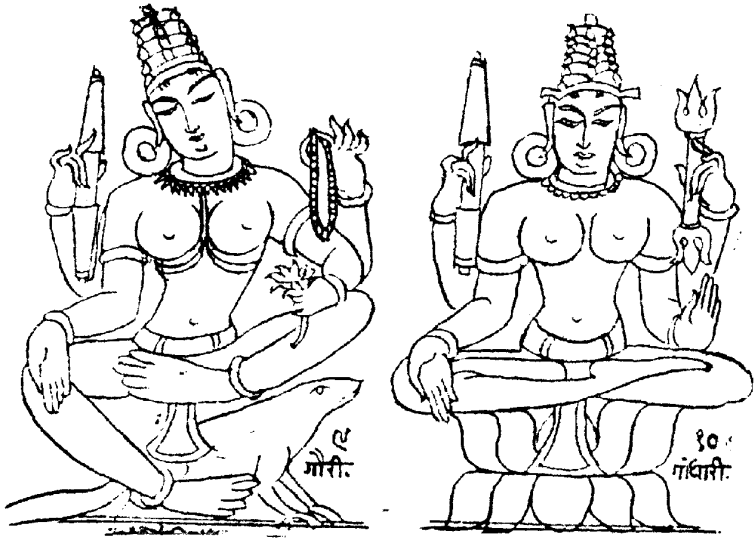

११. महाज्वाला	श्वेत	वराह	शस्त्र	शस्त्र		
१२. मानवी	श्याम	कमल	वरद	पाश	वृक्ष	माला

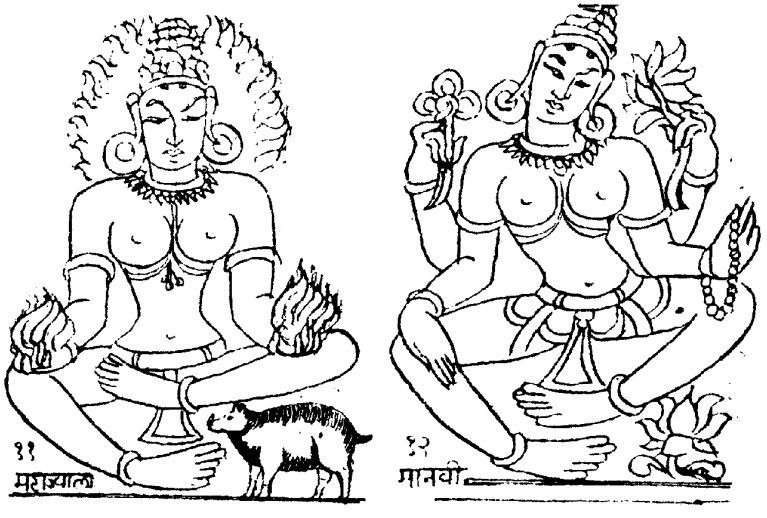

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१३.	वैराढ्या	श्याम	अजगर	खड्ग	सर्प	सर्प	ढाल
१४.	अच्युता	बिजली जैसा	अश्व	,,	बाण	धनुष्य	,,

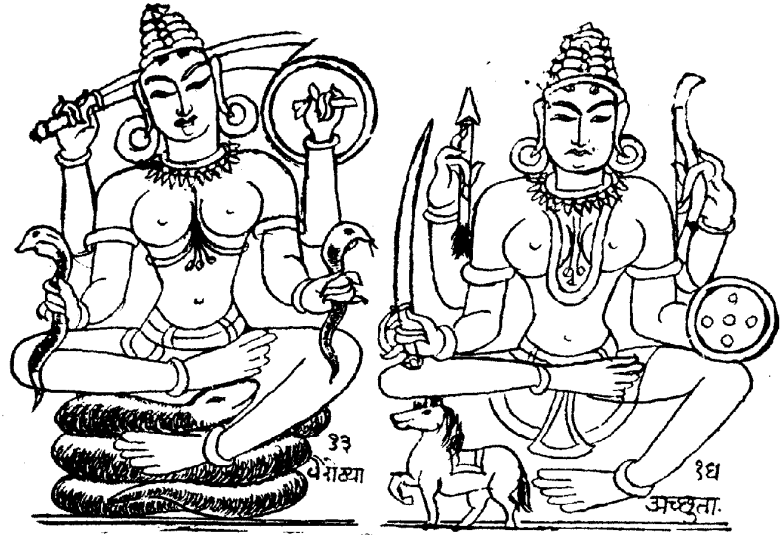

१५.	मानसी	श्वेत	हंस	वरद	वज्र	वज्र	माला
१६.	महामानसी	श्वेत	सिंह	वरद	तलवार	ढाल	कमंडल

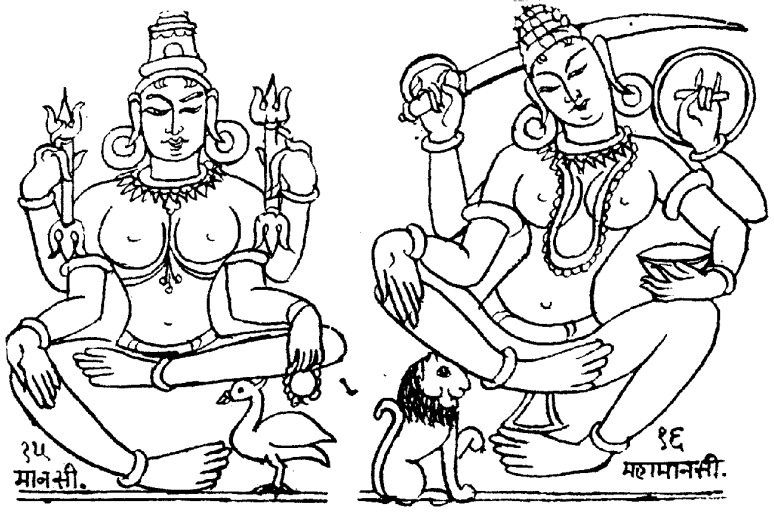

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

योगिनियों के स्तोत्र और वीर के नाम जैन आगमसार ग्रंथ में दिये हैं।

जैन संप्रदाय की श्रुत देवी का स्वरूप इस श्रुतदेवी की तरह वर्णित किया है :

श्रुतदेवी : श्वेतवर्ण, प्रभामंडल और सर्व अलंकार युक्त इन यौवन रूपिणी के तीन नेत्र हैं। दायें हाथों में वरद और कमल हैं। बायें हाथों में पुस्तक और माला हैं।

श्री मल्लिषेणाचार्य ने वाग्देवी के स्वरूप में वरद और कमल के स्थान पर अभय और ज्ञानमुद्रा कही है।

बप्पभट्ट सूरिवे वीणा, पुस्तक, मोती की माला और सफेद कमल धारण की बात कही है।

पद्मावती : 'जयमाला पद्मावती दंडक' में इनका वर्णन इस प्रकार दिया है।

कुकुट सर्प पर बैठी हुई पद्मावती के २४ हाथ हैं। इनके आयुध इस प्रकार हैं।

१	वज्र	७	ढाल	१३	मुशल	१९	वरद
२	अंकुश	८	खप्पर	१४	हाल	२०	त्रिशूल
३	कमल	९	खड्ग	१५	शत्रु का मस्तक	२१	फरशी
४	चक्र	१०	धनुष	१६	तलवार	२२	नाग
५	छत्र	११	कोरा-पराई	१७	अग्नि ज्वाला	२३	मुग्दर
६	डमरु	१२	बाण सकोरा पराई	१८	मुंडमाला	२४	दंड

अन्य मतों से इस प्रकार के भी आयुध हैं: १ नागपारा, २ बड़ा पाषाण, ३ कुकुट, ४ सर्प आदि।

'अदभुत पद्मावती कल्प' में चार भुजा युक्त पद्मावती का स्वरूप वर्णित किया गया हैं।

'भैरव पद्मावती कल्प' में चार हाथ के आयुध इस प्रकार वर्णित किये गये हैं : पाश, फल, वरद और अंकुश। कमल का आसन है। तीन नेत्र हैं। पद्मावती के पर्याय नाम इस प्रकार हैं :

यक्ष मणिभद्र : श्याम वर्ण का यह यक्ष सात सूंडवाले ऐरावत हाथी पर बैठा है। वराह-जैसा मुख और दांत द्वारा जैन चैत्य धारण किया है। उसकी छः भुजाओं में बायीं दायीं भुजायें पाश और ढाल, त्रिशूल, माला, वाम भुजायें, पाश, अंकुश तलवार वाली होती है और शक्ति होती है। सिंदूर लगाये हुए काष्ट को मणिभद्र के रूप में उपाश्रय में बिराजमान करते हैं।

घंटाकर्ण यक्ष : ये घंटाकर्ण महावीर सर्व भूत-प्राणीमात्र की रक्षा करते हैं। उपसर्ग भय के दुखों से ये रक्षण करते हैं। ये पाप और रोग का नाश करनेवाले हैं। इनकी १८ भुजाओं में वज्र, तलवार, दंड, चक्र, मुशल, अंकुश, मुग्दर, बाण, तर्जनीमुद्रा, ढाल, शक्ति, मस्तक, नागपाश, धनुष, घंटा, कुठार और दो त्रिशूल हैं।

'अग्निपुराण' में भी घंटाकर्ण का उल्लेख है।

वर्तमान समय में घंटाकर्ण की मूर्ति इस तरह की होती है। धनुष-बाण चढ़ाकर वे खड़े हैं। पीछे बाण का तरकस है। कमर पर तलवार है। पैर के पास वज्र और गदा पडे हुए होते हैं। वहाँ (पाटली पर) विश आदि यंत्र भी उत्कीर्ण किये होते हैं। यद्यपि ऐसा प्राचीन शास्त्रीय स्वरूप नहीं है लेकिन कई मूर्तियों में कान और हाथों में छोटी-छोटी घंटियाँ बंधी हुई रहती हैं। घंटाकर्ण बावन वीर में से एक वीर माने गये हैं।

क्षेत्रपाल : श्यामवर्ण, बबरे केश, बड़े विकृत दांत, पीली आँखें, पैर में पादुका और इनका नग्न स्वरूप होता हैं। छः भुजायें, दायें हाथ में मुग्दर, पाश, और डमरु होते हैं। बायें हाथों में श्वान, अंकुश और दंड होते हैं। जैनाचार्य पादलिप्तसूरि की 'निर्वाण कलिका' का पाठ है कि भगवान की दक्षिण ओर ईशान कोण में दक्षिण मुखे इनकी स्थापना करनी चाहिए।

क्षेत्रपाल का दूसरा स्वरूप—नग्न घटभूषीत मुठवाला की यज्ञोपवित—चतुर्भुजा करवत, डमरु, त्रिशूल और खोपडी धारण किया है।

अष्ट प्रतिहार : जैन प्रासाद के चारों दिशाओं के अनुसार अष्ट प्रतिहार को दो द्वारपाल-प्रतिहार कहे हैं। इनका वाहन हाथी है।

पूर्व दिशा के द्वार में		—	बायीं ओर	दायें हाथों में	बायें हाथों में
१. पूर्व दिशा के द्वारे	इन्द्र	—	,,	फल-वज्र	अंकुश-दंड
२. ,, ,,	इन्द्रजय	—	दायीं ओर	अंकुश-दंड	फल-वज्र
३. दक्षिण ,,	महेन्द्र	—	बायें	वज्र-वज्र	फल-दंड
४. ,, ,,	विजय	—	दायें	फल-दंड	वज्र-वज्र
५. पश्चिम ,,	धरणेन्द्र मस्तके	—	बायें	वज्र-अभय	सर्प-दंड
६. ,, ,,	पद्मक सर्पफणा	—	दायें	सर्प-दंड	वज्र-अभय
७. उत्तर ,,	सुनाथ	—	बायें	फल-बंशी	बंशी-दंड
८. ,, ,,	सुरदुंदुभि	—	दायें	बंशी-दंड	फल-बंशी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समवसरण के द्वितीय
वप्र की प्रतिहारिणी जया
विजया अजिता अपराजिता

जैनश्रुतदेवी (सरस्वती)

पद्मावती
(चतुर्विंशति भुजयुक्त)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

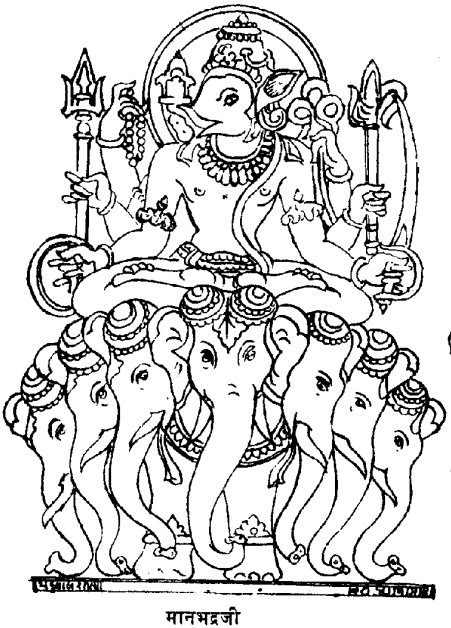

मानभद्रजी

क्षेत्रपाल

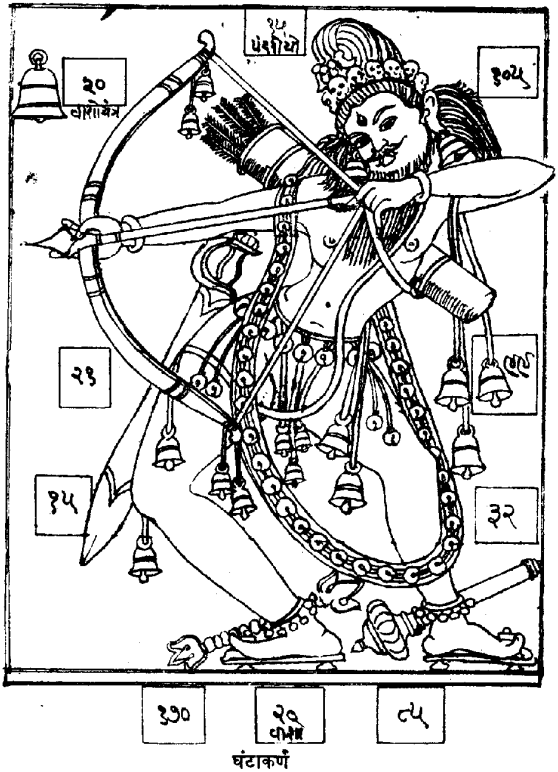

घंटाकर्ण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्व इंद्र

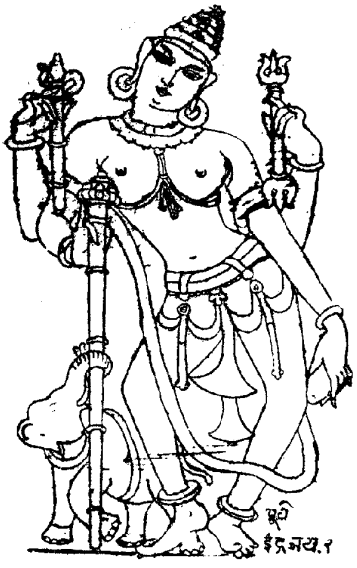

इंद्रजय

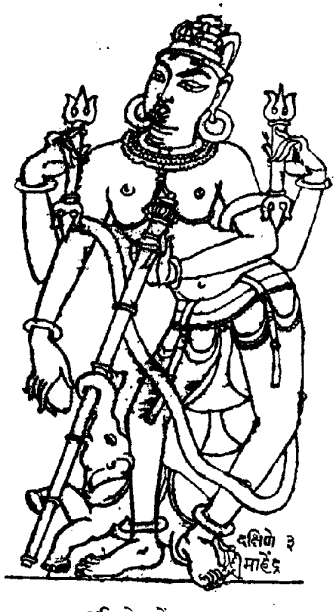

दक्षिणे महेंद्र

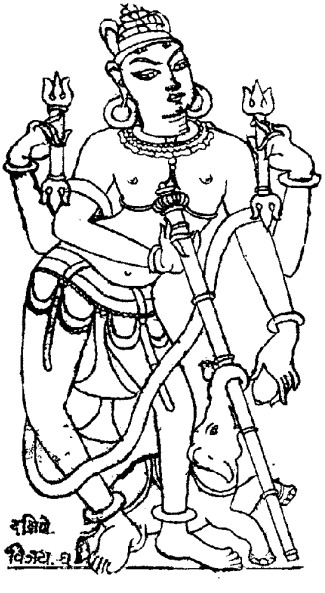

विजय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पश्चिमे धरणेंद्र

पद्मक

उत्तरे सुनाथ

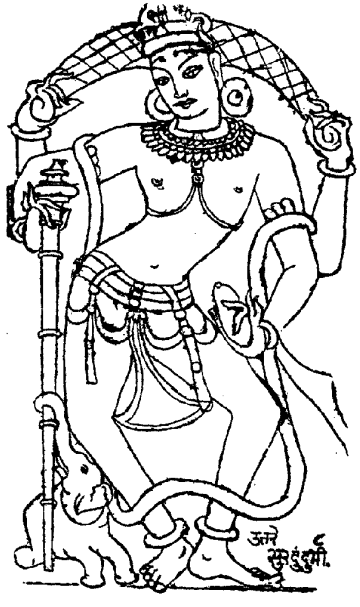

सुरदुंदुभि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अष्टमंगल : जैनो में अष्टमंगल का महात्म्य बहुत है।

१. स्वस्तिक	३. दर्पण	५. कुंभ	७. भद्रासन
२. नंद्यावर्त	४. युग्म मत्स्य	६. श्रीवत्स	८. वर्धमान

इन शुभ चिह्नों के मध्य में तीर्थंकर की प्रतिमा का चिह्न भी होता है। कुशान काल की यह प्रतिमा मथुरा की खुदाई से प्राप्त हुई थी।

चौदह स्वप्न : तीर्थंकर के जन्म से पहले उनकी माता को स्वप्न आता है; इसमें ये १४ भिन्न-भिन्न वस्तुएँ दिखाई देती है।

१. हाथी, २. नंदी, ३. सिंह, ४. लक्ष्मी, ५. पुष्प की दो माला, ६. चंद्र, ७. सूर्य, ८. ध्वज, ९. कुंभ, १० पद्म सरोवर, ११. क्षीरसागर, १२. देव विमान, १३. रत्नकुंडी, १४. धूम्ररहित अग्नि।

चौदह स्वप्न

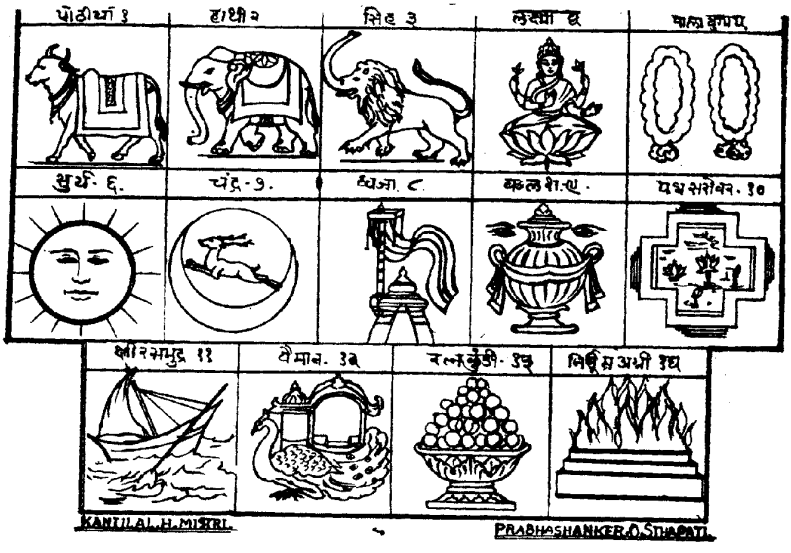

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीर्थंकर का लांछन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मेरुगिरी स्वरूप

मेरुगिरी वृत्ताकार भद्रशाल भूमिपर स्थित है। प्रथम कद रूप नंदनवन। आगे चढ़ता सोमरस वन आता है। इसमें आगे चढ़ता पंडक वन आता है। यहा प्रभुजी का जन्माभिषेक होता है। उसके ऊपर चूलिका आती है। चूलिका की टोच पर शाश्वत जिन चैत्य आता है।

पंडक वन में पूर्व–पश्चिम दिशा में श्वेत वर्ण की सिद्धशिला और पश्चिम–उत्तरे रक्त वर्ण की सिद्धशिला है। यह शिला धनुष्याकार है।

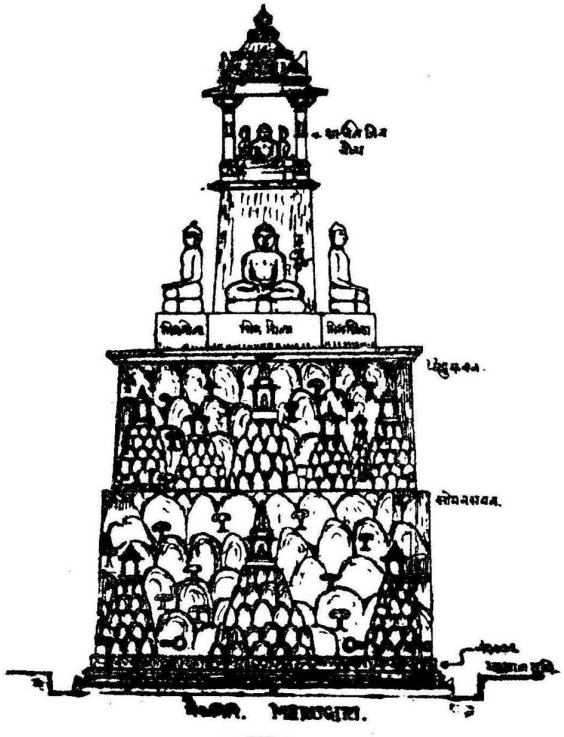

मेरुगिरी

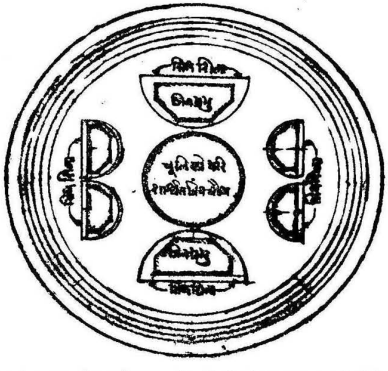

तलदर्शन

सिंहासन गादी के रूप में होता है। प्रभुजी का जन्म होता हे तब इंद्रादि देव वहा जन्माभिषेक का उत्सव मनाते हैं। सोमरस वन में चारों दिशा में जिनभवन होते हैं। दिशा में चार इंद्रों का प्रासाद वापिका सहित होता है। नंदनवन की चारों दिशाओं में जिन चैत्य और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इंद्र के चार प्रासाद वापिका सहित होते हैं। चैत्य और इंद्र प्रासाद के बीच दिक्कुमारी के कूटपर्वत पर उनको रहने की देरी होती है। आठ कूट ऊपरांत ईशान कोण में एक बलकूट विशेष होता है। ईशान में इंद्रभवन, पीछे बलकूट, पीछे दिक्कुमारी का कूट, पीछे उत्तरे चैत्य, ऐसा क्रम होता है। मेरुगिरी पर्वताकार टेकरा, गुफाओं, जल, जलप्ररणा वृक्ष, प्राणी इत्यादि होते है।

समवसरण स्वरूप

तीर्थंकर प्रभु को जहाँ केवल ज्ञान प्राप्त होता है वह स्थान पर देवताओं समवसरण की रचना करते है। रचना दो प्रकार की होती है।

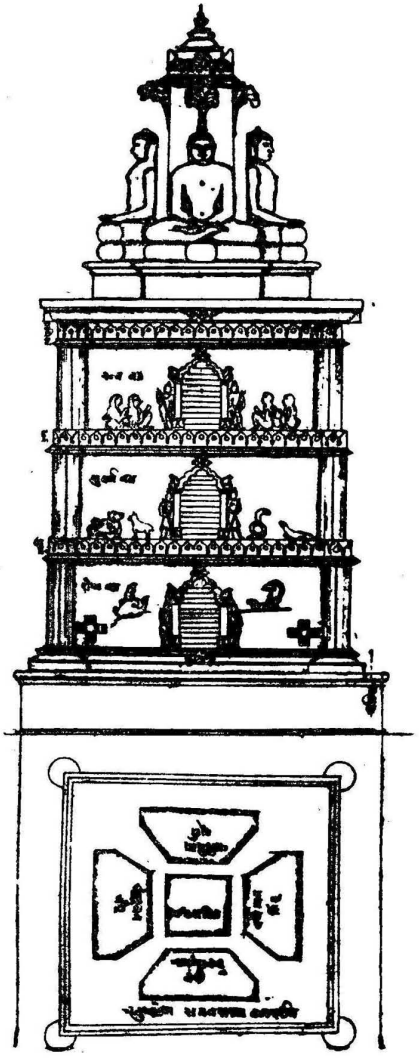

समवसरण

चतुरस्त्र और वृत्ताकार तीन वर्तुलाकार। प्राकार वप्र–गढ–कील्ला–बनाते हैं। प्रथम निम्न प्रकार में–वाहन, हस्ति अश्व, पालकी, विमान रहते हैं। ऊपर के दूसरे प्राकार में परस्पर विरोधी जीव सहोदर जैसे रहते हैं। मृग–व्याघ्र–मूषक–बिडाल–सर्प–मुकुल आदि।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऊपर के तीसरे प्राकार में श्रावक–श्राविका, साधु–साध्वी रहते हैं। तीसरे प्राकार के ऊपर मध्य में सिंहासन पर प्रभु विराजमान होते है। मध्य में अशोक वृक्ष होता है।

प्रत्येक प्राकार के चारों ओर द्वार होता है। द्वार के दोनों ओर बावडी होती है। प्रथम प्राकार के द्वार का प्रतिहार (द्वारपाल),१ तुंबरु २ कपाली ३ खटवाङ्गी ४ जटामुकुटधारी एक–एक होता है। दूसरे प्राकार के द्वार की प्रतिहारिणी १ जया २ विजया ३ अजिता ४ अपराजिता एक–एक द्वार पर है। उन्होंने भुजाओं में अभय–पाश–अंकुश और मुग्दर धारण किया है। उनका वर्ण अनुक्रमे श्वेत,रक्त, सुवर्ण, नील है।

नीचे के प्राकार के चारों द्वारों पर पूर्वादि क्रमे दो दो प्रतिहार (द्वारपाल) होते हैं। पूर्व में इंद्र और इंद्रजय, दक्षिणे महिंद्रविजय, पश्चिमे धरणेंद्रपद्मक और उत्तरे सुनाम सुरदुंदुभि है।

नंदीधर द्वीप की रचना

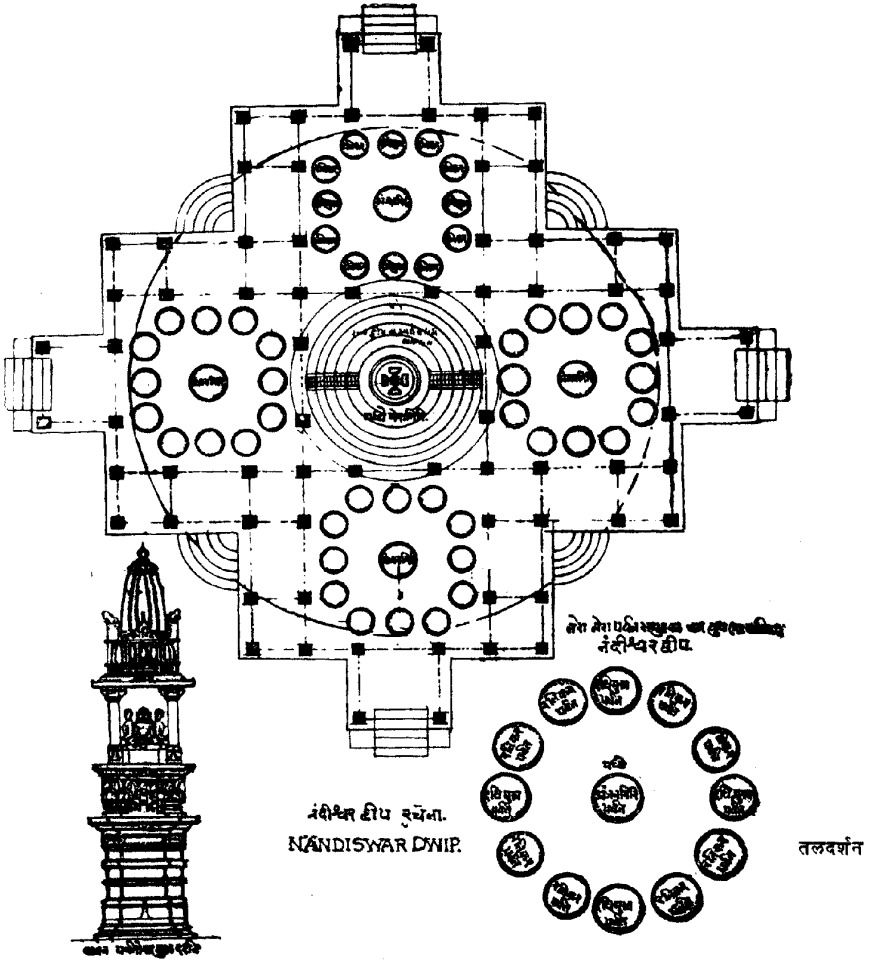

नंदीधर द्वीप में बावन पर कूट(पर्वत)है। प्रत्येक कूट पर चतुर्थद्वारे चतुर्मुख चैत्य है। चारों दिशा में श्याम वर्ण के चार अंजनगिरि है। प्रत्येक अंजन गिरि की चारों दिशा में एक–एक है। ऐसे चार दिशा में चार दधिमुख पर्वत हैं। प्रत्येक विदिशा में दो दो रतिकर पर्वत है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऐसे आठ रतिकर पर्वत–चार दीर्घमुख पर्वत मध्य में, अंजन गिरि पर्वत मिल के कुल तेरह पर्वत हैं। प्रत्येक अंजनगिरि चारों दिशा में तेहे के समूह के मध्य में है। ऐसा चारों तरफ का अंजनगिरि का समूह कुल मिल के १३ × ४ = बावन कूट हैं।

प्रत्येक कूट पर चार द्वार से शोभित एक–एक चैत्य है। सब मिल के जिन बिंब की संख्या दो सौ आठ हैं (५२ × ४ = २०८)। तेरह तेरह के चारों दिशाओं के समूह के मध्य में मेरुपर्वत है।

अष्टापद रचना

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण बाद अग्निसंस्कार। अष्टापदपर्वत पर उनका पुत्र भरत चक्रवर्ती ने 'सिंहनिषद्या' नामे प्रासाद की रचना वर्धकी रत्न (शिल्पी) पास कराई। रत्नजडित तोरण, द्वार, विशाल मंडप चारों ओर। मध्य में मणिपीठिका बनाई उन पर चौबीस बिंब चारों ओर स्थापित किये।

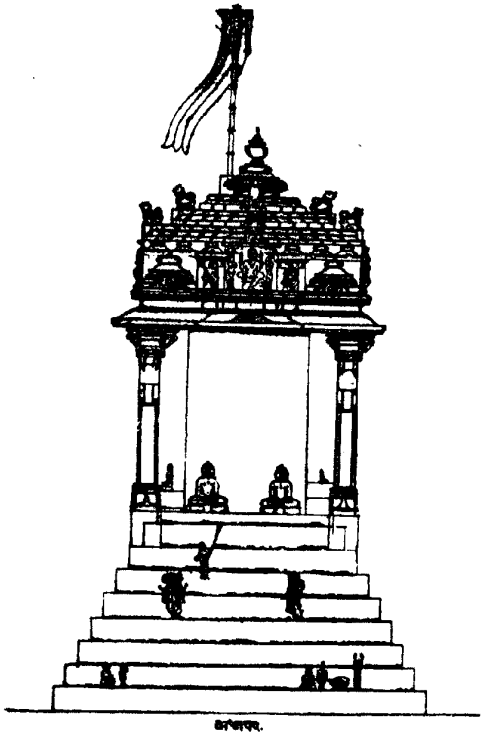

अष्टापद सन्मुख दर्शन

भरत चक्रवर्तिये पर्वत का दांतां तोड के अष्ट सोपान (पगथीया) बताया इसीलिये उनका नाम "अष्टापद" पडा। प्रासाद के मध्य में महामेरु जैसी वेदी–पीठ की चारों ओर जिनेश्वरी की स्थापना की। पूर्व दिशा में दो, दक्षिण दिशा में चार, पश्चिमे आठ और उत्तर में दस ऐसे चौबीस जिन (२ + ४ + ८ + १० = २४) बिंब की स्थापना की। सर्व बिंब की दृष्टि समसूत्र में या स्तनसूत्र एक सूत्र में रखी।

जैनो में अतीत (भूत), वर्तमान और अनागत (भावी) चौबीसों का कम नाम और लांछन आदि जैन आगम ग्रंथों में कहा है। यह तीनों चौबीशी जंबुद्वीप में भरतक्षेत्र को कहा है–ऊपरांत महाविदेह क्षेत्र में। वर्तमान काल में विचरता। बीस विहरमान प्रभु उनका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

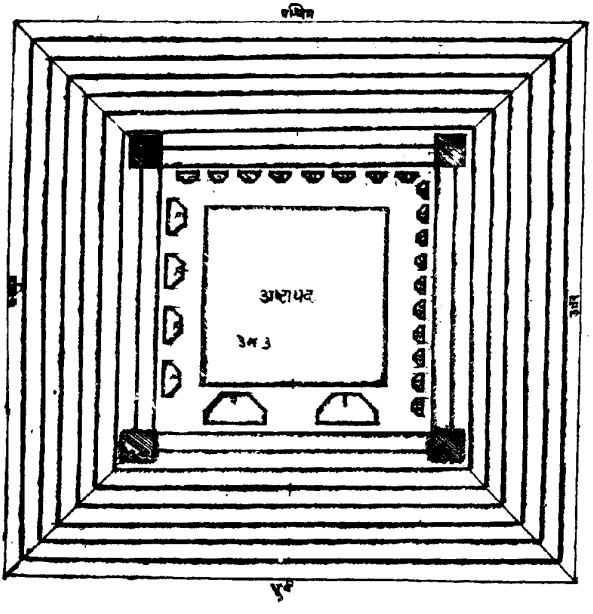

अष्टापद तलदर्शन

लांच्छन साथ कहा हैं। उनमें प्राधान्य शाश्वता चार जिन हैं।

१.	ऋषभदेव	लांच्छन नंदी
२.	चंद्रानन	" चंद्र
३.	वारिषेण	" सूर्य या पाडा
४.	वर्धमान	" सिह

तीर्थक्षेत्र पांच कल्याण का होता हैं।

१. च्यवन कल्याणक देवलोक में से माता की कुक्ष में पधारता हैं।

२. जन्मकल्याणक जन्म समये प्रभु को मेरुपर्वत पर इंद्रो उत्सव करते हैं।

३. दीक्षा कल्याणक संसार भोग का त्याग–दीक्षा उत्सव।

४. केवल आने कल्याणक दीक्षांतथकी अंते श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के बाद समवसरण पर बैठ के उपदेश देता हैं।

५. मोक्ष कल्याणपाक शरीर त्याग–देहासर्ग।

हीं कार में वर्णानुसार–चौबीस और ॐकार में पंचपरमेष्टि १ अर्हत, २सिद्ध, ३ आचार्य ४ उपाध्याय, ५ साधु यह पाँच वर्णानुसार स्थापन किये हैं। चौबीस जिन प्रतिमा का स्वरूप एक ही होता हैं। मगर प्रतिमा के नीचे पीठीका में लांच्छन चौबीस अलग अलग होने से तीर्थंकर की प्रतिमायें वह पहचानी जाती हैं।

१८ सहस्र कूटान्तर्गत १०२ तीर्थंकर की रचना पाँच भरतक्षेत्र और पाँच एरावत क्षेत्र ऐसे दस क्षेत्र की अतित वर्तमान अनागत ये तीनों की तीन चौबीस का ७२ तीर्थंकर, ३६ महाविदेहका, २० विहरमान तीर्थंकर भरतक्षेत्र की चौबीस के पाँचपाँच कल्याणक की १२०– चार शाश्वत तीर्थंकर मील के कुल १०२४ तीर्थंकर का पट्ट या तो स्तंभ की चारों ओर २५६ × ४ = १०२४ तीर्थंकर की रचना करनी चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चैत्य, स्तूप, विहार और स्तंभ

त्रिमूर्ति जैसे चतुर्मुख प्रतिमा स्थापन की सर्वतोभद्र की प्रथा जैनों में सुंदर हैं। प्राचीन काल में जैन संप्रदाय में चैत्य, स्तूप, विहार और स्तंभ बनाने की प्रथा होती थी। यह चारों धर्म के स्थापत्य विभाग हैं।

चैत्य :

चैत्य शब्द प्रयोग वेदयुग में होता था। जैन आगम ग्रंथों में चैत्य का देव मंदिर में अर्थ लिया हैं।

वेद काल में पवित्र पुरुषों की समाधि की स्मृति में निर्माण करता चैत्य शब्दव्युत्पत्ति चिता, मृतदेह पर अग्निसंस्कार समये काष्ट का ढग ऐसा अर्थ होता हैं।

चैत्य मंदिर की रचना–प्रवरों में दीर्घ ऊँचा होता था। आगे चैत्य संमुख वंदन के लिये मंडप की दो पक्ष में स्तंभों की पंक्ति होती थी। चैत्य में प्रतिमा स्थापन करके उपर घंटाकृति शिखर होता था। चैत्य की तीन ओर प्रदक्षिणा मार्ग होता था। ऐसी कल्पना गुंफा मंदिरों की अवशेष से होती हैं। वर्तमान काल में चैत्य का अस्तित्व नहीं हैं। चैत्य का स्वरूप वर्तमान में प्रासाद न लिया।

स्तूप :

सत्पुरुषों के अस्थि स्थान पर स्तूप का विनिर्माण होता था। पवित्र अस्थि भस्म बाल की स्मृति सुवर्ण की दाबडी में रखकर भूमि में पधरा के उनके ऊपर गोल उलगडलीया (टोपला) की स्तूप गोल की आकृति होती हैं। ऊपर मध्य में स्तंभ खडा करके उपर तीन, पांच, सात, छत्र बनाते थे।

इजिप्त (मिसर) में ऐसे स्मारक त्रिकोणाकार पिरामिड बने हैं। पाली भाषा में स्तूप को थप्पा कहते हैं। बर्मा में गोडा और श्रीलंका में दाभगा कहते है। नेपाल में चिता पर से स्तूप कहते हैं। जापान में तोरण कहते हैं। यह भारतीय जैन आगम ग्रंथ के कथानुसार तीर्थंकर के निर्वाण के बाद अग्निसंस्कार स्थान पर देवताओं स्तूप की रचना करते हैं। एसे जैन स्तूप वर्तमान में दिखाई नहीं पडते लेकिन मथुरा में सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ प्रभु की स्मृति में रचा गया था। पुरातत्त्वज्ञ मानते हैं कि यह स्तूप ईसापूर्व सातवीं शताब्दी का है।

विहार :

विहार संत महात्मा प्राचीन काल में ग्राम के बहार जंगल में एकान्त में रहते थे। भक्त गृहस्थों का कष्ट निवारने के लिए स्थान बनाने लगे। मध्य में गुरु का स्थान, आसपास शिष्यों की कोठरी की व्यवस्था करते थे। पर्वत में खुदे हुये विहार में जल की व्यवस्था सुंदर देखने में आती है। साधु मठ के अभ्यास चिंतन के स्थान को विहार करते है। जैनों मे विहार को वसति या वर्तमान में उपाश्रय कहते हैं।

स्तंभ :

प्राचीन काल में देवमंदिर के आगे बड़ा स्तंभ खडा करने की प्रथा थी। अब भी द्रविड प्रदेश में है। ब्राह्मण संप्रदाय का अनुकरण बौद्धों ने किया। जैनों में दिगंबर संप्रदाय में स्तंभ की विशेष प्रथा है। स्तंभ को मानक स्तंभ या मानव स्तंभ कहते है। देव मंदिर के आगे या भगवान विहार स्थान के उपदेश स्थान का स्मरण चिन्ह रूपे धर्मरोपण बडा स्तंभ खडा करते थे। बौद्धों में ऐसे स्तंभ वर्तमान में दिखते हैं। स्तंभ के ऊपरी भाग में धर्मचक्र, सिंह, वृषभ या मूर्ति की आकृति होती है। चैत्य, स्तूप, विहार और स्तंभ यह चार अखंड गिरिपर्वतों में उत्कीर्ण गुंफारूप वर्तमान में दिखाई देते है। उनका स्वतंत्र रूप इंट या पाषाण में भी बना है। इसा के पूर्वसे नवमी शताब्दी तक गुफाओं में उत्कीर्ण हुई। आबू पर जैन मंदिर के पास एक स्तंभ खडा हैं।

जैन मंदिरों के मंडावेर में या मंडप के विनान (घुमट) में यक्ष–यक्षिणी या विद्यादेवी के कई स्वरूप रखे जाते हैं। मंदिर के बाहर तीन भद्रक गवाक्ष में जैन प्रतिमा की स्थापना करने का आदेश है, जिससे पता लगता है कि वह किस देव का मंदिर है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आयतन

देवों का समूह मंदिर और देवकुलिकाओं का 'आयतन' कहते हैं। विष्णु, शिव, गणेश, चंडी और सूर्य का पंचायतन होता है। ऐसे चौबीस अवतार का विष्णु चतुर्विंशति आयतन। जैन तीर्थ का चौबीस आयतन द्वीसप्तायतन। चतुरष्टिआयतन (८४) और शतअष्टोतर (१०८) शिवलिंग का होता है। ऐसे जैन में भी आयतन होते हैं। यहां चतुर्मुखीय महाप्रासाद के दो बडे तलदर्शन दिये गये है। चतुर्दिशा में देवकुलिकाओं (देरीओं) अनेक मंडप के बीच बीच में प्रकाश के लिये चोक रखे है। हमारे ग्रंथ संग्रह में हमारे पूज्य पितामह निर्भयराभा का उल्लेख किया पुराना नक्शा है।

सप्त मातृकाओं का सप्तयातन, नवदुर्गा का नवायतन, एकादशरुद्र का रुदायतन होता है।

जिनाय में चौबीस, बायन, बहोतेरि, आयतन का क्रम पक्ष में, सन्मुख और आगे कितने देवकुल को रखना उनका क्रम दिया है। मगर स्थान भाव से कम जास्त करके पुरी संख्या मिलाना इसमें कोई दोष नहीं है।

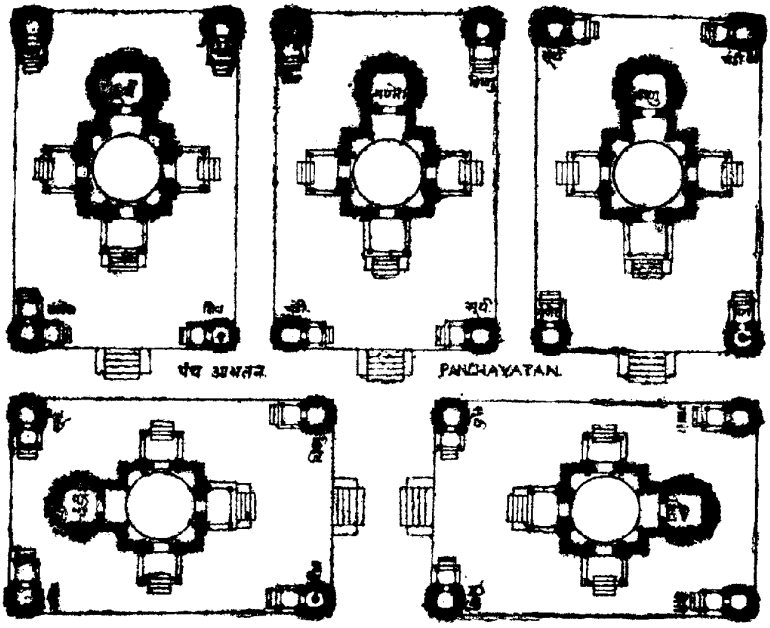

सूर्य, विष्णु, शिव, गणेश और चंडी का पंचायतन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

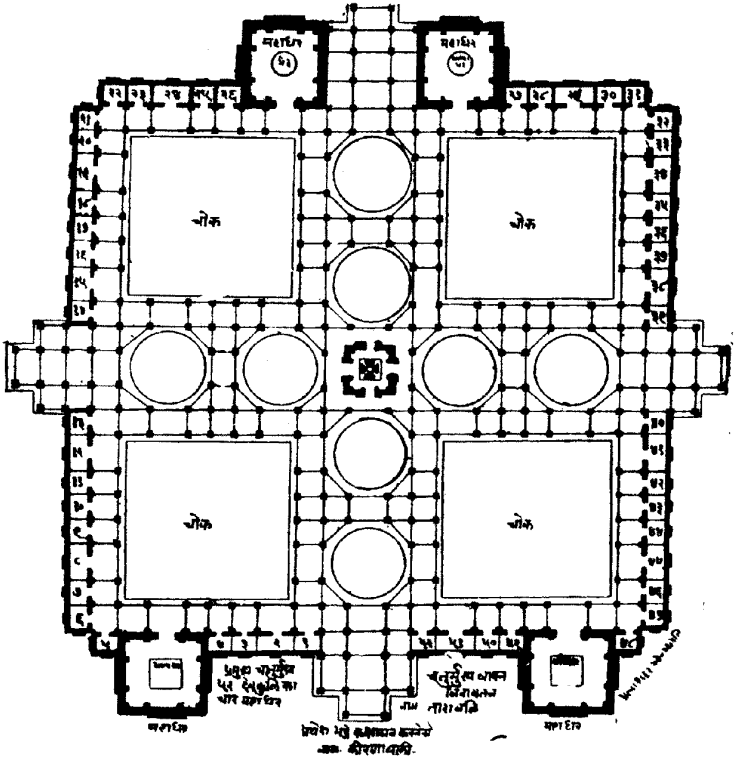

चतुर्मुख शीवायतन–या जिनायतन
चार महाधरप्रासाद पर देवकुलिन चार मेघनावाद मंडप
चार बेलाणक चार मंडप
चार चोक ४४० स्तंभ
नाम तारावली प्रवेश भद्रे कक्षासर करने से नाम किरणावली

For Private And Personal Use Only

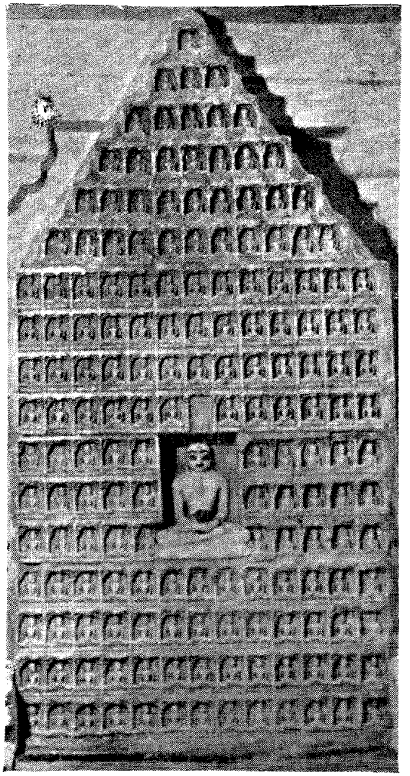

170 तीर्थंकरों की मूर्तियों के साथ
अजीतनाथजी

संभवसरण (वृत्त) अ. 25

For Private And Personal Use Only
Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra
www.kobatirth.org
Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

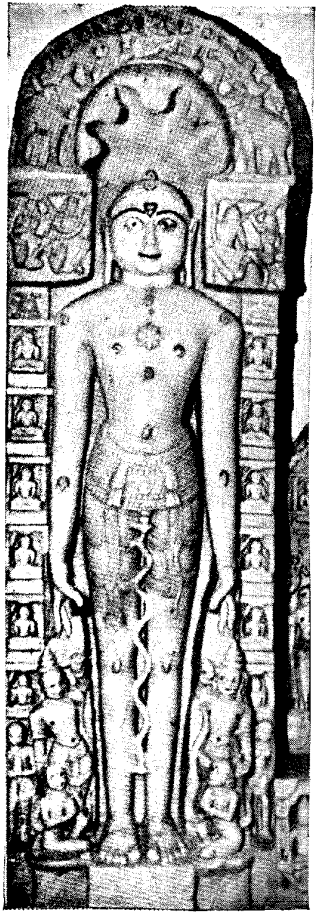

कायोत्सर्ग ध्यानमग्न खड़ी जिनमूर्ति, परिकर के साथ

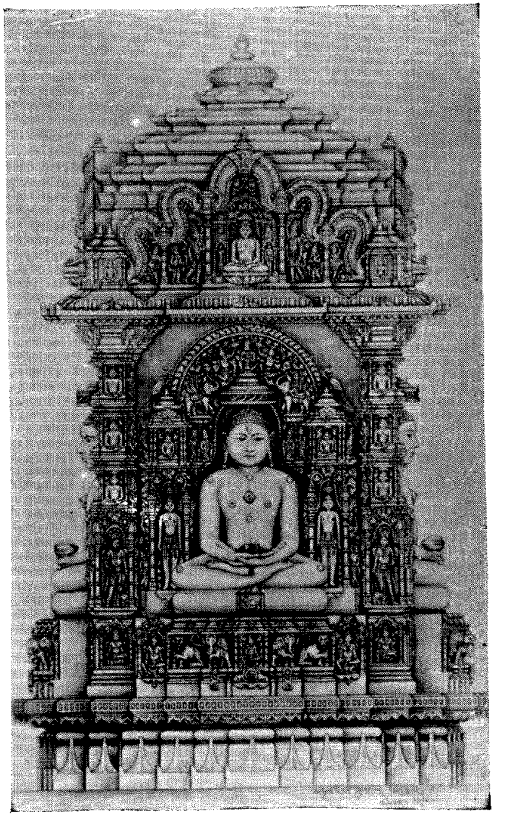

चतुर्भुज–जैन परिकर छत्री के साथ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra

www.kobatirth.org

Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

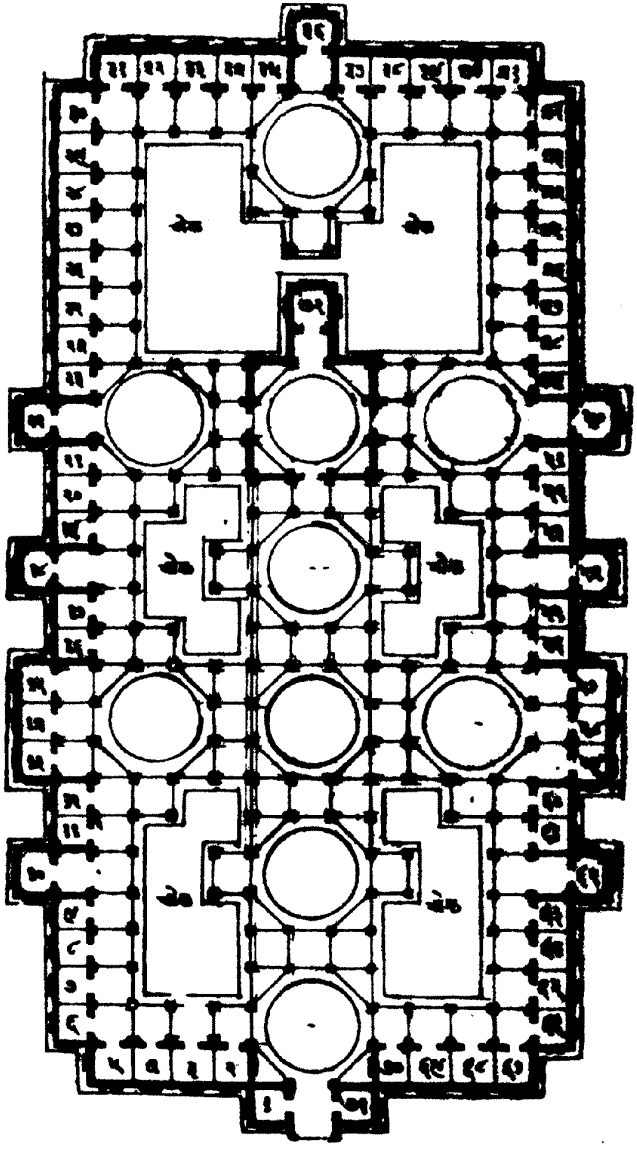

आयनन द्वांसप्तली २४६ स्तंभ
दशमंडप, छह चोक, एक बलाणक, नव महाधर
विष्णवायतन विष्णायनन शिवायतन जिनायतन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

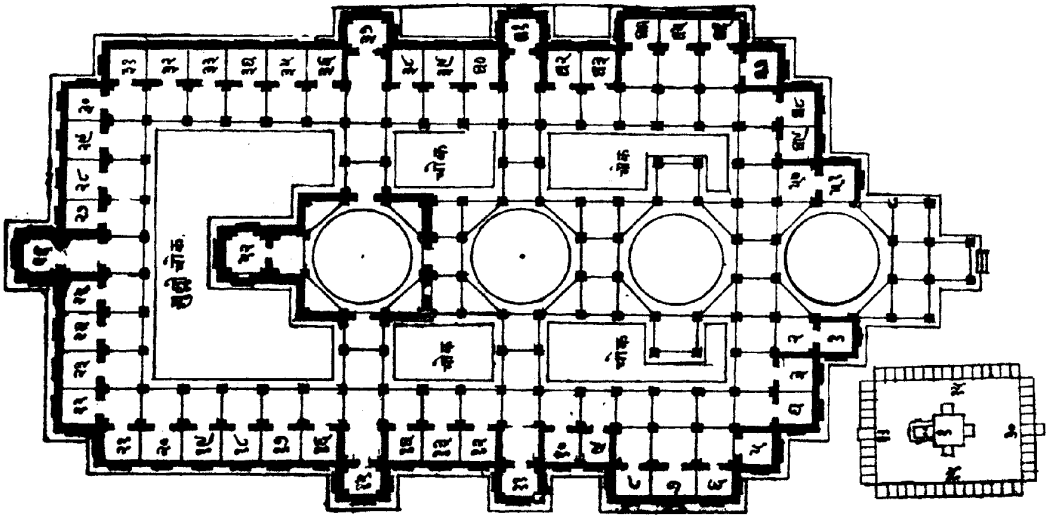

जावन द्वीपसंचास आयतन स्तंभ १७८, १ गुढ मंडप १ मेघवाद मंडप २ मंडप १ बलाणक

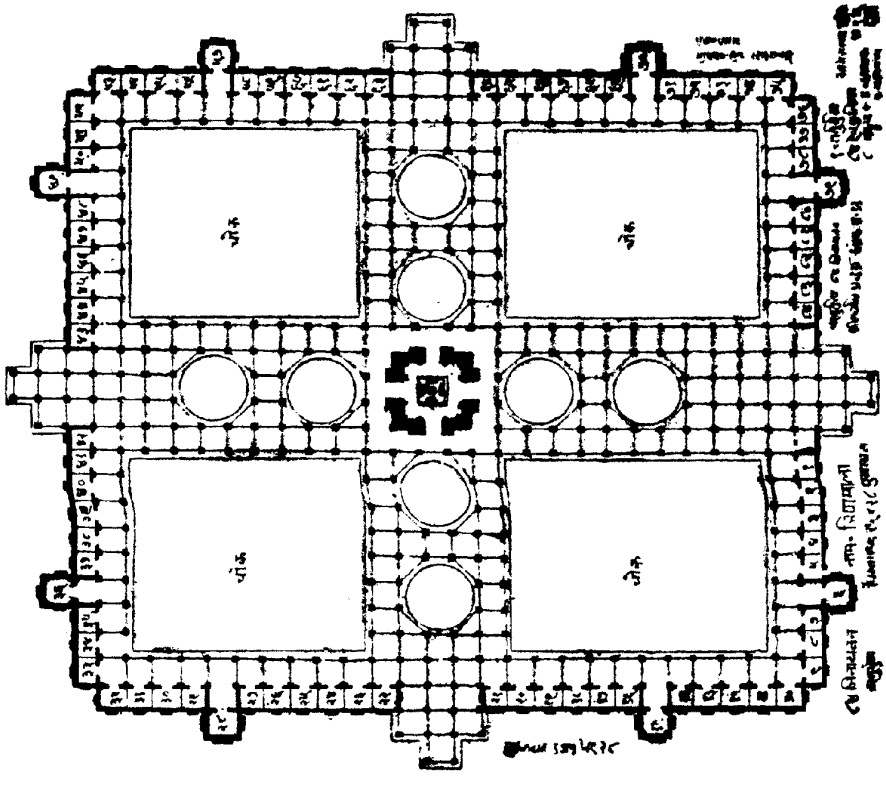

चतुर्मुख शिवालय जिनालय ८४ आयतन विस्तृत पद २५×२८ मुखायतन १ चतुर्मुख
८४ देवकुलिका ८ मंडप ४ बलाणक स्तंभ संख्या ४३२–आठ महाधर प्रासाद

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

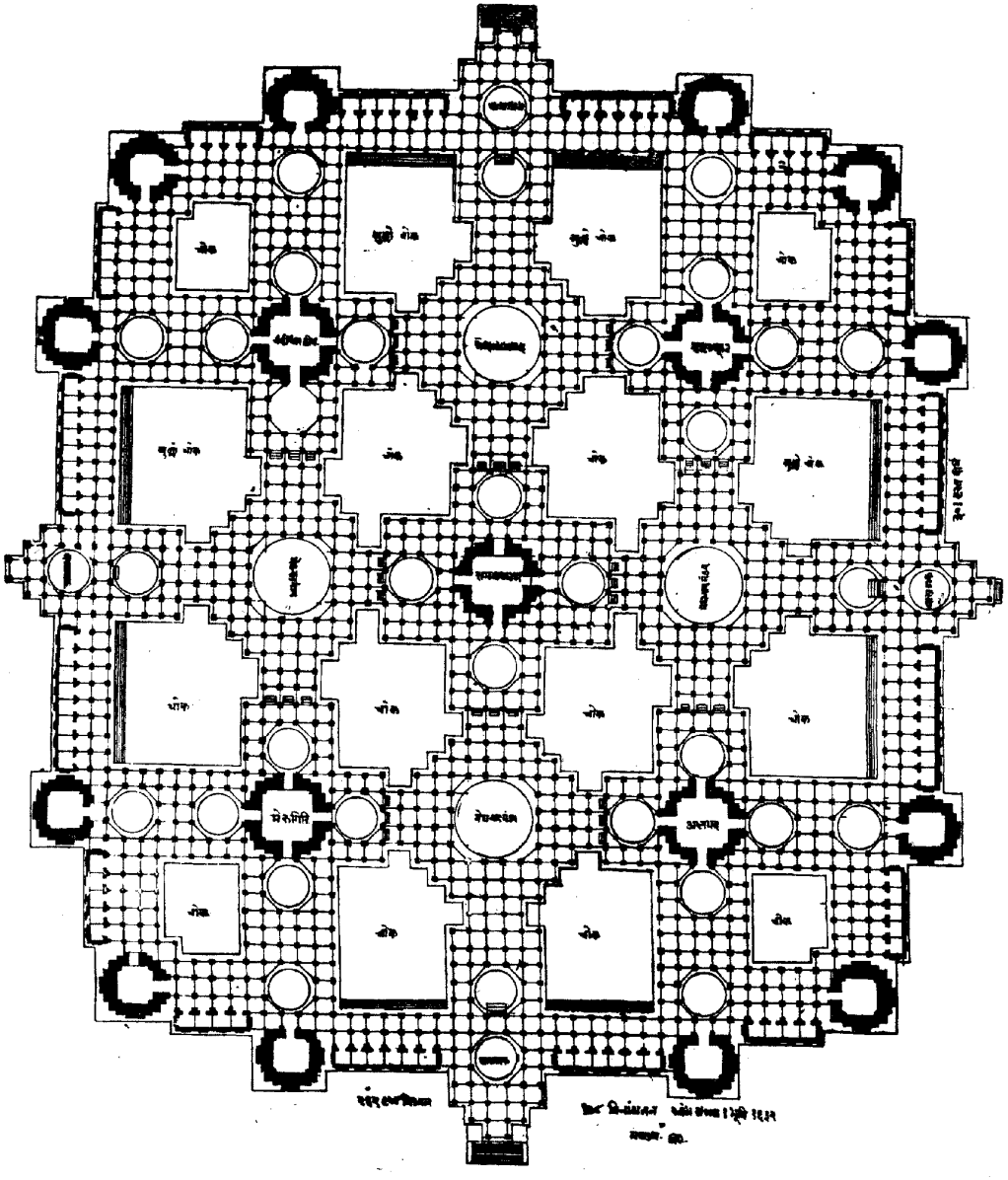

चतुर्मुख महाप्रासाद तल दर्शन १०८ आयतन

चतुर्मुख महाप्रासाद दीर्घ विस्तार
गज–३०१×२६५
फूट–६०२×५३१
बलाणक ४
भूमितल स्तंभ संख्या १६६

चतुर्मुख प्रासाद	५	मेघनाद मंडप	४
द्वी द्वारिणी प्रासाद	४	मंडप	३६
महाधर प्रासाद	८	कुल	४०
देवकुलिकाओ	९१		
कुल	१०८		

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

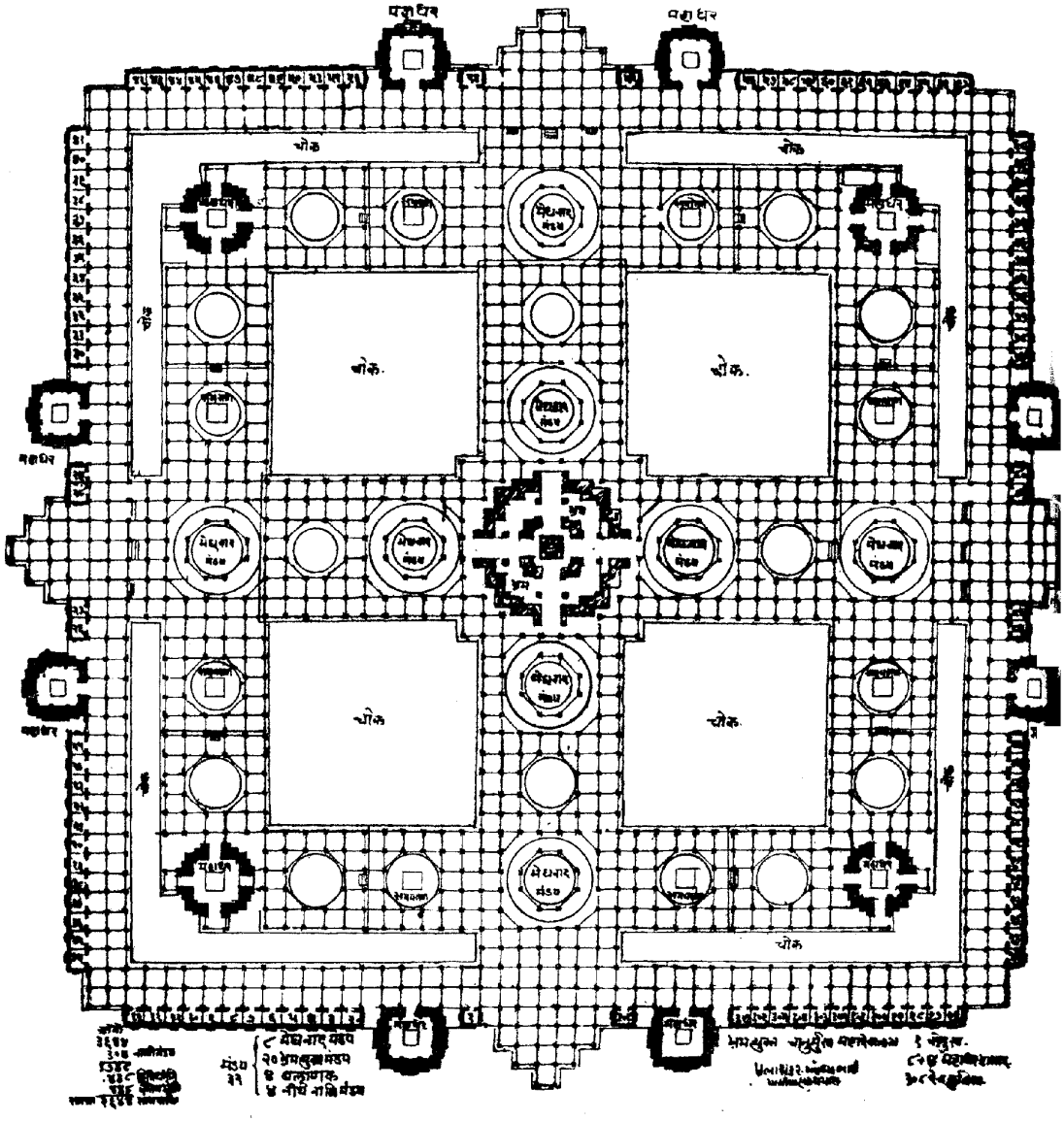

चतुर्मुख महाप्रासाद

भ्रमयुक्त चतुर्मुख प्रासाद १ चतुर्मुख ४ महाधर ८ देवकुलिकाओ १०८ मंडप २० मेघनाद मंडप ८ बलाणक ४
स्तंभ संख्या २६४४ चोक ४ बडा नाली चोक ४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only